महाकवि स्वयम्भूदेव विरचित

पउमचरिउ

(पद्मचरित)

भाग २

मूल सम्पादक

डॉ. एच.सी. भायाणी

अनुवाद

डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन, इन्दौर

भारतीय ज्ञानपीठ

विषय-सूची

इक्कीसवीं सन्धि

विभीषण द्वारा जनक और दशरथ-की मरवानेका असफल प्रयत्न ३

दशरथ और जनकका कौतुक-मंगल नगरके लिए जाना, नगर-का वर्णन ५

कैकेयीका स्वयंवरमें आकर दशरथ-का वरण करना ५

युद्धमें दशरथका कैकेयीको दो वर देना ७

दशरथके पुत्र-जन्म ७

जनकके यहाँ सीता और भा-मण्डलकी उत्पत्ति, भामण्डलका अपहरण ७

जनक द्वारा शबरोंके विरुद्ध दशरथ से सहायताकी याचना ९

राम और लक्ष्मणका प्रस्थान ९

शबरोंके परास्त करनेके बाद जनक द्वारा विदा ११

नारदका सीतापर कोप, उसका चित्रपट भामण्डलको दिखाना ११

भामण्डलका कामासक्त होना ११

विद्याधर चन्द्रगति द्वारा जनकके अपहरणका आदेश १३

चपलवेगका घोड़ा बनकर जनकको ले आना १३

विद्याधर चन्द्रगतिका प्रस्ताव १५

धनुषयज्ञ द्वारा सीताके विवाह-का निश्चय १५

स्वयंवरकी योजना १७

राम-सीताका विवाह १७

बाईसवीं सन्धि

दशरथ द्वारा जिनका अभिषेक १९

रानी सुप्रभाकी शिकायत, कंचुकीके बुढ़ापेका वर्णन १९

दशरथको विरक्ति और रामको राज्य देनेका निश्चय २१

श्रमण संघका आगमन २१

भामण्डलकी विरह वेदना २३

सीताको बलपूर्वक ले आनेके लिए प्रस्थान २३

पूर्व भव स्मरण २५

कामावस्थाका नाश २५

अयोध्या जाना २५

कैकेयीका सभामण्डपमें जाना और वर माँगना २७
दशरथ द्वारा रामको वनवास २७
भरत द्वारा विरोध २९
दशरथ द्वारा समाधान २९

तेईसवीं सन्धि

कवि द्वारा फिरसे स्तुति ३१
भरतको तिलक कर रामकी वनगमनकी तैयारी ३३
दशरथकी सत्यनिष्ठा ३३
रामका अपनी माँसे विदा माँगना ३५
कौशल्याकी मूर्च्छा और विलाप ३५
माँको समझा-बुझाकर रामका प्रस्थान ३५
सीताका भी रामके साथ जाना ३७
लक्ष्मणकी प्रतिक्रिया और पिता-पर रोष ३९
रामका लक्ष्मणको समझाना और दोनोंका एक साथ वनगमन ३९
सिद्धवरकूटमें विश्राम ४१
जिनकी वन्दना ४१
रामका सुरति युद्ध देखना ४३
वीरान अयोध्याका वर्णन ४५
रामका गम्भीर नदी पहुँचना तथा नदीका वर्णन ४५
राम द्वारा सेनाकी वापसी ४७
दक्षिणकी ओर प्रस्थान ४७
सैनिकोंका वियोग-दुख ४७

चौबीसवीं सन्धि

अयोध्यावासियोंका विलाप ४९
राजा दशरथकी संन्यास लेनेकी घोषणा ५१
भरतकी हठ ५१
दशरथ द्वारा दीक्षा लेना ५५
उनके साथ और भी राजा दीक्षित हुए उनका वर्णन ५५
भरतका विलाप और रामको मनानेके लिए प्रस्थान ५७
भरतकी रामसे लौटनेकी प्रार्थना ५७
राम द्वारा भरतकी प्रशंसा ५७
कैकेयीका समाधान ५९
भरतका लौटकर रामकी माताको समझाना ५९
रामका तापस वनमें प्रवेश ५९
धानुष्कवनका वर्णन ६१
भीलबस्तीमें राम और लक्ष्मण-का निवास ६१
वनके बीचमें प्रवेश ६३
चित्रकूटसे दशपुरनगरमें प्रवेश ६५
क्षीरकुटुम्बिकसे भेंट ६५

पचीसवीं सन्धि

सीरकुटुम्बिक द्वारा वज्रकर्ण और सिंहोदरके युद्धका उल्लेख ६५
विद्युदंग चोरका उपाख्यान ६९
सेनाका वर्णन ६९
राम और लक्ष्मणका सहस्रकूट जिनभवनमें प्रवेश ७३
जिनेन्द्रकी स्तुति ७५
लक्ष्मणका सिंहोदरके नगरमें प्रवेश ७७
सिंहोदरकी प्रसन्नता ७७
सिंहोदर द्वारा रामादिको भोजन कराना ७९
लक्ष्मण द्वारा सिंहोदरकी सहायता, वज्रकर्णसे युद्ध ८१
युद्धमें वज्रकर्णकी हार ८३
लक्ष्मणकी शूरवीरता ८५
वज्रकर्णको पकड़कर लक्ष्मणका लौटना ८७

छब्बीसवीं सन्धि

राम द्वारा साधुवाद ९१
विद्युदंगकी प्रशंसा ९१
वज्रकर्ण और सिंहोदरकी मैत्री ९३
वज्रकर्ण और सिंहोदर द्वारा कन्याओंके पाणिग्रहणका प्रस्ताव ९३
रामका कूबर नगरमें प्रवेश ९५
वसन्तका वर्णन ९५
लक्ष्मणका पानीकी खोजमें जाना ९७
कूबरनगरके राजाकी जलक्रीड़ा ९७
राजाका लक्ष्मणको देखना ९७
राजाका कामासक्त होकर लक्ष्मणको बुलवाना ९९
दोनोंका एक आसनपर बैठना ९९
दोनोंका तुलनात्मक चित्रण १०१
कूबरनरेशका आधिपत्य १०१
वालिखिल्यकी मन्त्रणाका संकेत १०१
भोजनकी व्यवस्था १०३
रामको बुलाने जाना १०३
राम-सीताका अलंकृत वर्णन १०५
जलक्रीड़ाके प्रसाधनोंका वर्णन १०५
भोजन १०७
सुन्दर वस्त्र पहनना १०७
कूबरनरेशका कल्याणमालाके रूपमें अपनी सारी कहानी बताना १०९
लक्ष्मणका अभयदान १०९
दूसरे सवेरे तीनोंका प्रस्थान १११
कल्याणमालाका विलाप १११

सत्ताईसवीं सन्धि

विन्ध्याचलकी ओर प्रस्थान ११३
विन्ध्याचलका वर्णन ११३

रुद्रभूतिसे मुठभेड़ ११७
लक्ष्मणके धनुषकी टंकारका विश्वव्यापी प्रभाव ११७
रुद्रभूतिकी जिज्ञासा ११९
रुद्रभूतिका गमन १२१
लक्ष्मणका आक्रोश १२१
बालिखिल्य और रुद्रभूतिमें मैत्री १२३
राम-लक्ष्मणका ताप्ती पार करना १२५
रामने सीता देवीको धीरज बँधाया १२५
कपिल ब्राह्मणके घरमें प्रवेश १२५
ब्राह्मण देवतासे भिड़न्त १२७
प्रख्याति और वट-वृक्षका वर्णन १२७

अट्ठाईसवीं सन्धि

रामका वटके नीचे बैठना और कृत्रिम वर्षाका प्रकोप १२९
अलंकृत वर्णन १३१
यक्षकी यक्षराजसे शिकायत १३३
यक्षराज द्वारा राम-लक्ष्मणकी स्तुति १३३
रामपुरी नगरीका बसाना १३३
नगरीका वर्णन १३३
यक्षका रामसे निवेदन १३७
कपिलकी रामसे धन-याचना १३९
मुनिका उपदेश १३९
जनता द्वारा व्रत-ग्रहण १४१
लक्ष्मणको देखकर कपिलका भयभीत होना १४१
ब्राह्मण द्वारा अर्थकी प्रशंसा १४३

उनतीसवीं सन्धि

राम-लक्ष्मणका जीवन्त नगरमें प्रवेश १४३
जीवन्त नगरके राजाके पास भरतका लेख-पत्र आना १४५
वनमालाकी आत्महत्याकी चेष्टा १४७
गलेमें फाँसी लगाते ही लक्ष्मणका प्रकट होना १५१
दोनोंका रामके सम्मुख जाना १५१
सैनिकोंका आक्रमण १५१
राजाका अभियान १५३
राजाका लक्ष्मणको सहर्ष कन्यादान १५५

तीसवीं सन्धि

भरतके विरुद्ध अनन्तवीर्यकी सामरिक तैयारी १५७
भिन्न-भिन्न राजाओंको लेखपत्र १५७
रामका गुप्तरूपसे अनन्तवीर्यको हरानेका निश्चय १५९
नन्दावर्त नगरमें प्रवेश १५९

प्रतिहारसे कह सुनकर उनका
दरबारमें प्रवेश १६१
रामका नृत्यगान १६३
अनन्तवीर्यका पतन १६५
अनन्तवीर्यकी विरक्ति १६५
कई राजाओंके साथ उसका
दीक्षा ग्रहण १६७
रामका जयन्तपुर नगरमें प्रवेश १६९

इकतीसवीं सन्धि

लक्ष्मणकी वनमालासे विदा १६९
गोदावरी नदीका वर्णन १७१
क्षेमंजलि नगरका वर्णन १७३
हड्डियोंके ढेरका वर्णन १७३
लक्ष्मणका नगरमें प्रवेश १७५
लक्ष्मणका अरिदमनकी शक्ति
झेलना १८१
दोनोंमें संघर्ष और वनमालाका
बीचमें पड़ना १८३
अरिदमनकी क्षमा-याचना १८५
रामका नगरमें प्रवेश १८७

बत्तीसवीं सन्धि

वंशस्थ नगरमें प्रवेश १८७
मुनियोंपर उपसर्ग १८७
वनका वर्णन १८९
रामका सीताको नाना पुष्प
वृक्षोंका दर्शन कराना १९१
रामका उपद्रव दूर करना १९३
मुनियोंकी वन्दना-भक्ति १९५
लक्ष्मणने शास्त्रीय संगीत
आरम्भ किया १९५
फिर उपसर्ग १९७
रामका सीताको अभय वचन १९९
धनुषकी टंकारसे उपसर्ग दूर
होना, मुनिको केवलज्ञानकी
प्राप्ति १९९
देवों द्वारा वन्दना भक्ति २०१

तैंतीसवीं सन्धि

मुनि कुलभूषण द्वारा उपसर्गके
कारणपर प्रकाश डालना २०३
पूर्वजन्मकी कथा २०५

चौंतीसवीं सन्धि

रामकी धर्म-जिज्ञासा और
मुनिका धर्मोपदेश २१९
रामका दण्डकवनमें प्रवेश २२७
दण्डक अटवीका वर्णन २२७
गोकुल बस्तीका वर्णन २२९
यतियोंको आहारदान २३१
आहारका श्लेषमें वर्णन २३१

पैंतीसवीं सन्धि

देवताओं द्वारा रत्न-वृष्टि २३३
जटायुका उपाख्यान २३३

पूर्वभव प्रसंग २३५

दार्शनिक वाद-विवाद २३५

राजा द्वारा मुनियोंकी भर्त्सना २४३

मुनियों द्वारा उपसर्ग सहना २४३

राजाकी नारकीय यातना २४७

जटायुका व्रत ग्रहण करना, रत्नोंकी आभासे उसके पंख स्वर्णमय हो जाना २४७

छत्तीसवीं सन्धि

रथपर राम-लक्ष्मणका लीलापूर्वक विहार २४९

क्रौंचनदीके तटपर विश्राम २५१

लक्ष्मणका वंशस्थलमें प्रवेश २५१

सूर्यहास खड्गकी प्राप्ति २५३

शम्बूक कुमारका वध २५३

सीता देवीकी चिन्ता २५३

चन्द्रनखाका प्रलाप २५५

उसका राम-लक्ष्मणपर आसक्त होना २५९

कामावस्थाएँ २५९

रामका नीति-विचार २६१

दोनोंका उसे ठुकराना २६१

सामुद्रिक शास्त्रके अनुसार स्त्रियोंका वर्णन २६३

सैंतीसवीं सन्धि

चन्द्रनखाका विद्रूप रूप २६७

लक्ष्मणका रोष २६७

चन्द्रनखाका पतिको सब हाल बताना २६९

खरका पुत्रशोक २७१

चन्द्रनखाका बात बनाना २७३

भाइयोंमें परामर्श २७३

खरकी प्रतिज्ञा २७३

रावणको खबर भेजकर युद्धकी तैयारी २७५

युद्धका प्रारम्भ २७९

लक्ष्मणकी शूरवीरता २८१

लक्ष्मणकी विजय २८३

अड़तीसवीं सन्धि

रावणके नाम दूषणका पत्र २८३

रावण द्वारा लक्ष्मणकी सराहना २८३

सीताको देखकर रावणकी कामवासना उत्पन्न होना २८५

सीताका नखशिख वर्णन २८५

रामसे ईर्ष्या २८७

रावणका उन्माद २८७

अवलोकिनी विद्यासे सहायताकी याचना और उसका उत्तर २८९

सिंहनादकी युक्तिका सुझाव २९१

कुमार लक्ष्मणकी युद्धक्रीड़ा २९३

सिंहनाद सुनकर रामका युद्धमें पहुँचना २९३

लक्ष्मणकी आशंका और रामको वापस करनेका प्रयास करना २९५
सीता देवीका अपहरण और जटायुका संघर्ष २९५
जटायुका पतन २९७
सीता देवीका विलाप २९७
दशाननका विद्याधर द्वारा प्रतिरोध और उसका पतन २९९
सीता द्वारा रावणका प्रतिरोध ३०१
सीताका नगरके बाहर नन्दन वनमें रह जाना। रावणका लंकामें प्रवेश ३०३

उनतालीसवीं सन्धि

लौटकर रामद्वारा सीताकी खोज ३०३
जटायुसे रामकी भेंट ३०३
जटायुका प्राण त्यागना ३०५
रामकी मूर्च्छा और मुनियोंका समझाना ३०५
रामका प्रत्युत्तर ३०७
मुनिका उत्तर ३१३
रामका विलाप ३१५

चालीसवीं सन्धि

कविकी मुनिसुव्रतनाथकी वन्दना ३१७
युद्धका वर्णन ३१७
लक्ष्मणकी शूरवीरता ३१९
विराधितको लक्ष्मण द्वारा अभयदान ३२१
लक्ष्मणकी तरफसे विराधितका युद्ध ३२३
घमासानयुद्ध ३२५
लक्ष्मण द्वारा खरका वध ३२७
लक्ष्मण द्वारा राम और सीता देवीकी खोज करना ३२९
लक्ष्मणका रामको शोकमग्न देखना ३२९
विराधितका रामको समझाना ३३३
तमलंकार नगरमें रामका आश्रय लेना ३३५
खरदूषणके पुत्र सुन्दका अपनी माँके कहनेसे विरत होना ३३७
जिनकी स्तुति ३३९

इकतालीसवीं सन्धि

चन्द्रनखाका रावणके पास जाना ३३९
रावणका चन्द्रनखाको आश्वासन ३४१
मन्दोदरीका रावणको समझाना ३४३
रावणका सीतासे अनुरोध ३५३
सीताका प्रति उत्तर ३५५
रावणका आक्रोश ३५९

बयालीसवीं सन्धि

विभीषणका सीता देवीसे संवाद ३५९

सीताका आत्मपरिचय और हरणकी घटना बताना ३५९

विभीषणका रावणको समझाना ३६१

रावणका सीताको यानसे लंका घुमाना ३६५

रावणका सीताको प्रलोभन ३६५

सीताकी भर्त्सना ३६५

रावणकी निराशा ३६५

नन्दनवनका वर्णन ३६७

रावणकी कामदशाएँ ३६९

मन्त्रिमण्डलकी चिन्ता और विचार-विमर्श ३६९

नगरकी रक्षाका प्रबन्ध ३७१

□

कइराय-सयम्भुएव-किउ

पउमचरिउ

बीअं उज्झाकण्डं

२१. एकवीसमो संधि

सायरबुद्धि बिहीसणेंण परिपुच्छिउ 'जयसिरि-माणणहोँ ।
कहेँ केत्तडउ कालु अचलु जउ जीविउ रज्जु दसाणणहोँ' ॥

[१]

पभणइ सायरबुद्धि भडारउ । कुसुमाउह-सर-पसर-णिवारउ ॥१॥
'सुणु अक्खमि रहुवंसु पहाणउ । दसरहु अत्थि अउज्झहेँ राणउ ॥२॥
तासु पुत्त होसन्ति धुरन्धर । वासुएव-बलएव धणुद्धर ॥३॥
तेहि हणेवउ रक्खु महारणेँ । जणय-णराहिव-तणयहेँ कारणेँ ॥४॥
सो सहसत्ति पलित्तु बिहीसणु । णं घय-घडएँहिँ सित्तु हुआसणु ॥५॥
'जाम ण लङ्का-वल्लरि सुक्कइ । जाम ण मरणु दसासहोँ ढुक्कइ ॥६॥
तोडमि ताम ताइँ भय-भीसइँ । दसरह-जणय-णराहिव-सीसइँ' ॥७॥
तो तं वयणु सुणेँवि कलियारउ । णहङ्गणहेँ पधाइउ णारउ ॥८॥
'अज्जु बिहीसणु उप्परि एसइ । तुम्हहँ बिहि मि सिरइँ तोडेसइ' ॥९॥

घत्ता

दसरह-जणय विणीसरिय लेप्पमउ थवेप्पिणु अप्पणउ ।
णियइँ सिरइँ विज्जाहरेँहिँ परियणहोँ करेप्पिणु अप्पणउ ॥१०॥

[२]

दसरह-जणय बे वि गय तेत्तहेँ । पुरवरु कउतुकमङ्गलु जेत्तहेँ ॥१॥
जेम्भइ जेत्थु असमिगय-लक्खउ । सूरकन्त-मणि सुयरह-रक्खउ ॥२॥

पउमचरिउ

अयोध्याकाण्ड

इक्कीसवीं सन्धि

विभीषणने सागरबुद्धि (भट्टारक) से पूछा कि बताइए विजयश्रीको माननेवाले दशाननकी जय, जीवन, राज्य और दशा कितने समय तक अचल रहेगी ?

[१] कामके बाणोंका निवारण करनेवाले भट्टारक सागरबुद्धि कहते हैं—"सुनो, अयोध्यामें प्रधान रघुवंशका राजा दशरथ है। उसके धनुर्धारी बलदेव और वासुदेव धुरन्धर पुत्र होंगे। उनके द्वारा राजा जनककी कन्याके कारण महारणमें राक्षस मारा जायेगा।" इससे विभीषण एकदम इस प्रकार भड़क उठा, मानो घीके घड़ोंके द्वारा आग सींच दी गयी हो। "जबतक लंकारूपी लता नहीं सूखती, जबतक दशानन तक मृत्यु नहीं पहुँचती, तबतक मैं भयसे भयंकर जनक और दशरथ राजाओंके सिर तोड़ देता हूँ।" तब उसके उन वचनोंको सुनकर कलहकारी नारद—बधाई देने आया (और बोला) कि आज विभीषण तुम्हारे ऊपर आयेगा और तुम दोनोंके सिर तोड़ेगा।" अपनी लेपमयी मूर्तियाँ स्थापित करवाकर दशरथ और जनक वहाँसे निकल गये। विद्याधरोंके द्वारा आक्रमण कर परिजनों (अनुचरों) के सिर ले जाये गये ॥१–१०॥

[२] दशरथ और जनक दोनों वहाँ गये कि जहाँ कौतुकमंगल नगरवर था। जहाँ सूर्यकान्तमणियोंकी आगसे राँधा

जहिँ जलु चन्दकन्ति-णिज्झरणेंहिँ । सुप्पइ पडिय-पुप्फ-पत्थरणेंहिँ ॥३॥
जहिँ णेउर-झङ्कारिय-चलणेंहिँ । रम्मइ अच्छण-पुप्फ-क्खलणेंहिँ ॥४॥
जहिँ पासाय-सिहरें णिहसिज्जइ । तेण मियङ्कु वङ्कु किसु किज्जइ ॥५॥
तहिँ सुहमइ-णामेण पहाणउ । णं सुरपुरहोँ पुरन्दरु राणउ ॥६॥
पिहुसिरि तहो महएवि मणोहर । सुरकरि-कर कुम्भयल-पओहर ॥७॥
णन्दणु ताहेँ दोणु उप्पज्जइ । केक्कय तणय काइँ वण्णिज्जइ ॥८॥
सयल - कला - कलाव - संपण्णी । णं पच्चक्ख लच्छी अवइण्णी ॥९॥

घत्ता

ताहेँ सयम्वरेँ मिलिय वर हरिवाहण-वेसाणर-पमुह ।
णाइँ समुद्द-महासरिहिँ थिय जलवाहिणि-पवाह समुह ॥१०॥

[२]

सो करेणु आरुहेँवि विणिग्गय । णं पच्चक्ख महासिरि-देवय ॥१॥
पेक्खन्तहँ णरवर - संघायहुँ । भूगोयर - विज्जाहर - रायहुँ ॥२॥
चित्त माल दसरन्दण - णामहोँ । मणहर-गइएँ रइएँ णं कामहोँ ॥३॥
तहिँ अवसरेँ विरुद्ध हरिवाहणु । धाइउ 'लेहु' भणन्तु स-साहणु ॥४॥
'कहिँ माहणहोँ कण्ण वडालहोँ । रयणइँ जेम तेम महिपालहोँ ॥५॥
सुहमइ रहु-सुपुत्त विणप्पइ । 'धीरउ होहि माम को चप्पइ ॥६॥
मइँ जियन्तेँ अणरण्णहोँ णन्दणेँ' । एउ भणेवि परिट्ठिउ सन्दणेँ ॥७॥
केक्कइ धुरहिँ करेप्पिणु सारहि । तहिँ पयट्टु जहिँ सयल महारहि ॥८॥

घत्ता

सो वोल्लिज्जइ दसरहेँण 'तुरयर-णिवारिय-रविवरहुँ ।
रहु वाहेँवि ताहँ णेहि पियएँ धय-छत्तइँ जेत्थु णिरन्तरइँ ॥ ९ ॥

गया अनमाँगे प्राप्त हुआ भोजन खाया जाता है। जहाँ चन्द्र-कान्तमणियोंके निर्झरोंसे जल पिया जाता है, और बिछी हुई पुष्पसेजोंपर सोया जाता है। जहाँ नूपुरोंसे झंकृत पैरों और अर्चनमें पुष्पोंके स्खलनोंसे रमण किया जाता है। जहाँ प्रासाद-के शिखरोंपर चन्द्रका उपहास किया जाता है। इसीसे यह कृश और टेढ़ा किया जाता है। उसमें शुभमति नामका राजा था जो मानो देवलोकका इन्द्र था। उसकी पृथुश्री नामकी सुन्दर महादेवी थी, ऐरावतके समान हाथोंवाली और कुम्भस्तलके समान स्तनोंवाली। उससे द्रोण पुत्र उत्पन्न हुआ और कन्या कैकेयी, उसका क्या वर्णन किया जाये? समस्त कला-समूहसे परिपूर्ण वह मानो प्रत्यक्ष लक्ष्मी अवतीर्ण हुई थी। उसके स्वयंवरमें हरिवाहन, मेघप्रभ प्रमुख वर इकट्ठे हुए जैसे समुद्र-की महार्थीके सम्मुख नदियोंके प्रवाह स्थित हुए हों ॥१-१०॥

[२] वह हथिनीपर आरूढ़ होकर निकली मानो प्रत्यक्ष महालक्ष्मी देवता हो। नरवर समूह और विद्याधर-मनुष्य राजाओंके देखते-देखते उसने दशरथ नामक राजापर इस प्रकार माला डाल दी, मानो सुन्दरगतिवाली रतिके द्वारा कामदेवपर माला डाल दी गयी हो। उस अवसर हरिवाहन विरुद्ध हो उठा। पकड़ो कहकर, सेना सहित वह दौड़ा। वरको मार डालो, कन्याको छीन लो, उसी प्रकार जिस प्रकार राजासे रत्न छीन लिये जाते हैं। तब रघुसुत दशरथने शुभमतिसे कहा—"हे ससुर, आप धैर्य धारण करें। कौन आक्रमण कर सकता है अनरण्यके पुत्र मेरे जीवित रहते हुए?" यह कहकर वह रथपर बैठ गया। कैकेयीको धुरीपर सारथि बनाकर वह वहाँ पहुँचा जहाँ समस्त महारथी थे। तब दशरथने कहा—"जहाँ रविकिरणोंको दूरसे निवारण करनेवाले ध्वज और छत्र निरन्तर रूपसे हैं, हे प्रिये, तुम रथ वहाँ ले चलो" ॥१-९॥

[४]

तं णिसुणेंवि परिओसिय-जणऍ । [illegible] ॥१॥
तेण वि सरहिँ परज्जिउ साहणु । मग्गु स-हेमप्पहु हरिवाहणु ॥२॥
परितोसिय केक्कइ दिण्णु महा-वरु । चवइ अउज्झापुर - परमेसरु ॥३॥
'सुन्दरि मग्गु मग्गु जं रुच्चइ' । सुहमइ-सुयऍ णवेप्पिणु वुच्चइ ॥४॥
'दिण्णु देव पइँ मग्गमि जइयहुँ । णियय-सच्चु पालिज्जइ तइयहुँ' ॥५॥
एम चवन्तहुँ धण-कण-संकुलें । थियइँ बे वि पुरें कउतुकमङ्गलें ॥६॥
बहु - वासरेंहिँ अउज्झ पइट्ठइँ । सइ-वासव इव रज्जें बइट्ठइँ ॥७॥
सयल-कला-कलाव-संपण्णा । ताम चयारि पुत्त उप्पण्णा ॥८॥

घत्ता

रामचन्दु अपराइयहें सोमित्ति सुमित्तिहें एक्कु जणु ।
भरहु धुरन्धरु केक्कइहें सुप्पहहें पुत्तु पुणु सत्तुहणु ॥९॥

[५]

एय चयारि पुत्त तहों रायहों । णाइँ महा-समुद्द महि-मायहों ॥१॥
णाइँ दुमन्त गिव्वाण-गइन्दहों । णाइँ मणोरह सज्जण-विन्दहों ॥२॥
जणउ वि मिहिला-णयरें पइट्ठउ । समउ विदेहऍ रज्जें णिविट्ठउ ॥३॥
ताहँ विहि मि वर-विक्कम-वीयउ । भामण्डलु उप्पण्णु स-सीयउ ॥४॥
पुव्व-वइरु संभरेंवि अ-खेवें । दाहिण सेढि हरेंवि णिउ देवें ॥५॥
तहिँ रहणेउरचक्कवाल-पुरें । बहल-धवल-घरु-पक्खापण्डुरें ॥६॥
चन्दगइहें चन्दुज्जल-वयणहों । णन्दणवण-समीवें तहों सयणहों ॥७॥
घत्तिउ पिङ्गलेण अमरिन्दें । पुप्फवइहें अल्लविउ णरिन्दें ॥८॥

घत्ता

ताव रज्जु जणयहों तणउ उद्दद्दु महाडइ-वासिऍहिँ ।
बब्बर-सबर-पुलिन्दऍहिँ हिमवन्त-विञ्झ-संवासिऍहिँ ॥९॥

[४] यह सुनकर, जिसने पिताको सन्तुष्ट किया है ऐसे पृथुश्रीकी पुत्री कैकेयीने रथवर हाँका। दशरथने भी तीरोंसे सेनाको जीत लिया और हेमप्रभ सहित हरिवाहनको नष्ट कर दिया। कैकेयीसे विवाह कर लिया। उसे महावर दिये। अयोध्यापुरीका राजा कहता है—"हे सुन्दरि, माँग लो, माँग लो, जो अच्छा लगता है।" तब शुभमतिकी पुत्रीने प्रणाम करके कहा, "हे देव, आपने दे दिया। जब मैं माँगू तब आप अपने सत्यका पालन करना।" इस प्रकार बातचीत करते हुए वे दोनों धन-कणसे परिपूर्ण कौतुकमंगल नगरमें रहने लगे। बहुत दिनोंके बाद उन्होंने अयोध्या नगरीमें प्रवेश किया तथा इन्द्राणी और इन्द्रके समान अपने राज्यपर प्रतिष्ठित हो गये। दशरथके समस्त कला-कलापसे परिपूर्ण चार पुत्र उत्पन्न हुए। अपराजितासे रामचन्द्र, सुमित्रासे लक्ष्मण, धुरन्धर भरत कैकेयीसे और सुप्रभा रानीसे शत्रुघ्न' ॥१–९॥

[५] उस राजाके चार पुत्र इस प्रकार थे मानो महीभागके महासमुद्र हों। मानो ऐरावत महागजके दाँत हों, मानो सज्जनसमूहके मनोरथ हों। उधर जनक भी मिथिला नगरीमें प्रविष्ट हुए। समद वह विदेहके राज्यमें प्रतिष्ठित हो गये। उन दोनोंके भी सीता सहित श्रेष्ठ विक्रमका बीज भामण्डल उत्पन्न हुआ। बिना किसी विलम्बके,अपने पूर्व बैरकी याद कर किसी देवके द्वारा अपहरण कर वह विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें ले जाया गया। वहाँ प्रचुर सफेद चूनेकी पंकसे धवल रथनूपुरचक्रवाल नगरमें चन्द्रमाके समान उज्ज्वल मुखवाले उस स्वजन चन्द्रगति विद्याधरके नन्दनवनके समीप पिंगल नामक अमरेन्द्रने फेंक दिया। राजा चन्द्रगतिने उसे रानी पुष्पावतीको सौंप दिया। इसी बीच हिमवन्त और विन्ध्यामें रहनेवाले बर्बर शबर और पुलिन्दों तथा महाटवीके निवासियों

[६]

वेढिय जणय-कणय दुप्पेच्छेंहिँ । बब्बर-सबर-पुलिन्दा-मेच्छेंहिँ ॥१॥
गरुयासङ्कएँ बाल-सहायहोँ । लेहु विसज्जिउ, दसरह-रायहोँ ॥२॥
तूरइँ देवि सो वि सण्णज्झइ । रामु स-लक्खणु ताव विरुज्झइ ॥३॥
'मइँ जीवन्तेँ ताय तुहुँ चल्लहि । हणमि वइरि सुहु हत्थुत्थल्लहि' ॥४॥
वुत्तु णराहिवेण 'तुहुँ बालउ । रम्भा-खम्भ-गब्भ-सोमालउ ॥५॥
किह आलग्गहि णरवर-विन्दहुँ । किह घड भञ्जहि मत्त-गइन्दहुँ ॥६॥
किह रिउ-रहहँ महारहु चोयहि । किह वर-तुरय तुरङ्गहुँ ढोयहि' ॥७॥
पभणइ रामु 'ताय पल्लट्टहि । हउँ जेँ पहुच्चमि काइँ पयट्टहि ॥८॥

घत्ता

किं तमु हणइ ण बालु रवि किं बालु दवग्गि ण डहइ वणु ।
किं करि दलइ ण बालु हरि किं बालु ण डङ्कइ उरगसणु' ॥९॥

[७]

पहु पल्लट्टु पयट्टिउ राहउ । सूरासंधिय-मेच्छ-महाहउ ॥१॥
दूसहु सो जि अण्णु पुणु लक्खणु । एक्कु पवणु अण्णेक्कु हुआसणु ॥२॥
बिण्णि मि भिडिय पुलिन्दहोँ साहणेँ । रहवर-तुरय-जोह-गय-वाहणेँ ॥३॥
दीहर-सरेँहिँ वइरि संताविय । जणय-कणय रणेँ उब्वेढाविय ॥४॥
धाइउ समरङ्गणेँ तमु राणउ । बब्बर-सबर-पुलिन्द-पहाणउ ॥५॥
तेण कुमारहोँ चूरिउ रहवरु । छिण्णु छत्तु धीढाइउ धणुहरु ॥६॥

द्वारा राजा जनकका राज्य ध्वस्त कर दिया गया ॥१-५॥

[६] जनक और कनक दोनों भाई दुर्दर्शनीय बर्बर, शबर, पुलिन्द और म्लेच्छों द्वारा घेर लिये गये। उन्होंने भारी आशा॰ से, जिनके बालक सहायक हैं, ऐसे राजा दशरथके पास लेख-पत्र भेजा। दशरथ भी नगाड़ा बजवाकर तैयार होने लगे। तब लक्ष्मण-सहित राम विरुद्ध हो उठते हैं कि हे पिता, मेरे जीते हुए तुम जा रहे हो। मैं शत्रुको मारता हूँ, आप हाथ ऊँचा कर दें (हाँ भर दें)। तब राजा दशरथने कहा—तुम अभी बालक हो, अभी केलेके खम्भेकी गाभकी तरह सुकुमार हो, तुम अभी राजाओंसे क्या लड़ोगे? मतवाले हाथियोंके समूह-को किस प्रकार भग्न करोगे? शत्रुओंके रथोंके पास रथ कैसे ले जाओगे, अपने श्रेष्ठ अश्वको अश्वों तक कैसे ले जाओगे? तब राम कहते हैं—हे तात! लौट जायें, जहाँ हम समर्थ हैं, वहाँ तुम क्यों प्रवृत्त हो? क्या बालसूर्य अन्धकारको नष्ट नहीं करता? क्या बाल दावाग्नि वनको नहीं जलाती? क्या बाल सिंह हाथीको चूर-चूर नहीं करता? क्या बाल सर्प नहीं काटता? ॥१-९॥

[७] राजा दशरथ लौट पड़े। जिन्होंने दूरसे ही म्लेच्छोंके महायुद्धकी सम्भावना कर ली है, ऐसे राघवने भी कूच किया। एक तो वह खुद दुःसह थे, और फिर दूसरा लक्ष्मण था। एक पवन था, तो दूसरा आग। वे दोनों ही, जिसके रथवर, घोड़े, योद्धा, गजादि, वाहन हैं, ऐसी म्लेच्छ सेनासे भिड़ गये। लम्बे तीरोंसे उन्होंने शत्रुओंको सन्तप्त कर दिया। उन्होंने जनक और कनक (दोनों भाइयों) का उद्धार किया। युद्धके आँगनमें तम नामका राजा दौड़ा जो कि बब्बर, शबर और पुलिन्दोंका प्रधान था। उसने कुमारके रथको चूर-चूर कर दिया। छत्र छिन्न-भिन्न कर दिया और धनुषके दो टुकड़े कर डाले। तब

तो राहवेंण लइज्जइ वाणेंहिँ । णाइणि-णाय-काय-परिमाणेंहिँ ॥७॥
साहणु भग्गउ लग्गु उमग्गेंहिँ । करयलेंहिँ ओलम्बिय-खग्गेंहिँ ॥८॥

घत्ता

दसहिँ तुरङ्गहिँ णीसरिउ मिहिलाहिउ मएँवि आहवहों ।
आणइ जणय-णराहिवेंण तहिँ कालें वि अप्पिय राहवहों ॥९॥

[८]

बब्बर-सबर-वरूहिणि भग्गी । जणयहों जाय पिहिमि आवग्गी ॥१॥
णाणा-रयणाहरणहिँ पुज्जिय । वासुएव-बलएव विसज्जिय ॥२॥
सीयहेँ देह रिद्धि पावन्तिहेँ । एक्कु दिवसु दप्पणु जोयन्तिहेँ ॥३॥
पडिमा-छलेंण महा-भय-गारउ । आरिस-वेसु णिहालिउ णारउ ॥४॥
जणय-तणय सहसत्ति पणट्ठी । सोहागमणें कुरङ्गि व तट्ठी ॥५॥
'हा हा माएँ' भणन्ति [illegible] । [illegible] ॥६॥
अमरिस-कुद्धुद्धाइय किङ्कर । उग्गय-वर-करवाल-भयङ्कर ॥७॥
मिलेंवि तेहिँ कह कह वि ण मारिउ । लेवि अद्धचन्देंहिँ णीसारिउ ॥८॥

घत्ता

गउ स-पराहउ देवरिसि पडेँ पडिम लिहेंवि सीयहेँ तणिय ।
दरिसाविय भामण्डलहों विस-सुत्ति णाइँ णर-धारणिय ॥९॥

[९]

दिट्ठ जं जेँ पडेँ पडिम कुमारें । पञ्चहिँ सरहिँ विद्धु णं मारें ॥१॥
सुसिय-वयणु धुम्मइय-णिडालउ । वलिय-अङ्गु मोडिय-भुअ-डालउ ॥२॥
मलु-केसु पक्खोडिय-वच्छउ । दरिसाविय-दस-कामावत्थउ ॥३॥
चिन्त पढम-थाणन्तरें लग्गइ । बीयएँ पिय-मुह-दंसणु मग्गइ ॥४॥
तइयएँ ससइ दीह-णीसासें । कणइ चउत्थएँ जर-विण्णासें ॥५॥
पञ्चमें डाहें अङ्गु ण सुच्चइ । छट्ठएँ मुहहों ण काइँ मि रुच्चइ ॥६॥

रामने नागिन और नागके आकारवाले बाणोंसे उसे बेध दिया। जिनमें तलवारें अवलम्बित हैं ऐसे करतलोंके द्वारा सेना भग्न हो गयी और उन्मार्गसे जा लगी। युद्धमें भग्न होकर भील राजा अपने दसों घोड़ोंके साथ भाग गया। जनक राजाने जानकी उसी समय रामके लिए अर्पित कर दी। ॥१-९॥

[८] बर्बरों और शबरोंकी सेना भाग गयी। जनककी धरती स्वतन्त्र हो गयी। नाना रत्नों-आभरणोंके द्वारा पूजित वासुदेव और बलदेवको विसर्जित कर दिया गया। एक दिन दर्पण देखते हुए देहकी ऋद्धिको प्राप्त सीताने प्रतिबिम्बके छलसे मुनिवेषधारी नारद मुनिको देखा। जनककी पुत्री एकदम भाग खड़ी हुई, सिंहके आनेपर हरिणीकी तरह वह सन्त्रस्त हो उठी। भयरूपी ग्रहसे ग्रस्त सखियोंने 'हा माँ, हा माँ' कहते हुए कल-कल (कोलाहल) किया। अमर्षसे क्रुद्ध अनुचर अपनी श्रेष्ठ तलवारें उठाये हुए दौड़े। उन्होंने मिलकर नारद-को मारा भर नहीं, केवल धक्के देकर बाहर निकाल दिया। देवर्षि अपमानके साथ पटपर सीताका चित्र लिखकर ले गये। उन्होंने विषयुक्तिकी तरह रामकी गृहिणी (चित्रके रूपमें) भामण्डलको दिखायी ॥१-९॥

[९] कुमारने जैसे ही पटमें प्रतिमा देखी तो मानो उसे कामदेवने पाँचों तीरोंसे विद्ध कर दिया। शोषित मुख, घूमता हुआ मस्तक, मुड़ता शरीर, नष्ट भुजरूपी शाखाएँ, बँधे हुए केश, खुला हुआ वक्षःस्थल, दसों कामावस्थाओंको दिखाने-वाला। प्रथम स्थानपर (सबसे पहले) उसे चिन्ता हो गयी, दूसरी अवस्थामें वह प्रियाका मुखदर्शन चाहता, तीसरी अवस्थामें वह दीर्घ निःश्वाससे साँस लेता, चौथी अवस्थामें ज्वरके चढ़नेसे आवाज करता, पाँचवीं अवस्थामें जलन शरीरको नहीं छोड़ती, छठीमें उसके मुखको कुछ भी अच्छा

सत्तमें थाणें ण गासु लइज्जइ। अट्ठमें गमणुम्माएँहिँ भिज्जइ ॥७॥
णवमें पाण-संदेहहों ढुक्कइ। दसमएँ मरइ ण केम वि चुक्कइ ॥८॥

घत्ता

कहिउ णरिन्दहों किङ्करेंहिँ 'पहु दुक्करु जीवइ पुत्तु तउ।
काहें वि कण्णहें कारणेंण सो दसमी कामावत्थ गउ ॥९॥

[१०]

णाग-णरामर-कुल-कलियारउ। चन्दगइएँ पडिपुच्छिउ णारउ ॥१॥
'कहि कहों तणिय कण्ण कहिँ दिट्ठी। जा महु पुत्तहों हियएँ पइट्ठी' ॥२॥
कहइ महारिसि 'मिहिला-राणउ। चन्दकेउ-णामेण पहाणउ ॥३॥
तहों सुउ जणउ तेत्थु मइँ दिट्ठउ। कण्णा-रयणु तिलोय-वरिट्ठउ ॥४॥
तं जइ होइ कुमारहों भायहों। तो सिय हरइ पुरन्दर-रायहों' ॥५॥
तं णिसुणेंवि विज्जाहर-णाहें। पेसिउ चवलवेउ असगाहें ॥६॥
'जाहि विदेहा-वइउ हरेवउ। मइँ विवाह-संबन्धु करेवउ' ॥७॥
गउ सो चन्दगइहें सुहु चोऍवि। इन्दुर ढुक्कु तुरङ्गमु होएँवि ॥८॥
कोड्डें चडिउ णराहिउ जावेंहिँ। दाहिण सेढि पराइउ तावेंहिँ ॥९॥
मिहिला-णाहु मुएप्पिणु जिण-हरेँ। चवलवेउ पइसइ पुरेँ मणहरेँ ॥१०॥

घत्ता

आणिउ जणय-णराहिवइ णिय-णाहहों अक्खिउ स-रहसेँण।
चन्दणहासिएँ सो वि गउ सहुँ पुत्तेँ विरह-परव्वसेँण ॥११॥

[११]

विज्जाहर-णर-णयणाणन्देंहिँ। किउ संभासणु विहि मि णरिन्देंहिँ ॥१॥
पभणइ चन्दगमणु तोसिय-मणु। 'विण्णि वि किण्ण करहुँ सयणत्तणु ॥२॥
दुहिय तुहारी पुत्तु महारउ। होउ विवाहु मणोरह-गारउ' ॥३॥
असरिसु णवर पवड्ढिउ जणयहों। 'दिण्ण कण्ण मइँ दसरह-तणयहों ॥४॥

नहीं लगता, सातवीं अवस्थामें वह एक भी कौर नहीं खाता, आठवीं अवस्थामें जानेके उन्मादसे भर उठता, नवीं अवस्थामें प्राणोंका सन्देह उत्पन्न हो जाता, दसवीं अवस्थामें किसी प्रकार उसका मरण नहीं चूकता। अनुचरोंने राजासे कहा—"हे प्रभु! तुम्हारे पुत्रका जीना कठिन है। किसी कन्याके कारण वह दसवीं कामावस्थाको प्राप्त हुआ है ॥१-९॥

[१०] चन्द्रगतिने नाग, नर और अमरोंके कुलोंमें कलह करानेवाले नारदसे पूछा—"बताओ यह किसकी कन्या है और इसे कहाँ देखा है कि जो मेरे पुत्रके हृदयमें प्रविष्ट हो गयी है।" महामुनि नारद कहते हैं, "चन्द्रकेतु नामका मिथिला-का राजा है। उसका पुत्र जनक है, वहाँ मैंने त्रिलोकमें विशिष्ट यह कन्यारत्न देखा है? यदि वह इसकी हो सके तो पुरन्दर-राज (जनक) से सीताका हरण कर लाओ।" यह सुनकर प्रसन्नको पानेकी इच्छा रखनेवाले विद्याधर राजाने चपलवेग को भेजा कि जाओ विदेहके स्वामीको हर लाओ। मैं उससे विवाह-सम्बन्ध करूँगा।" वह चन्द्रगतिका मुँह देखकर गया। विद्याधर घोड़ा बनकर वहाँ पहुँचा। जैसे ही राजा जनक उस अश्वपर चढ़ा वैसे ही वह दक्षिण श्रेणीपर पहुँचा। मिथिला राजाको जिनमन्दिरमें छोड़कर चपलवेग सुन्दर नगरमें प्रवेश करता है। हर्षपूर्वक उसने अपने स्वामीसे कहा—कि जनकराजाको ले आया हूँ। वह भी विरहके परवश अपने पुत्रके साथ वंदनाभक्तिके लिए वहाँ गया। ॥१-११॥

[११] विद्याधरों और मनुष्योंके नेत्रोंको आनन्द देनेवाले दोनों राजाओंने सम्भाषण किया। सन्तुष्ट मन चन्द्रगति कहता है कि "हम दोनों स्वजनत्व कर लें। तुम्हारी कन्या और हमारा पुत्र। मनोरथकारी विवाह हो जाये।" इससे जनकका केवल क्रोध बढ़ा कि "मैंने विजयश्रीरूपी स्त्रीमें आसक्त, शबर-

रामहों जयसिरि-रामासत्तहों । सबर-वरूहिणि-चूरिय-गत्तहों ॥५॥
तहिँ अवसरेँ मच्छिय-अहिमाणेँ । वुत्तु णरिन्दु चन्दपयाणेँ ॥६॥
‘कहिँ विज्जाहरु कहिँ भूगोयरु । गय-मयवहुँ वड्डारउ अन्तरु ॥७॥
माणुस-खेत्तु जेँ राम कणिट्ठउ । जोविउ तहिँ कहिँ तणउ विसिट्ठउ’ ॥८॥

घत्ता

भणइ णराहिउ ‘केत्तिएँण जगेँ माणुस-खेत्तु जेँ अमालउ ।
जसु पासिउ तित्थङ्करेँहिँ सिद्धत्तणु लद्धउ केवलउ’ ॥९॥

[१२]

तं णिसुणेँवि भामण्डल-बप्पेँ । वुच्चइ विज्जा-बल-माहप्पेँ ॥१॥
‘पगुण-गुणहँ अइ-दुज्जय-भावहँ । पुरेँ अच्छन्ति एत्थु वे चावहँ ॥२॥
वज्जावत्त-समुद्दावत्तहँ । जक्खारक्खिय-रक्खिय-गत्तहँ ॥३॥
किं भामण्डलेण किं रामें । ताइँ चडावइ जो आयामें ॥४॥
परिणउ सो जेँ कण्ण पुंड पराजिउ । तं किं धम्मु परेँ वि पहु भणियउ ॥५॥
गय स-सरासणु मिहिला-पुरवरु । मण्ड भण्ड आढत्तु सयम्वरु ॥६॥
मिलिय णराहिव जे जगेँ जाणिय । सयल वि धणु-पयाव-अवमाणिय ॥७॥
को वि णाहिँ जो ताइँ चडावइ । जक्ख-सहासहुँ मुहु दरिसावइ ॥८॥

घत्ता

जाम ण गुणहिँ चडन्ताइँ अहिआयइँ कउ सुहु-दंसणइँ ।
अवसेँ अणहों अणिट्ठाइँ कुकलत्तइँ जेम सरासणइँ ॥९॥

[१३]

जं णरवइ असेस अवमाणिय । दसरह-तणय चयारि वि आणिय ॥१॥
हरि-बलएव पढुक्किय तेत्तहेँ । सीय-सयम्वर-मण्डउ जेत्तहेँ ॥२॥
दूर-णिवारिय-णरवर-लक्खेँहिँ । धणुसराइँ अहिवियइँ जक्खेँहिँ ॥३॥
‘अप्पण-अप्पणाइँ सु-पमाणइँ । णिव्वाहेवि लेहु घर-चावइँ’ ॥४॥

सेनाका शरीर चूर-चूर करनेवाले दशरथ-पुत्र रामको कन्या दे दी है।" उस अवसरपर, जिसका अभिमान बढ़ रहा है ऐसे चन्द्रगति राजाने राजा जनकसे कहा—"कहाँ विद्याधर और कहाँ मनुष्य ? गज और मशकमें बहुत अन्तर होता है। मनुष्य-क्षेत्रके लोग कनिष्ठ होते हैं, वहाँ जीवन भी कहाँका विशिष्ट होता है ?" राजा जनक कहता है कि "विश्वमें कहीं भी ऐसा क्षेत्र नहीं है, जो मनुष्य क्षेत्रसे श्रेष्ठ हो, कि जिसके पास तीर्थंकरोंने सिद्धत्व और केवलज्ञान प्राप्त किया है ?" ॥१–९॥

[१२] यह सुनकर विद्याके बल और माहात्म्यवाले भामण्डलके पिताने कहा—"लम्बी प्रत्यंचावाले, अत्यन्त दुर्जय-भाववाले दो धनुष इस नगरमें हैं, वज्रावर्त और समुद्रावर्त; जिनके शरीर यक्ष और राक्षसोंसे सुरक्षित हैं। भामण्डलसे क्या ? और रामसे क्या ? उन्हें जो आयामके साथ चढ़ा देता है, वही इस कही गयी कन्यासे परिणय कर ले।" राजाके उसी कथनको प्रमाण मानकर वे धनुषों सहित मिथिला नगर गये। मंच बना दिये गये और स्वयंवर प्रारम्भ किया गया। विश्वके जितने नामी-गिरामी राजा इकट्ठे हुए वे सब धनुषप्रतापसे अपमानित हो गये। वहाँ कोई भी नहीं था जो उन धनुषोंको चढ़ा सकता और हजारों यक्षोंके लिए मुँह दिखा सकता। जबतक वे धनुष गुणों (डोरी और गुणों) पर नहीं चढ़ते तबतक किसके लिए शुभदर्शन हो सकते हैं ? वे धनुष कुकलत्रकी तरह अवश्य ही उनके लिए अनिष्ट होंगे ॥१–९॥

[१३] जब समस्त राजा अपमानित हो गये तो दशरथके चारों पुत्रोंको बुलाया गया। बलदेव और वासुदेव वहाँ पहुँचे जहाँ सीता देवीका स्वयंवर मण्डप था। जिन्होंने लाखों नरवरोंको दूरसे हटा दिया है ऐसे यक्षोंने धनुष अर्पित कर दिये कि अपने-अपने प्रमाणके अनुसार श्रेष्ठ धनुषोंको चुनकर ले

छड्डियइँ सायर-वज्जावत्तइँ । णामहणा इव गुणेँहिँ चडन्तइँ ॥५॥
मेल्लिय कुसुम-वासु सुर-सत्थेँ । परिणिय जणय-तणय काकुत्थेँ ॥६॥
जे जे मिलिय सयम्वरेँ राणा । णिय-णिय णयरहोँ गय विद्दाणा ॥७॥
दिवसु वारु णक्खत्तु गणेप्पिणु । लग्गु जोग्गु गह-दुत्थु णिएप्पिणु ॥८॥

घत्ता

जोइसिएँहिँ आएसु किउ 'अउ लक्खण-रामहुँ स-रहसहुँ ।
आयहेँ कण्णहेँ कारणेँण होसइ विणासु बहु-रक्खसहुँ' ॥९॥

[१७]

'ससियद्धणेण ससि-वयणियउ । कुवलय-दल-दीहर-णयणियउ ॥१॥
कण्ठ-कोइल-वीणा-वाणियउ । अट्ठारह कण्णउ आणियउ ॥२॥
दस लहु-भायरहुँ समप्पियउ लक्खणहोँ अट्ठ परिकप्पियउ ॥३॥
दोणेँण विसल्ला-सुन्दरिय । कण्हहोँ चिन्तविय मणोहरिय ॥४॥
बहुदेहि अउज्झा-णयरि णिय । दसरहेँण महोच्छव-सोह किय ॥५॥
रह तिक्क-चउक्कहिँ चच्चरहिँ । कुङ्कुम-कप्पूर-पवर-सरहिँ ॥६॥
चन्दन-छडोह-दिज्जन्तएँहिँ । गायण-गीयहिँ गिज्जन्तएँहिँ ॥७॥
मणिमइयउ रइयउ वेइलिउ । मोत्तिय कणएँहिँ रङ्गावलिउ ॥८॥
सोवण्ण-दण्ड-मणि-तोरणइँ । बद्धइँ सुरवर-मण-चोरणइँ ॥९॥

घत्ता

सीय-बलइँ पइसारियइँ वणेँ जय-जय-कारिज्जन्ताइँ ।
थियइँ अउज्झहेँ अच्चलइँ रइ-सोक्ख-स यं भुञ्जन्ताइँ ॥१०॥

●

[२२. बावीसमो संधि]

कोसलणन्दणेँण स-कलत्तेँ णिय-घरु आएं
आसाढट्ठमिहिँ किउ ण्हवणु जिणिन्दहोँ राएं ॥

हैं। उन्होंने समुद्रावर्त और वज्रावर्त धनुषोंको डोरीपर चढ़ाकर साम्यधनुषोंकी भाँति ले लिया। देवसमूहने पुष्पवृष्टि की। रामने जनकपुत्रीसे विवाह कर लिया। जो-जो राजा वहाँ सम्मिलित हुए थे वे दुःखी होकर अपने-अपने नगर चले गये। दिवस, वार और नक्षत्र गिनकर, लग्न योग और ग्रहोंकी दुस्थितिको देखकर, ज्योतिषियोंने आदेश किया कि इस कन्याके कारण हर्ष सहित राम-लक्ष्मणकी जय होगी और अनेक राक्षसोंका विनाश होगा ॥१-९॥

[१४] शशिवर्द्धन राजा चन्द्रमुखी, कुवलयके समान लम्बे नेत्रोंवाली, सुन्दर कोयलके समान वाणीवाली कन्याएँ ले आया। उनमें-से दस छोटे भाइयोंको दे दी गयीं और आठ लक्ष्मणके लिए। राजा द्रोणने विशल्या सुन्दरी मनोहर कन्या लक्ष्मणको संकल्पित की। वैदेहीको अयोध्या नगरी ले जाया गया। दशरथने रथ्या, त्रिपथ और चतुष्पथों, केशर और कपूर से महान् और श्रेष्ठ चर्चरियों दिये जाते हुए चन्दनके छिड़कावों, गाये जाते हुए गायन गीतोंके द्वारा महोत्सव-शोभा की। मणिमय देहलीकी रचना की गयी। मोतियोंकी कनक (चूरोंसे) राँगोली की गयी। सुरवरोंके मनोंको चुरानेवाले स्वर्णदण्ड और मणिमय तोरण बाँध दिये गये। जिनकी जय-जय की जा रही है ऐसे सीता और रामचन्द्रको नगरमें प्रवेश कराया गया। रतिसुखको भोगते हुए वे दोनों अयोध्यामें अविचल रूपसे स्थित थे। ॥१-१०॥

बाईसवीं सन्धि

अपने घर आकर दशरथके पुत्र रामने असाढ़की अष्टमीके दिन पत्नीके साथ जिनेन्द्रका स्नानाभिषेक किया।

[१]

सुर-समर-सहासेंहिँ दुम्महेण । किउ पहवणु जिणिन्दहों दसरहेण ॥१॥
पट्ट विअइँ जिण-तणु-धोवणाइँ । देविहिँ दिव्वइँ गन्धोदयाइँ ॥२॥
सुप्पहहेँ णवर कञ्चुइ ण पत्तु । पहु पभणइ रहसुच्छलिय-गत्तु ॥३॥
'कहेँ काइँ णियम्बिणि मणेँ विसण्ण । चिर-चित्तिय भित्ति व थिय विवण्ण' ॥४॥
पणवेप्पिणु वुच्चइ सुप्पहाएँ । 'किर काइँ महु त्तणियएँ कहाएँ ॥५॥
जइ हउँ जेँ पाणवल्लहिय देव । तो गन्ध-सलिलु पावइ ण केम' ॥६॥
तहिँ अवसरेँ कञ्चुइ ढुक्कु पासु । छण-ससि व णिरन्तर-धवलियासु ॥७॥
गय-दन्तु अयंगमु (?) दंड-पाणि । अणियच्छिय-पहु पक्खलिय-वाणि ॥८॥

घत्ता

गरहिउ दसरहेँण 'पइँ कञ्चुइ काइँ चिराविउ ।
जलु जिण-वयणु जिह सुप्पहहेँ दवत्ति ण पाविउ' ॥९॥

[२]

पणवेप्पिणु तेण वि वुत्तु एम । 'गय दियहा जोव्वणु ल्हसिउ देव ॥१॥
पढमाउसु जर धवलन्ति आय । पुणु असइ व सीस-वलग्ग जाय ॥२॥
गइ तुट्टिय विहडिय सन्धि-बन्ध । ण सुणन्ति कण्ण लोयण णिरन्ध ॥३॥
सिरु कम्पइ मुहेँ पक्खलइ वाय । गय दन्त सरीरहों णट्ठ छाय ॥४॥
परिगलिउ रुहिरु थिउ णवर चम्मु । महु एत्थु जेँ हुउ णं अवरु जम्मु ॥५॥
गिरि-णइ-पवाह ण वहन्ति पाय । गन्धोवउ पावउ केम राय' ॥६॥
वयणेण तेण किउ पहु-वियप्पु । गउ परम-विसायहों राम-वप्पु ॥७॥
'सच्चउ चलु जीविउ कवणु सोक्खु । तं किज्जइ सिज्झइ जेण मोक्खु ॥८॥

घत्ता

सुहु महु-बिन्दु-समु दुहु मेरु-सरिसु पवियम्भइ ।
वरि तं कम्मु किउ जं पउ अजरामरु लब्भइ ॥९॥

[१] देवोंके साथ हजारों युद्धोंके द्वारा अजेय दशरथने जिनेन्द्रका अभिषेक किया। जिनवरके शरीरके प्रक्षालनका दिव्य गन्धोदक देवियोंके लिए भिजवाया गया। केवल सुप्रभाके पास कंचुकी नहीं पहुँच सका। इससे उल्लसित शरीर राजा कहता है—"हे नितम्बिनी, तुम उदास क्यों हो? प्राचीन चित्रित दीवालकी तरह विवर्ण क्यों हो?" तब सुप्रभाने प्रणामपूर्वक कहा—"मेरी कथासे क्या? हे देव, यदि मैं भी प्राणप्यारी होती तो गन्धोदक कैसे नहीं पाती।" जो पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान निरन्तर धवल मुखवाला था, जिसके दाँत जा चुके थे, जो अजंगम (जड़) था, जिसके हाथमें दण्ड था, जिसने स्वामीको नहीं देखा है, जिसकी वाणी स्खलित है, ऐसा कंचुकी इसी अवसरपर वहाँ पहुँचा। राजा दशरथने उसकी निन्दा की—"हे कंचुकी, तुमने देर क्यों की जिससे जिनवचनके समान जिनाभिषेकका जल सुप्रभाको जल्दी नहीं मिला।" ॥१–९॥

[२] उस कंचुकीने भी प्रणाम कर यह निवेदन किया—मेरे दिन चले गये हैं, यौवन ढल गया है। प्रथम आयुको बुढ़ापा सफेद करता हुआ आ गया है और वह असती स्त्रीकी तरह सिरसे जा लगा है। गति टूट चुकी है, सन्धि बन्ध विघटित हैं, कान सुनते नहीं हैं और नेत्र निरा अन्धे हैं। सिर काँपता है और वाणी लड़खड़ाती है। दाँत जा चुके हैं और शरीरकी कान्ति क्षीण हो चुकी है। रक्त गल चुका है, केवल चमड़ी शेष है। अब पैर पहाड़ी नदीके प्रवाहकी तरह नहीं दौड़ते; हे राजन्, वह गन्धोदक किस तरह प्राप्त करे।" इन शब्दोंसे राजाने अपने मनमें विचार किया और रामके पिता दशरथ अत्यन्त विषादको प्राप्त हुए। सचमुच जीवन चंचल है, कौन सुख है वह किया जाये और जिससे मोक्ष सिद्ध हो? सुख मधुकी बूँदकी तरह है और दुःख मेरुपर्वतकी तरह बढ़ता जाता है; वही कर्म

[३]

कं दिवसु वि होसइ आरिसाहुँ । कञ्चुइ-अवत्थ अम्हारिसाहुँ ॥१॥
को हउँ का महि कहोँ तणउ दब्बु । सिंहासणु छत्तइँ अथिरु सब्बु ॥२॥
जोव्वणु सरीरु जीविउ धिगत्थु । संसारु असारु अणत्थु अत्थु ॥३॥
विसु विसय बन्धु दिढ-बन्धणाइँ । घर-दारइँ परिहव-कारणाइँ ॥४॥
सुय सत्तु विढत्तउ अवहरन्ति । जर-मरणहँ किङ्कर किं करन्ति ॥५॥
जीवाउ वाउ हय हय वराय । सन्दण सन्दण गय गय जेँ णाय ॥६॥
तणु तणु जेँ खणद्धेँ खयहोँ जाइ । धणु धणु जि गुणेण वि वङ्कु थाइ ॥७॥
दुहिया वि दुहिय माया वि माय । सम-भाउ लेन्ति पियरेण भाय ॥८॥

घत्ता

भायइँ भरहु मि हम्मइँ रज्जहोँ लग्गेँवि ।
अप्पुणु तउ करमि' थिउ दसरहु एम वियप्पेँवि ॥९॥

[४]

तहिँ अवसरेँ आइउ सवण-सङ्घु । पर-समयसमीरण-गिरि-अलङ्घु ॥१॥
दुम्मह-मय-वम्मह-महण-सीलु । भय-भङ्गुर-भुअणुद्धरण-लीलु ॥२॥
अहि-विसम-विसय-विस-वेय-समणु । सम-दम-णिसेणि-किय-मोक्ख-गमणु ॥३॥
तव-सिरि-वररामालिङ्गियङ्गु । कलि-कलुस-सलिल-सोसण-पयङ्गु ॥४॥
तित्थङ्कर-चरणम्बुरुह-भमरु । किय-मोह-महासुर-णयर-डमरु ॥५॥
तहिँ सव्वभूइ णामेण साहु । जाणिय-संसार-समुद्द-थाहु ॥६॥
मगहाहिउ विसय-विरत्त-देहु । अवहत्थिय-पुत्त-कलत्त-णेहु ॥७॥

अच्छा और हितकारी है कि जिससे अजर-अमर पद प्राप्त किया जा सके ॥१-९॥

[३] किसी दिन इस प्रकार हम-जैसे ज्ञानी लोगोंकी भी कंचुकीके समान अवस्था होगी। मैं कौन? भूमि कौन? किसका धन? सिंहासन और छत्र सब अस्थिर हैं। यौवन शरीर और जीवनको धिक्कार है। संसार असार है। अर्थ अनर्थ है। विषय विष हैं। बन्धु दृढ़ बाँधनेवाले हैं, घर और द्वार पराभव-के कारण हैं। सुत शत्रु हैं। अर्जित धनका अपहरण कर लेते हैं। बुढ़ापे और मृत्युके अनुचर क्या करते हैं। जीवकी आयु हवा है; बेचारे हय आहत होते हैं; स्यन्दन खण्डित हैं, जो चले गये, वे गये, लौटकर नहीं आते। तनु तृण है, जो एक क्षणमें नाशको प्राप्त होता है। धन धनुष है, जो गुण (प्रत्यंचा गुण) से टेढ़ा-टेढ़ा जाता है। दुहिताएँ भी दुष्ट हृदय हैं, माता भी माया होती है। चूँकि समान भाग लेते हैं इसलिए वे भाई हैं। इनको और भी सबको राघवके लिए समर्पित कर मैं स्वयं तप करूँगा। दशरथ यह विचारकर स्थिर हो गये ॥१-९॥

[४] उस अवसरपर एक श्रमण संघ आया, जो उस अवसरपर परसिद्धान्त रूपी हवाके लिए अलंघ्य गिरि था, जो खोटी इच्छा, मद और कामदेवको नष्ट करनेवाला था, जो भयसे पीड़ित भुजनोंका उद्धार करनेवाला था, जो साँपके समान विषम विषयरूपी विषके वेगको शान्त करनेवाला था, जिसने क्षमा और दमकी नसैनीसे मोक्षगमन किया है, जिन्होंने तपश्रीरूपी श्रेष्ठ रमणीका शरीर आलिंगित किया है, जो कलिके कलुषरूपी जलके शोषणके लिए सूर्य है, जो तीर्थंकरके चरणकमलोंका भ्रमर है, जिसने मोहरूपी महासुरके नगरमें उपद्रव मचाया है, ऐसा एक ऋषिसंघ आया। उसमें, जिन्होंने संसारकी थाह माप ली है, जो विषयोंसे विरक्त देह हैं,

गिव्वाण-महागिरि धीरिमाएँ । रयणायर-गुरु गम्भीरिमाएँ ॥८॥

घत्ता

रिसि-सङ्घाहिवइ सो आउ अउज्झ भडारउ ।
'सिवपुरि-गमणु करि' दसरहहोँ णाइँ हक्कारउ ॥९॥

[५]

पडिवण्णएँ तहिँ तेत्तडएँ कालें । सो पुरें रहणेउरचक्कवालें ॥१॥
भामण्डलु मण्डलु परिहरन्तु । अच्छइ रिसि सिद्धि व संभरन्तु ॥२॥
वइदेहि-विरह-वेयण सहन्तु । दस कामावत्थउ दक्खवन्तु ॥३॥
पडिहन्ति ण विज्जाहर-तियाउ । णउ णाण-खाण-भोयण-कियाउ ॥४॥
ण जलद्द ण चन्दणु कमल-सेज्ज । ढुक्कन्ति जन्ति अण्णोण्ण वेज्ज ॥५॥
वाहिज्जइ विरहें दूसहेण । णउ फिट्टइ केण वि ओसहेण ॥६॥
णीसासु मुएप्पिणु दीहु दीहु । पुणरवि थिउ थक्केंवि जेम सीहु ॥७॥
'भूगोयरि भुञ्जमि मण्ड लेवि' । णीसरिउ स-साहणु सण्णहेवि ॥८॥

घत्ता

पत्तु वियड्ढ-पुरु तं णिएँवि जाउ जाईसरु ।
'अण्णहिँ भव-गहणेँ हउँ होन्तु एत्थु रज्जेसरु' ॥९॥

[६]

मुच्छाविउ तं पेक्खेंवि पएसु । संभरेंवि भवन्तरु णिरवसेसु ॥१॥
सब्भावें पभणिउ तेण ताउ । 'कुण्डलमण्डिउ णामेण राउ ॥२॥
हउँ होन्तु एत्थु अखलिय-मरट्टु । पिङ्गलु णामेण कुबेर भट्टु ॥३॥
ससिकेउ-दुहिय अवहरेंवि आउ । परिवसइ कुडीरएँ किर वराउ ॥४॥
उद्दालिउ मइँ तहोँ तं कलत्तु । सो वि मरेंवि सुरत्तणु कहि मि पत्तु ॥५॥
सुउ हउ मि विदेहहेँ देहेँ आउ । णिउ देवेँ जाणइ-जमल-जाउ ॥६॥
वणेँ घत्तिउ कप्पेण वि ण भिण्णु । पुप्फवइहेँ पइँ सायरेण दिण्णु ॥७॥

जिन्होंने पुत्र और कलत्रके स्नेहको दूर कर दिया है, जो धैर्यमें सुमेरु पर्वत और गम्भीरतामें महासमुद्र थे, ऐसे संघाधिपति आदरणीय सत्यभूति अयोध्या नगरीमें आये और जैसे उन्होंने दशरथको ललकारा कि "शिवपुरीके लिए गमन कर।" ॥१-९॥

[५] वहाँ वैसा समय आनेपर, रथनूपुर चक्रवाल नगरमें भामण्डल अपना राजपाट छोड़कर, सिद्धिकी याद करते हुए मुनिकी तरह स्थित था—वैदेहीकी विरह वेदनाको सहन करता हुआ तथा दश कामावस्थाओंको दिखाता हुआ। उसे विद्याधर स्त्रियाँ अच्छी नहीं लगती थीं और न ही स्नान, खाना, भोजनक्रियाएँ। न जलसे भीगा पंखा, न चन्दन और कमलसेज; एकके बाद एक वैद्य आते और चले जाते। वह असह्य विरहसे व्याधिग्रस्त था, जो किसी भी औषधिसे दूर नहीं हो सकती थी। लम्बी-लम्बी साँसें लेकर, वहाँ फिर सिंहकी तरह स्थित हो गया। मैं उस मनुष्यनीको बलपूर्वक लेकर भोगूँगा? (यह सोचकर) वह साधनसहित तैयार होकर निकला। वह विदग्ध नगर पहुँचा। उसे देखकर उसे जातिस्मरण हो आया कि पूर्व जन्ममें मैं यहाँ राजा था ॥१-९॥

[६] उस प्रदेशको देखकर वह मूर्च्छित हो गया। अपने निरवशेष जन्मान्तरको याद कर सद्भावनाके साथ उसने अपने पितासे कहा, "यहाँ मैं कुण्डलमण्डित नामका राजा था। मैं यहाँ अस्खलित मान। वहाँ पिंगल नामका कुबेर भट्ट था जो बिचारा चन्द्रकेतुकी कन्याका अपहरण कर एक कुटीरमें रहता था। मैंने उसकी उस स्त्रीको छीन लिया। वह भी मरकर कहीं देवत्वको प्राप्त हुआ। मैं भी मरकर विदेहाके शरीरमें आया। जानकीके साथ, युगल उत्पन्न हुआ मैं देवके द्वारा ले जाया गया। मैं वनमें फेंक दिया गया। परन्तु मुझे काँटा भी नहीं

घत्ता

वड्डिउ तुम्हु घरेँ जणु सयलु वि एँउ परियाणइ ।
जणउ जणेरु महु मायरि विदेह सस आगइ' ॥८॥

[७]

वित्तन्तु कहेप्पिणु णिरवसेसु । गउ वन्दणहत्तिएँ तं पएसु ॥१॥
जहिँ वसइ महारिसि सव्वभूइ । जहिँ जिणवर-ण्हवण-महाविभूइ ॥२॥
वइरग्ग-कालु जहिँ दसरहासु । जहिँ सीय-राम-लक्खण-विलासु ॥३॥
सत्तुहण-भरह जहिँ मिलिय बे वि । गउ तहिँ भामण्डलु जणणु लेवि ॥४॥
जिणु वन्दिउ मोक्ख-वलग्ग-जङ्घु । पुणु गुरु-परिवाडिएँ सवण-सङ्घु ॥५॥
पुणु किउ संभासणु समउ तेहिँ । सत्तुहण-भरह-बल-लक्खणेहिँ ॥६॥
जाणाविउ सीयहेँ भाइ जेम । जिह हरि-बल-साला सावलेव ॥७॥
सुउ परम-धम्मु सुह-भायणेण । तव-चरणु लयउ चन्दायणेण ॥८॥

घत्ता

दसरहु अण्ण-दिणेँ किर रामहोँ रज्जु समप्पइ ।
केक्कय ताव मणेँ उण्हालएँ धरणि व तप्पइ ॥९॥

[८]

णरिन्दस्स सोऊण पव्वज्ज-पज्जं । स-रामाहिरामस्स रामस्स रज्जं ॥१॥
ससा दोणरायस्स भज्जाणुराया । तुलाकोडि-कन्ती-लयालिद्ध-पाया ॥२॥
स-पालम्ब-कञ्ची-पहा-भिण्ण-गुज्झा । अणुत्तुङ्ग-भारेण जा णिम्ब-मज्झा ॥३॥
णवासोय-वच्छच्छयाच्छाय-पाणी । वरालाविणी-कोइलालाव-वाणी ॥४॥
महा-मोरपिच्छोह-संकास-केसा । अणङ्गस्स भल्ली व पच्चङ्गण-वेसा ॥५॥

लगा। और तुमने मुझे, पुष्पावतीको सादर दे दिया।" समस्त जन यही जानता है कि मैं तुम्हारे घरमें बड़ा हुआ हूँ। जनक मेरे पिता हैं। माता विदेहा है, और बहन जानकी है ॥१–८॥

[७] अपना समस्त वृत्तान्त कहकर भामण्डल उस प्रदेश-की वन्दनाभक्तिके लिए गया जहाँ महामुनि सत्यभूति निवास करते थे और जहाँ जिनवरके अभिषेककी महाविभूति हो रही थी। जहाँ दशरथके वैराग्यका समय था। जहाँ सीता, राम और लक्ष्मणका विलास था। जहाँ भरत और शत्रुघ्न दोनों मिले हुए थे। भामण्डल अपने पिताको लेकर उस स्थानके लिए गया। पहले उसने, जिनका पैर मोक्षसे लगा हुआ है ऐसे इन्द्रभूति जिनकी वन्दना की, फिर गुरुपरम्परासे श्रमणसंघ की। फिर इसने भरत, लक्ष्मण, राम, शत्रुघ्नके साथ बातचीत की। उन्हें बताया कि किस प्रकार वह सीताका भाई है, और किस प्रकार राम और लक्ष्मणका अपराधी साला है। पुण्यके भाजन चन्द्रगतिने परमधर्म सुना और तपश्चरण स्वीकार कर लिया। दशरथ दूसरे दिन जब रामको राज्य देते हैं, तब कैकेयी अपने मनमें उसी प्रकार सन्तप्त हो उठती है, जिस प्रकार ग्रीष्मकालमें धरती ॥१–९॥

[८] राजा दशरथका प्रव्रज्या-यज्ञ और लक्ष्मीसे अभिराम रामके राज्यकी बात सुनकर द्रोण राजाकी बहन कैकेयी भग्न अनुरागवाली हो गयी। जिसके पैर नूपुरोंकी कान्तिरूपी लता-से लिप्त हैं, गलेके आभूषण और करधनीकी प्रभासे जिसका गुह्यभाग स्फुटित है, स्तनोंके ऊँचे भारसे जिसका मध्यभाग नीचा है, जिसके हाथ, नव अशोक वृक्षके पत्तोंकी कान्तिके समान हैं, सुन्दर आलाप करनेवाली कोयलके आलापके समान जिसकी वाणी है, जिसके केश महामयूरकी पूँछके समान हैं, प्रच्छन्न रूपवाली जो कामदेवकी भल्लिकाके समान है, ऐसी

गया केकया जत्थ अत्थाण-मग्गो । णरिन्दो सुरिन्दो व पीढं वलग्गो ॥६॥
वरो मग्गिओ 'णाह सो एस कालो । महं णन्दणो होउ रज्जाणुपालो ॥७॥
पिए होउ एवं सओ साबलेवो । समायारिओ लक्खणो रामएवो ॥८॥

घत्ता

'अइ तुहुँ पुत्तु महु, तो पत्थिउ पेसणु किज्जइ ।
छत्तइँ वइसणउ, वसुमइ भरहहौं अप्पिज्जइ ॥९॥

[९]

अहवइ भरहु वि आसण्ण-भव्वु । सो चिन्तइ अथिरु असारु सव्वु ॥१॥
अरु परिगणु जीविउ सरीरु वित्तु । अच्छइ तवचरण-णिहित्त-चित्तु ॥२॥
वइँ मुएँवि तासु जइ दिण्णु रज्जु । तो लक्खणु लक्खइँ हणइ अज्जु ॥३॥
ण वि हउँ ण वि भरहु ण केकया वि । सत्तुहणु कुमारु ण सुप्पहा वि' ॥४॥
तं णिसुणेंवि पप्फुल्लिय-मुहेण । वोल्लिज्जइ दसरह-तणुरुहेण ॥५॥
'पुत्तहौं पुत्तत्तणु एत्तिउं जे । जं कुलु ण चडाइ वसण-पुञ्जें ॥६॥
जं णिय-जणणहौं आणा-विहेउ । जं करइ तिवग्गहौं पाण-छेउ ॥७॥
किं पुत्तें पुणु पयपूरणेण । गुण-हीणें हियय-विसूरणेण ॥८॥

घत्ता

लक्खणु ण वि हणइ तवु भावहौं सच्चु पगासहौं ।
भुञ्जउ भरहु महि हउँ जामि ताय वण-वासहौं' ॥९॥

[१०]

हक्कारिउ भरहु णरेसरेण । पुणु पुच्चिउ णेह-महाभरेण ॥१॥
'तउ छत्तइँ तउ वइसणउ रज्जु । साहेवउ महँ अप्पणउ कज्जु' ॥२॥
तं वयणु सुणवि दुम्मिय-मणेण । धिक्कारिउ केकय-णन्दणेण ॥३॥
'तुहुँ ताय धिगत्थु धिगत्थु रज्जु । मायरि धिगत्थु सिरेँ पडउ वज्जु ॥४॥
णउ जाणहुँ महिलहँ को सहाउ । जोव्वण-मएण ण गणन्ति पाउ ॥५॥

कैकेयी वहाँ गयी जहाँ आस्थानमार्ग था और उसपर इन्द्रकी तरह राजा बैठा हुआ था। उसने वर माँगा—"हे स्वामी, यह वह समय है। मेरे पुत्रको राज्यका अनुपालक नियुक्त कीजिए।" हे प्रिये, ऐसा हो, (यह कहकर) उसने गर्वसहित राम और लक्ष्मणको पुकारा। "यदि तुम मेरे पुत्र हो, तो इतनी आज्ञा करना कि छत्र, सिंहासन और धरती भरतको अर्पित कर दो।" ॥१-८॥

[९] अथवा भरत भी आसन्नभव्य हैं, वह सबको असार और अस्थिर समझते हैं। घर, परिजन, जीवन, शरीर और धनको भी। उनका चित्त तपश्चरणमें रखा हुआ है। यदि मैं तुम्हें छोड़कर भरतको राज्य दूँ तो लक्ष्मण लाखोंका काम तमाम कर देगा। न मैं, न भरत और न कैकेयी ही। शत्रुघ्नकुमार और सुप्रभा भी नहीं? यह सुनकर प्रफुल्लमुख दशरथपुत्रने कहा—"पुत्रका पुत्रत्व उसीमें है कि वह कुलको संकट-समूहमें नहीं डालता, जो वह अपने पिताकी आज्ञा धारण करता है और जो विपक्षका प्राण-नाश करता है। गुणहीन और हृदयको पीड़ा पहुँचानेवाले 'पुत्र' शब्दकी पूर्ति करनेवाले पुत्रसे क्या?" "लक्ष्मण हनन नहीं करता, आप तप साधें, सत्यको प्रकाशित करें, भरत धरतीका भोग करें; हे पिता, मैं वनवासके लिए जाता हूँ।" ॥१-९॥

[१०] राजा दशरथने भरतको पुकारा और स्नेहसे भरे हुए उन्होंने कहा, "तुम्हारे छत्र हैं, तुम्हारा सिंहासन है, तुम्हारा राज्य है। मैं अब अपने कामको (परलोक) सिद्ध करूँगा।" यह सुनकर कैकेयीपुत्र (भरत) ने दुःखीमनसे धिक्कारा, "हे पिता, तुम्हें धिक्कार है, राज्यको धिक्कार है, माताको धिक्कार है, राज्यके सिरपर वज्र पड़े। हम नहीं जानते महिलाओंका क्या स्वभाव होता है? यौवनके मदमें वे पापको भी नहीं

णउ बुज्झहि तहुँ मि सहा-मयन्धु । किं रामु मुएँवि महु पट्ट-बन्धु ॥६॥
सप्पुरिस वि चञ्चल-चित्त होन्ति । मणेँ जुत्ताजुत्त ण चिन्तवन्ति ॥७॥
मा णिक्कु मुएँवि को लेइ कच्चु । कामन्धहोँ किर कहिँ तणउ सच्चु ॥८॥

घत्ता

अच्छउ पुणु वि घरेँ सत्तुहणु रामु हउँ लक्खणु ।
अलिउ म होहि तुहुँ महि भुञ्जेँ भडारा अप्पुणु' ॥९॥

[११]

सुय-वयण-विरमेँ दससन्दणेण । वुच्चइ अणरण्णहोँ णन्दणेण ॥१॥
'केक्कयहेँ रज्जु रामहोँ पवासु । पव्वज्ज मज्झु एउ अगेँ पगासु ॥२॥
तुहुँ पालेँ धरासउ परम-रम्मु । णउ आयहोँ पासिउ को वि धम्मु ॥३॥
दिज्जइ जइवरहुँ महप्पदाणु । सुअ-भेसह-अभयाहार-दाणु ॥४॥
रक्खिज्जइ सीलु कुसील-णासु । किज्जइ जिण-पुज्ज महोववासु ॥५॥
जिण-वन्दण णाणपेक्खण-करणु । सल्लेहण-कालु समाहि-मरणु ॥६॥
एहु सव्वहुँ धम्महुँ परम-धम्मु । जो पालइ तहोँ सुर-मणुय-जम्मु' ॥७॥
तं वयणु सुणेवि सइत्तणेण । वुच्चइ सुहमइ-दोहित्तएण ॥८॥

घत्ता

'जइ घर-वासेँ सुहु एउ जेँ ताय वढिवज्जहि ।
तो तिण-समु गणेँवि कज्जेण केण पव्वज्जहि' ॥९॥

[१२]

तो लेहु मुएँवि दसरहेँण वुत्तु । 'जइ सच्च तुहुँ महु तणउ पुत्तु ॥१॥
तो किं पव्वज्जहेँ करहि विग्घु । कुलवंस-धुरन्धरु होहि सिग्घु ॥२॥
केक्कयहेँ सच्चु जं दिण्णु आसि । तं णिरिणु करहि गुण-रयण-रासि' ॥३॥
तो कोसल-दुहिया-दुल्लहेण । बोल्लिज्जइ सीया-वल्लहेण ॥४॥
'गुणु केवलु वसुहहेँ भुत्तियाएँ । किं खणेँ-खणेँ डस-पडत्तियाएँ ॥५॥
पालिज्जउ तायहोँ तणिय वाय । लइ महु उवरोहेँ पिहिवि माय' ॥६॥

गिनतीं। महामदान्ध तुम भी कुछ नहीं समझते, क्या रामको छोड़कर राजपट्ट मुझे बाँधा जायेगा? सज्जन पुरुष भी चंचल चित्त होते हैं, मनमें युक्त-अयुक्तका विचार नहीं करते। माणिक्यको छोड़कर काँच कौन ग्रहण करेगा? कामान्धके लिए किसका सत्य? आप घरपर ही रहें, शत्रुघ्न, राम, मैं और लक्ष्मण (वनके लिए जाते हैं) तुम भी झूठे मत बनो, हे आदरणीय! तुम स्वयं धरतीका उपभोग करो' ॥१-९॥

[११] भरतके वचन समाप्त होनेपर, अणरण्यके पुत्र दशरथने कहा—"कैकय (भरत) के लिए राज्य, रामके लिए प्रवास, मेरे लिए प्रव्रज्या" यही जगमें स्पष्ट है। तुम परमरम्य गृहस्थ धर्मका पालन करो, इसकी तुलनामें कोई धर्म नहीं है? मुनिवरोंके लिए महाप्रधान श्रुत औषधि, अभय और आहार-दान दिया जाये। खोटी सीमाका नाश करनेवाले शीलकी रक्षा की जाये। महान् उपवास, जिनकी पूजा की जाये। जिनकी वन्दना, बारह अनुप्रेक्षाओंका चिन्तन और सल्लेखना कालमें समाधिमरण, यह सब धर्मोंमें परमधर्म है; जो इसका पालन करता है, उसका देव और मनुष्य जन्म होता है।" यह वचन सुनकर, शुभमतिके नाती भरतने अपने मनसे कहा—हे तात! तुमने जो यह कहा कि गृहवासमें सुख है। तो तुम, उसे तृणके समान समझकर किस कारण संन्यास ग्रहण कर रहे हो ॥१-९॥

[१२] तब खेद? छोड़कर दशरथने कहा—"यदि तुम मेरे सच्चे पुत्र हो, तो प्रव्रज्यामें विघ्न पैदा क्यों करते हो? तुम शीघ्र अपने कुलवंशकी धुरीको धारण करनेवाले बनो। कैकेयीको जो सत्य वचन मैंने दिया है, हे गुणरत्नराशि, तुम मुझे उससे उऋण करो।" तब कोशलकन्याके प्रिय और सीताके पति (रामने) कहा—"केवल धरतीके भोगमें गुण है; क्षण-क्षणमें उक्ति और प्रतिउक्तिसे क्या? पिताके वचनका पालन करना चाहिए।

तो एम भणन्तेँ राहवेण । णिव्वूढाणेय-महाहवेण ॥७॥
खीरोयमहण्णव-णिम्मलेण । णिम्माण-महागिरि-अविचलेण ॥८॥

घत्ता

पेक्खन्तहोँ जणहोँ सुरकरि-कर-पवर-पचण्डेँहिँ ।
पट्टु णिबद्धु सिरेँ रहु-सुएँण स यं भुव-दण्डेँहिँ ॥९॥

●

[२३. तेवीसमो संधि]

तहिँ मुणि-सुव्वय-तित्थेँ सुहयण-कण्ण-रसायणु ।
रावण-रामहुँ जुज्झु तं णिसुणहु रामायणु ॥

[१]

णमिऊण भडारउ रिसह-जिणु । पुणु कव्वहोँ उप्परि करमि मणु ॥१॥
जगेँ लोयहुँ सुयणहुँ पण्डियहुँ । सद्दत्थ-सत्थ परिचड्ढियहुँ ॥२॥
किं चित्तइँ गेण्हेँवि सक्कियइँ । वासेण वि जाइँ ण रञ्जियइँ ॥३॥
तो कवणु गहणु अम्हारिसेँहिँ । वायरण-विहूणेँहिँ आरिसेँहिँ ॥४॥
कइ अत्थि अणेय भेय-भरिय । जे सुयण-सासेँहिँ आयरिय ॥५॥
चक्कलएँहिँ कुलएँहिँ खन्धएँहिँ । पवणुद्धुअ-रासालुद्धएँहिँ ॥६॥
मञ्जरिय-विलासिणि-णक्कुडेँहिँ । सुह-छन्देँहिँ सद्देँहिँ खडहडेँहिँ ॥७॥
हउँ किं पि ण जाणमि मुक्खु मणेँ । णिय बुद्धि पयासमि तो वि जणेँ ॥८॥
जं सयलेँ वि तिहुवणेँ वित्थरिउ । आरम्भिउ पुणु राहवचरिउ ॥९॥

घत्ता

भरहहोँ पव्वएँ पइट्ठेँ तो णिव्वुइ-महाहवेँ ।
पट्टणु उज्झ मुएवि गउ वण-वासहोँ राहउ ॥१०॥

हे भाई, मेरे अनुरोधसे पृथ्वी ले लो।" तब इस प्रकार कहते हुए अनेक महायुद्धोंका निर्वाह करनेवाले क्षीर समुद्रके समान निर्मल तथा सुमेरुपर्वतके समान अविचल रघुसुत रामने लोगोंके देखते-देखते ऐरावतकी सूँड़के समान प्रचण्ड अपने भुजदण्डोंसे भरतके सिरपर पट्ट बाँध दिया ॥१-९॥

•

तेईसवीं सन्धि

मुनिसुव्रत तीर्थंकरके उस तीर्थमें राम और रावणका जो युद्ध हुआ, बुधजनोंके कानोंके लिए रसायन उस रामायणको सुनो।

[१] आदरणीय ऋषभ जिनको प्रणाम कर मैं पुनः काव्यके ऊपर मन करता हूँ। जगमें जिन्होंने शब्दार्थ और शास्त्रोंको मर्दित (पारंगत) कर रखा है, ऐसे सज्जन और पण्डित लोगोंके उन चित्तोंको क्या ग्रहण किया जा सकता है (प्रसन्न किया जा सकता है) कि जो व्याससे द्वारा भी रंजित नहीं हुए। तो फिर हम-जैसे चिल्लानेवाले व्याकरणसे हीन लोगोंके द्वारा उनका क्या ग्रहण (मनोरंजन) होगा? कवि अनेक भेदोंसे भरित हैं, जो सुजनोंके कथनों चकलक कुलक स्कन्धक पवनोद्धत रासालुब्धक मञ्जरीक विलासिनी मक्कुड शुभ छन्दों, खडखड शब्दों (??), से सम्मानित हैं। मैं मूर्ख अपने मनमें कुछ भी नहीं जानता; फिर भी लोगोंमें मैं अपनी बुद्धि प्रकाशित करता हूँ। जो समस्त त्रिभुवनोंमें विस्तृत है उस राघवचरितको मैं आरम्भ करता हूँ। भरतको राजपट्ट बाँधे जानेपर, महायुद्धोंका निर्वाह करनेवाले राम अयोध्या नगर छोड़कर, वनवासके लिए चल दिये ॥१-१०॥

[२]

जं परिवड्ढिउ पट्टु परिओसें । जय-मङ्गल-जय-तूर-णिघोसें ॥१॥
दसरह-चलण-जुयलु जयकारेंवि । दाइय-मच्छरु मणें अवहारेंवि ॥२॥
सम्पय रिद्धि विद्धि अवगण्णेंवि । तायहों तणउ सच्चु परिमण्णेंवि ॥३॥
णिग्गउ बलु बलु णाइँ हरेप्पिणु । लक्खणो वि लक्खणइँ लएप्पिणु ॥४॥
संचल्लेहिँ तेहिँ विहाणउ । ठिउ हेट्ठामुहु दसरहु राणउ ॥५॥
छिवणएँ णाइँ तिसूलें सल्लिउ । '[illegible] घल्लिउ ॥६॥
धिगधिगत्थु' जणपुणु पचोल्लिउ । 'लङ्घिउ कुल-कमु वि सुमहल्लउ ॥७॥
अहवइ जइ मइँ सच्चु ण पालिउ । तो णिय-णामु गोउ मइँ मइलिउ ॥८॥
धरि गउ रामु ण सच्चु विणासिउ । सच्चु महन्तउ सव्वहों पासिउ ॥९॥
सच्चें अम्बरें तवइ दिवायरु । सच्चें समउ ण मुक्कइ सायरु ॥१०॥
सच्चें वाउ वाइ महि पच्चइ । सच्चें ओसहि खयहों ण वच्चइ ॥११॥

घत्ता

जो ण वि पालइ सच्चु मुहें दाखियउ महन्तउ ।
णिवडइ णरय-समुद्दे वसु जेम अलिउ चवन्तउ' ॥१२॥

[३]

चिन्तावण्णु णराहिउ जावेंहिँ । बलु णिय-णिलउ पराइउ तावेंहिँ ॥१॥
दुम्मणु एन्तु णिहालिउ मायएँ । पुणु विहसेवि वुत्तु पिय-वायएँ ॥२॥
'दिवेँ दिवेँ चडहि तुरङ्गम-णाएँहिँ । अज्जु काइँ अणुवाहणु पाएँहिँ ॥३॥
दिवेँ दिवेँ वन्दिण-विन्देँहिँ थुव्वहि । अज्जु काइँ थुव्वन्तु ण सुव्वहि ॥४॥
दिवेँ दिवेँ धुव्वहि चमर-सहासेँहिँ । अज्जु काइँ तउ को वि ण पासेँहिँ ॥५॥
दिवेँ दिवेँ लोयहिँ वुच्चहि राणउ । अज्जु काइँ दीसहि विद्दाणउ ॥६॥

[२] जयमंगल शब्द, जयतूर्यके घोष और परितोषके साथ जब पट्ट बाँध दिया गया तो दशरथके चरणयुगलका जयकार कर, उत्तराधिकारके मत्सरको अपने मनसे निकालकर, सम्पत्ति ऋद्धि और वृद्धिकी अवहेलना कर, पिताके सत्यको मानकर बलदेव (राम) जैसे बलका अपहरण कर चल दिये। लक्ष्मण भी अपने लक्षणोंको लेकर चल दिये। उनके प्रस्थान करनेपर दशरथ खिन्न होकर अपना मुँह नीचा करके रह गये, जैसे हृदय त्रिशूलसे भिद गया हो। पिताने कहा, "मैंने रामको वनवास क्यों भेज दिया, मुझे धिक्कार हो ? मैंने महान् कुल-क्रमका उल्लंघन किया ? अथवा यदि मैं सत्यका पालन नहीं करता, तो मैं अपने नाम और गोत्रको कलंकित करता। अच्छा हुआ राम गये, सत्यका नाश नहीं हुआ। सत्य सबकी तुलनामें महान् है ? सत्यसे सूर्य आकाशमें तपता है ? सत्यसे ही समुद्र अपनी मर्यादाका उल्लंघन नहीं करता ? सत्यसे हवा बहती है। धरती पकती है। सत्यसे औषधि क्षयको प्राप्त नहीं होती। अपने मुँह दाढ़ी रखता हुआ भी जो सत्यका पालन नहीं करता, वह राजा वसुकी तरह झूठ बोलता हुआ नरकरूपी समुद्रमें गिरता है ॥१-९॥

[३] जबतक नराधिप (दशरथ) चिन्तातुर थे, तबतक राम अपने भवनमें पहुँचे। माँने रामको उद्विग्न चित्त आते हुए देखा। फिर भी उसने हँसते हुए प्रिय वाणीमें उससे कहा, "तुम दिन-दिन घोड़ों और हाथियोंपर चढ़ते हो, आज पैरोंसे आना कैसे ? दिन-दिन बन्दीसमूहके द्वारा तुम्हारी स्तुति की जाती थी, आज स्तुति किये जाते हुए क्यों नहीं सुनाई देते ? दिन-दिन तुमपर हजार चमर ढोरे जाते थे लेकिन आज तुम्हारे पास कोई नहीं है ? दिन-दिन तुम लोगोंके द्वारा राणा कहे जाते थे, आज तुम खिन्न क्यों हो ?" यह सुनकर बलदेव

तं णिसुणेवि बलेण पजम्पिउ । 'भरहहोँ सयलु वि रज्जु समप्पिउ ॥७॥
जामि माएँ दिढ हियवएँ होज्जहि । जं दुम्मिय तं सव्वु खमेज्जहि' ॥८॥

घत्ता

जं आउच्छिय माय 'हा हा पुत्त' भणन्ती ।
अपराइय महएवि महियलेँ पडिय रुयन्ती ॥९॥

[४]

रामें जणणि जं जेँ आउच्छिय । णिरु णिच्चेयण तक्खणेँ मुच्छिय ॥१॥
लज्जियाहिँ 'हा माएँ' भणन्तिहिँ । हरियन्दणेंण सित्त रोवन्तिहिँ ॥२॥
चमरुक्खेवेंहिँ किय पडिवायण । दुक्खु-दुक्खु पुणु जाय स-चेयण ॥३॥
अंसु जलन्ति समुट्ठिय राणी । सप्पि व दण्डाहय विद्दाणी ॥४॥
णीलक्खण णीरामुम्माहिय । पुणु वि सदुक्खउ मेल्लिय धाहिय ॥५॥
'हा हा काइँ वुत्तु पइँ हलहर । दसरह-वंस-दीव जग-सुन्दर ॥६॥
पइँ विणु को पल्लङ्के सुवेसइ । पइँ विणु को अत्थाणेँ बईसइ ॥७॥
पइँ विणु को हय-गयहुँ चडेसइ । पइँ विणु को जिन्दुऍण रमेसइ ॥८॥
पइँ विणु रायलच्छि को माणइ । पइँ विणु को तम्बोलु समाणइ ॥९॥
पइँ विणु को पर-बलु भञ्जेसइ । पइँ विणु को मइँ साहारेसइ' ॥१०॥

घत्ता

तं कूवारु सुणेवि अन्तेउरु मुह-तुण्णउ ।
लक्खण-राम-विओएँ धाह मुएवि परुण्णउ ॥११॥

[५]

ता एत्थन्तरेँ असुर-विमद्दें । धीरिय णिय-जणेरि बलहद्दें ॥१॥
'धीरिय होहि माएँ किं रोवहि । लुहि लोयण अप्पाणु म सोयहि ॥२॥
जिह रवि-किरणेँहिँ ससि ण पहावइ । तिह मइँ होन्तेँ भरहु ण भावइ ॥३॥
तेँ कज्जेँ वण-वासेँ वसेवउ । तायहोँ तणउ सच्चु पालेवउ ॥४॥
दाहिण-देसेँ करेविणु थत्ति । तुम्हहँ पासेँ एउ सोमित्ति' ॥५॥

(राम) बोले—"भरतको सम्पूर्ण राज्य दे दिया गया है, हे माँ, अब मैं जा रहा हूँ, तुम अपना मन दृढ़ रखना; जो मैंने तुम्हें पीड़ा पहुँचायी, उसे तुम क्षमा करना।" जब रामने माँ से इस प्रकार पूछा तो 'हा-हा' कहती हुई अपराजिता महादेवी रोती हुई धरतीपर गिर पड़ी ॥१-९॥

[४] रामने जब माँसे इस प्रकार पूछा तो वह तत्काल अचेतन होकर मूच्छित हो गयी। हे माँ कहती हुई और रोती हुई दासियोंने हरिचन्दनसे उसे सींचा। चमर धारण करने-वाली स्त्रियोंने हवा की। बड़ी कठिनाईसे वह सचेतन हुई। रानी अपना शरीर मोड़ते हुए इस प्रकार उठी, जैसे दण्डाहत म्लान नागिन हो। लक्ष्मण और रामके बिना व्यथित वह दुःखी होकर पुकार मचाने लगी—"हे बलराम, हा-हा, तुमने क्या कहा? हे दशरथकुलके दीप विश्वसुन्दर राम, तुम्हारे बिना पलंगपर कौन बैठेगा? तुम्हारे बिना कौन दरबारमें बैठेगा? तुम्हारे बिना अश्व और गजपर कौन चढ़ेगा? तुम्हारे बिना कौन गेंदसे खेलेगा? तुम्हारे बिना राजलक्ष्मी कौन मानेगा? तुम्हारे बिना कौन पानको सम्मान देगा? तुम्हारे बिना कौन शत्रुसेनाका नाश करेगा? तुम्हारे बिना कौन मुझे सहारा देगा?" वह विलाप सुनकर सुखसे त्रस्त अन्तःपुर राम और लक्ष्मणके वियोगके कारण दहाड़ मारकर रो उठा ॥१-११॥

[५] तब इस बीचमें असुरोंका मर्दन करनेवाले रामने अपनी माँ को धीरज बँधाया। "हे आदरणीये, धीरज धारण करो, रोती क्यों हो? आँखें पोंछो। स्वयंको शोकमें मत डालो। जिस प्रकार रविकिरणोंसे चन्द्रमा प्रभावित नहीं होता उसी प्रकार मेरे होते हुए भरत अच्छा नहीं लगता। इसी कारण वनवासमें रहूँगा और पिताके सत्यका पालन करूँगा। दक्षिण देशमें स्थिति बनाकर, लक्ष्मण तुम्हारे पास आयेगा।" यह

एम भणेप्पिणु चलिउ तुरन्तउ । सयलु वि परियणु आउच्छन्तउ ॥६॥
धवल-कसण-णीलुप्पल-णामेंहिँ । घरु मुअन्तउ लक्खण-रामेंहिँ ॥७॥
सोह ण देइ ण चित्तहों भावइ । णाइ णिबन्दाइथउ णावइ ॥८॥
णं किय-उब्भ-हत्थु धाहावइ । वलहों कलत्त-हाणि णं सूवइ ॥९॥
भरह णरिन्दहों णं जाणावइ । 'हरि-बल जन्त णिवारहि णरवइ' ॥१०॥
पुणु पाआर-भुयउ पसरेप्पिणु । णाइँ णिवारइ आलिङ्गेप्पिणु ॥११॥

घत्ता

चाव-सिलीमुह-हत्थ बे वि समुण्णय-माणा ।
तहों मन्दिरहों रुयन्तहों णाइ विणिग्गय पाणा ॥१२॥

[६]

तो एत्थन्तरें णयणाणन्दें । संचल्लन्तें राहवचन्दें ॥१॥
सीयाएविहेँ वयणु णिहालिउ । णं चित्तेण चित्तु संचालिउ ॥२॥
णिय-मन्दिरहों विणिग्गय जाणइ । णं हिमवन्तहों गङ्ग महा-णइ ॥३॥
णं छन्दहों णिग्गय गायत्ती । णं सद्दहों णीसरिय विहत्ती ॥४॥
णाइँ कित्ति सप्पुरिस-विमुक्की । णाइँ रम्भ णिय-थाणहों चुक्की ॥५॥
सुललिय-चलण-जुयल-मल्हन्ती । णं गय-घड मउ-थड विहडन्ती ॥६॥
णेउर-हार-डोर-गुप्पन्ती । बहु-तम्बोल-पङ्कें खुप्पन्ती ॥७॥
हेट्ठा-मुह कम-कमलु णियच्छेंवि । अवराइय-सुमित्ति आउच्छेंवि ॥८॥

घत्ता

णिग्गय सीयाएवि सिय हरन्ति णिव-भवणहों ।
रामहों दुक्खुप्पत्ति असणि णाइँ दहवयणहों ॥९॥

[७]

राय-बारु बलु वोलिउ जामेंहिँ । लक्खणु मणें आरोसिउ तामेंहिँ ॥१॥
उट्ठिउ धगधगन्तु जस-लुद्धउ । णाइँ घिएण सित्तु धूमद्धउ ॥२॥
णाइँ मइन्दु महा-घण-गज्जिएँ । सिहु सोमित्ति कुविउ गमें सज्जिएँ ॥३॥

कहकर राम तुरन्त चले, समस्त परिजनोंसे पूछते हुए। धवल और कृष्ण कमलोंके समान लक्ष्मण और रामके द्वारा छोड़ा गया घर उसी प्रकार न तो शोभा देता है और न चित्तको अच्छा लगता है, जिस प्रकार सूर्य और चन्द्रमाके बिना आकाश। किया है ऊँचा हाथ जिसने ऐसा वह घर मानो चिल्लाता है और मानो रामको स्त्रीहानि बतलाता है। मानो भरत राजाको यह ज्ञात कराता है कि हे राजन्, जाते हुए राम-लक्ष्मणको रोको, फिर प्राकाररूपी भुजाओंको फैलाकर और आलिंगन कर जैसे उनको रोक रहा था। जिनके हाथमें धनुष और बाण हैं ऐसे वे दोनों समुन्नतमान इस प्रकार चले जैसे रोते हुए मन्दिरके प्राण ही निकल रहे हों ॥१–१२॥

[६] तब इस बीच नेत्रोंको आनन्ददायक रामने चलते हुए सीतादेवीका मुख देखा, मानो चित्तने चित्तको संचालित किया हो। जानकी अपने भवनसे इस प्रकार निकली, मानो हिमालय से गंगा नदी निकली हो, मानो छन्दसे गायत्री छोड़ी हो, मानो शब्दसे बिभक्ति निकली हो, मानो सत्पुरुषसे निकली हुई कीर्ति हो, मानो रम्भा अपने स्थानसे चूक गयी हो। अपने सुन्दर चरणयुगलसे लीलापूर्वक चलती हुई मानो गजघटा भटघटाको बिघटित करती हुई जा रही हो। नूपुर, हार और डोरसे व्याकुल होती हुई प्रचुर ताम्बूल कीचड़में निमग्न होती हुई, नीचा मुख कर, चरणकमलोंको देखकर, अपराजिता और सुमित्रासे पूछकर सीतादेवी भी अपने भवनकी शोभाका अपहरण करते हुए निकली जो मानो रामके लिए दुःखकी उत्पत्ति और रावणके लिए वज्र थी ॥१–९॥

[७] जैसे ही राज्यद्वार रामने पार किया, वैसे ही लक्ष्मण अपने मनमें क्रुद्ध हो उठा। यशका लोभी वह धकधक करते हुए उठा, जैसे घीसे सिक्त आग हो, जैसे महामेघोंके गरजने-

'कें धरणिन्द-फणा-मणि तोडिउ । कें सुर-कुलिस-दण्डु भुएँ मोडिउ ॥४॥
कें पलयाणलें अप्पउ ढोइउ । कें आरुट्ठउ सणि अवलोइउ ॥५॥
कें रयणायरु सोसेंवि सक्किउ । कें आइच्चहों तेउ कलङ्किउ ॥६॥
कें महि-मण्डलु बाहहिँ टालिउ । कें तइलोक्क-चक्कु संचालिउ ॥७॥
कें जिउ कालु कियन्तु महाहवें । को पहु अप्पणु जियन्तएँ राहवें ॥८॥

घत्ता

अहवइ किं बहुएण भरहु धरेप्पिणु अज्जु ।
रामहों णीसावण्णु देमि सहत्थें रज्जु ॥९॥

[८]

तो कुरङ्ग-रत्तन्त-लोयणो । कलि कियन्त-कालो व भीसणो ॥१॥
दुण्णिवारु दुव्वार-वारणो । सुउ भणन्तु णं एम लक्खणो ॥२॥
भणइ रामु तइलोक्क-सुन्दरो । 'पइँ विरुद्धें किं को वि दुद्धरो ॥३॥
जसु पडन्ति गिरि सिंह-णाएँणं । कवणु गहणु सो भरहु राएँणं ॥४॥
कवणु चोज्जु जं दिवि दिवायरे । अमिउ चन्दें जल-णिवहु सायरे ॥५॥
सोक्खु मोक्खें दय-धम्मु जिणवरे । विसु भुयङ्गें वर लील गयवरे ॥६॥
धणएँ रिद्धि सोहग्गु वम्महे । गइ मराले जय-लच्छि महुमहे ॥७॥
पउरुसं च पइँ कुविएँ लक्खणे । भणेंवि एम करें धरिउ तक्खणे ॥८॥

घत्ता

'रज्जें किज्जइ काइँ तायहों सच्च-विणासें ।
सोलह वरिसइँ जाम वे वि वसहुँ वण-वासें' ॥९॥

[९]

एह बोल्ल णिम्माइय जावेंहिँ । ढुक्कु भाणु अत्थवणहों तावेंहिँ ॥१॥
जाइ सञ्झ आरत्त पदीसिय । णं गय-घड सिन्दूर-विहूसिय ॥२॥
सूर-मंस-रुहिरालि-चच्चिय । णिसियरि व्व आणन्दु पणच्चिय ॥३॥

पर सिंह हो, जानेकी तैयारीपर लक्ष्मण उसी प्रकार कुपित हो उठा—"किसने धरणेन्द्रके फणामणिको तोड़ा, किसने इन्द्रके वज्रदण्डको अपने बाहुओंसे मोड़ा ? किसने अपनेको प्रलयानल-में डाल दिया ? किसने क्रुद्ध शनिको देखा, कौन रत्नाकरको शोषित कर सका ? किसने सूर्यके तेजको कलंकित किया है ? किसने महीमण्डलको अपने बाहुओंसे टाला है ? किसने त्रिलोक-चक्रको संचालित किया है ? महायुद्धमें काल और कृतान्तको किसने जीता है ? रामके जीवित रहनेपर दूसरा राजा कौन ? अथवा बहुत कहनेसे क्या ? आज भरतको पकड़कर, रामको अपने हाथसे असामान्य राज्य दूँगा ?" ॥१-९॥

[८] तब, जिसके फड़कते हुए लाल-लाल नेत्र थे, जो कलिकृतान्त और कालकी तरह भीषण था, ऐसे दुर्निवार लक्ष्मणको दुर्वार महागजकी तरह उक्त बात कहते हुए सुनकर त्रिलोकसुन्दर राम कहते हैं—"क्या तुम्हारे विरुद्ध होनेपर कोई दुर्धर हो सकता है जिसके सिंहनादसे पहाड़ गिर पड़ता है, उस राजाके द्वारा भरतका क्या ? ग्रहण ? यदि सूर्यमें दीप्ति, चन्द्रमामें अमृत, समुद्रमें जलसमूह, मोक्षमें सुख, जिनवरमें जीवदया, साँपमें विष और गजवरमें लीला, धनदमें ऋद्धि, काममें सौभाग्य, हंसमें गति, विष्णुमें लक्ष्मी और क्रुद्ध होनेपर तुममें पौरुष है, तो इसमें आश्चर्यकी क्या बात ?" यह कहकर रामने लक्ष्मणका हाथ तत्काल पकड़ लिया। पिताके सत्यका नाश होनेपर राज्यसे क्या करना ? जबतक सोलह वर्ष हैं, हम दोनों वनवासमें रहें ? ॥१-९॥

[९] रामने जबतक ये शब्द कहे तबतक सूर्य अस्ताचल पर पहुँच गया। सन्ध्या हो गयी, वह इस प्रकार आरक्त दिखाई दी, मानो सिन्दूरसे विभूषित गजघटा हो। सूर्यके मांस और रक्तावलिसे चर्चित वह निशाचरीके समान आनन्दसे नाच

गलिय सञ्झ पुणु रयणि पराइय । जगु गिलेइ णं सुत्त महाइय ॥४॥
कहि मि दिण्ण दीवय-सय बोहिय । फणि-मणि व्व पजलन्त सु-सोहिय ॥५॥
तिण्णु कालें णिह णिच्चल दुग्गमें । णीसरन्ति रयणिहिँ पच्चूसगमें ॥६॥
वासुपुज्ज-जिणहु महब्बल । [illegible] ॥७॥
रण-भर-णिव्वाहण णिव्वाहण । णिग्गय णीसाहण णीसाहण ॥८॥
विणयपओलि पओलें वि आइय । सिद्धकूडु जिण-भवणु पराइय ॥९॥
जं पायार-बार-विप्फुरियउ । णीसासिय-गन्ध-वित्थरियउ ॥१०॥
गङ्ग-तरङ्गहँ रङ्ग-समुज्जलु । हिमहरि-कुन्द-चन्द-जस-णिम्मलु ॥११॥

घत्ता

तहोँ भवणहोँ पासेहिँ विविह महा-दुम दिट्ठा ।
णं संसार-भएण जिणवर-सरणें पइट्ठा ॥१२॥

[१०]

तं णिएँवि भुवणु भुवणेसरहोँ । पुणु किउ पणिवाउ जिणेसरहोँ ॥१॥
जय गय-भय राय-रोस-विलय । जय मयण-महण तिहुवण-तिलय ॥२॥
जय खम-दम-तव-वय-णियम-करण । जय कलि-मल-कोह-कसाय-हरण ॥३॥
जय काम-कोह-अरि-दप्प-दलण । जय जाइ-जरा-मरणत्ति-हरण ॥४॥
जय जय तव-सूर तिलोय-हिय । जय मण-विचित्त-अरुणें सहिय ॥५॥
जय धम्म-महारह-वीढें ठिय । जय सिद्धि-वरङ्गण-रमण-पिय ॥६॥
जय संजम-गिरि-सिहरुग्गमिय । जय इन्द-णरिन्द-चन्द-णमिय ॥७॥

उठी। सन्ध्या ढल गयी फिर रात्रि आयी, मानो वह सोते हुए महान् विश्वको निगलती है। कहीं वह सैकड़ों दीपोंसे प्रबोधित (आलोकित) नागमणिकी तरह प्रज्वलित होती हुई शोभित है। उस अत्यन्त दुर्गमकालमें, रात्रिमें चन्द्रमाका उदय होनेपर वे चल पड़ते हैं। महाबली वासुदेव और बलदेव (दोनों) समानधर्मा, साधर्मीजनके प्रति वात्सल्यभाव रखनेवाले, युद्धभारका निर्वाह करनेवाले स्वयं वाहनरहित, साधन और प्रसाधनसे शून्य निकल पड़े। जिससे प्रतोलि निकल चुकी है, ऐसी खाईको पारकर वे उस सिद्धकूट जिनभवनमें पहुँचे कि जो प्राकारों और द्वारोंसे विस्फुरित था, जो पोथियों, शास्त्रग्रन्थोंसे भरा हुआ था। गंगाकी लहरोंके समान रंगमें सफेद था, हिमगिरि कुन्द, चन्द्र और यशके समान निर्मल था। उस सिद्धकूट भवनके चारों ओर अनेक प्रकारके महावृक्ष दिखाई दिये, मानो वे संसारके भयसे जिनवरकी शरणमें चले गये थे ॥१-१२॥

[१०] भुवनेश्वरके उस भवनको देखकर उन्होंने जिनवरको पुनः प्रणाम किया, "रागद्वेष (क्रोध) का नाश करनेवाले आपकी जय हो। हे कामका नाश करनेवाले त्रिभुवनश्रेष्ठ, आपकी जय हो। क्षमा, दम, तप, व्रत और नियमका पालन करनेवाले, आपकी जय हो। पापके मल, क्रोध और कषायका हरण करनेवाले, आपकी जय हो। काम, क्रोधरूपी शत्रुओंका दर्पदलन करनेवाले, आपकी जय हो। जन्म, जरा और मृत्युकी पीड़ाका हरण करनेवाले, आपकी जय हो। हे तपवीर और विश्वहित, आपकी जय हो; हे मनकी विचित्र करुणासे सहित, आपकी जय हो। हे धर्मरूपी महारथकी पीठपर स्थित, आपकी जय हो। सिद्धिरूपी वरांगनाके लिए अत्यन्त प्रिय, आपकी जय हो। संयमरूपी गिरिशिखरसे उगनेवाले, आपकी जय हो। इन्द्र,

जय सत्त-महाभय-हय-दमण । जय जिण-रवि णाणम्बर-गमण ॥८॥
जय दुक्किय-कम्म-कुसुम-दहण । जय चउ-गइ-रयणि-तिमिर-महण ॥९॥
जय इन्दिय-दुद्दम-दणु-दलण । जय जम्म-महोरग-धुय-चलण ॥१०॥
जय केवल-किरणुज्जोय-कर । जय-भविय-रविन्दाणन्दयर ॥११॥
जय जय भुवणेक्क-चक्क-भमिय । जय-मोक्ख-महीहरें अत्थमिय ॥१२॥

घत्ता

भावें तिहि मि जणेहिँ वन्दण करेंवि जिणेसहों ।
पयहिण देवि तिवार पुणु चलियइँ वण-वासहों ॥१३॥

[११]

रयणिहें मज्झें पयट्टइ राहवु । ताम णियच्छिउ परमु महाहवु ॥१॥
कुद्धइँ विद्धइँ पुलय-विसट्टइँ । मिहुणइँ वलइँ जेम अब्भिट्टइँ ॥२॥
'वलु वलु' एक्कमेक्क कोक्कन्तइँ । 'मरु मरु पहरु पहरु' जम्पन्तइँ ॥३॥
सर हुङ्कार-साय मेल्लन्तइँ । गरुअ-पहारहिँ उरु उक्कुन्तइँ ॥४॥
खणें ओवड्ढियइँ अहर डसन्तइँ । खणे किलिकिञ्चिउ हियउ दरिसन्तइँ ॥५॥
खणें वहु चालालुम्बि करन्तइँ । खणें णिप्फन्दइँ सेउ फुसन्तइँ ॥६॥
तं पेक्खेप्पिणु सुरय-महाहउ । सीयहें वयणु पजोयइ राहउ ॥७॥
पुणु वि हसन्तइँ केलि करन्तइँ । चलियइँ हट्ट-मग्गु जोयन्तइँ ॥८॥

घत्ता

जे वि रमन्ता आसि लक्खण-रामहुँ सङ्केंवि ।
णावइ सुरयासत्त आवण थिय मुहु ढङ्केंवि ॥९॥

नरेन्द्र और चन्द्रके द्वारा प्रणम्य, आपकी जय हो। सात महा-भयोंरूपी अश्वोंका दमन करनेवाले, आपकी जय हो। ज्ञानरूपी आकाशमें विहार करनेवाले हे जिन-सूर्य, आपकी जय हो; पापकर्मरूपी अंकुरोंको जलानेवाले, आपकी जय हो। चतुर्गति-रूपी रात्रिके तमका नाश करनेवाले, आपकी जय हो। इन्द्रिय-रूपी दुर्दम दानवका दलन करनेवाले, आपकी जय हो। यक्षों और नागोंके द्वारा स्तुत चरण, आपकी जय हो। केवलज्ञान-रूपी किरणको आलोकित करनेवाले, आपकी जय हो। भव्य-रूपी अरविन्दोंको आनन्द देनेवाले, आपकी जय हो। विश्वमें एकमात्र धर्मचक्रका प्रवर्तन करनेवाले, आपकी जय हो। मोक्ष-रूपी पर्वतपर अस्त होनेवाले, आपकी जय हो।" इस प्रकार भावपूर्वक जिनेशकी वन्दना कर और तीन प्रकार प्रदक्षिणा देकर फिर वे तीनों वनके लिए चल दिये ॥१-१३॥

[११] जैसे ही राघव रात्रिके मध्यमें चलते हैं, वैसे ही, उन्होंने परम महायुद्ध देखा। क्रुद्ध विद्ध और पुलक विशिष्ट मिथुन, सैन्यकी तरह भिड़ जाते हैं। एक दूसरेसे, मुड़ो मुड़ो, कहते हुए; मर मर, प्रहार कर, प्रहार कर यह बोलते हुए, सर (तीर और स्वर) हुंकार सार (हुंकारकी ध्वनि, सुरतिकी ध्वनि) करते हुए, भारी प्रहारोंसे उरको पीटते हुए, क्षणमें गिरते हुए, अधर काटते हुए, क्षणमें किलकारियाँ और परि-भ्रमण प्रदर्शित करते हुए, क्षणमें प्रचुर केश खींचते हुए, क्षणमें निष्पन्द होकर पसीना पोंछते हुए। ऐसा वह सुरति महायुद्ध देखकर राम सीताके मुखकी ओर देखते हैं। फिर हँसते हुए, और क्रीड़ा करते हुए बाजार-मार्ग देखते हुए वे चले। जो भी उस समय रमण कर रहे थे, सुरतिमें आसक्त वे (मिथुन) राम और लक्ष्मणकी आशंका कर अपना मुँह ढककर स्थित हो गये ॥१-९॥

[१२]

उज्झेवि दाहिण-दिसऍँ विणिग्गय । णाइँ णिरङ्कुस मत्त महा-गय ॥१॥
ण सहइ धुरि बल-लक्खण-मुक्की । मुक्क कु-णारि व पेसण चुक्की ॥२॥
पुणु थोवन्तरेँ विञ्झय-णामहोँ । तरुवर णमिय सुमित्त व रामहोँ ॥३॥
उट्ठिय [illegible] तमालु [illegible] । [illegible] मउरुएँ [illegible] ॥४॥
अद्ध-कोसु संपाइय जावेँहिँ । विमल विहाणु चउद्दिसु तावेँहिँ ॥५॥
णिसि-णिसियरिऍ आसि जं गिलियउ । णाइँ पडीवउ जगु उग्गिलियउ ॥६॥
रेहइ सूर-बिम्बु उग्गन्तउ । णावइ सुकइ-कव्वु पइ-सन्तउ ॥७॥
पच्छऍ सोहणु ताम पधाइउ । लहु हलहेइहेँ पासु पराइउ ॥८॥

घत्ता

सीय-सलक्खणु रामु पणमिउ णरवर-विन्देँहिँ ।
णं वन्दिउ अहिसेऍ जिणु बत्तीसहिँ इन्देँहिँ ॥९॥

[१३]

हेसन्त-तुरङ्गम-वाहणेण । परियरिउ रामु णिय-साहणेण ॥१॥
णं दिस-गय लीलऍ पयइँ देन्तु । तं देसु पराइउ पारियत्तु ॥२॥
अण्णु वि थोवन्तरु जाइ जाम । गम्भीर महाणइ दिट्ठ ताम ॥३॥
परिहच्छ-मच्छ-पुच्छुच्छलन्ति । फेणावलि-तोय-तुसार देन्ति ॥४॥
कारण्ड-डिम्भ-डुम्भिय-सरोह । वर-कमल-करम्बिय-जलपओह ॥५॥
हंसावलि-पक्ख-समुल्लसन्ति । कल्लोल-बोल-आवत्त दिन्ति ॥६॥
सोहइ बहु-वणगय-जूह-सहिय । डिण्डीर-पिण्ड दरिसन्ति अहिय ॥७॥
उच्छलइ थलइ पडिखलइ धाइँ । मच्छन्ति महागय-लीलगाइँ ॥८॥

घत्ता

ओहर-मयर-रउद्द सा सरि णयण-कडक्खिय ।
दुत्तर-दुप्पइसार णं दुग्गइ दुप्पेक्खिय ॥९॥

[१२] वे अयोध्याकी दायीं दिशाकी ओर इस प्रकार निकल गये, मानो निरंकुश मतवाले महागज हों। राम और लक्ष्मणके द्वारा मुक्त वह नगरी शोभा नहीं देती, वैसे ही, जैसे आज्ञासे चूकी हुई कुनारी। फिर थोड़ी दूरपर प्रसिद्धनाम राम-के लिए अच्छे अनुचरोंकी तरह तरुवरोंने नमस्कार किया। कोलाहल करते हुए पक्षी उठे मानो बन्दीजन मंगलपाठ पढ़ रहे हों। जबतक वे आधा कोस तक पहुँचे कि तबतक चारों ओर निर्मल प्रभात हो गया। निशारूपी निशाचरीके द्वारा जो निगल लिया गया था मानो वह जन पुनः उसके द्वारा उगल दिया गया। उगता हुआ सूर्यबिम्ब इस प्रकार शोभा देता है, कि जैसे प्रभासे युक्त सुकविका काव्य हो। पीछे सैन्य उनके पीछे दौड़ा और शीघ्र ही रामके निकट पहुँच गया। नरश्रेष्ठोंने सीता और लक्ष्मण सहित रामको इस प्रकार प्रणाम किया मानो बत्तीसों इन्द्रोंके द्वारा जिनवरको प्रणाम किया गया हो ॥१–९॥

[१३] जिसका अश्ववाहन हिनहिना रहा है, ऐसे अपने सैन्यसे घिरे हुए राम मानो दिग्गजकी तरह लीलापूर्वक पैर रखते हुए उस पारियात्र देश पहुँचे। और भी जैसे वह थोड़ी दूर जाते हैं कि वैसे ही उन्हें गम्भीर महानदी दिखाई दी, वेगशील मत्स्योंकी पूँछोंसे उछलती हुई, फेनावलिके जलकणोंको देती हुई, हंस-शिशुओंके द्वारा काटे गये कमलोंसे युक्त, वर-कमलोंसे व्याप्त जलसमूहवाली हंसावलीके पंखोंसे समुल्लसित, लहरसमूहके आवर्तोंको देती हुई, वनगजोंके समूहसे सहित तथा प्रचुर फेन-समूहको दिखाती हुई वह शोभित होती है, उछलती है, मुड़ती है, प्रतिस्खलित होती है, दौड़ती है और महागजकी लीलासे प्रसन्नतापूर्वक चलती है। उलटे हुए मगरोंसे भयंकर नेत्रोंसे कटाक्ष करती हुई ऐसी दिखाई दी मानो अत्यन्त कठिन प्रवेशवाली दुर्दर्शनीय दुर्गति हो ॥१–९॥

[१४]

सरि गम्भीर णियच्छिय जावेंहिँ । सयलु वि सेण्णु णियत्तिउ तावेंहिँ ॥१॥
'तुम्हेंहिँ सव्वेंहिँ आणवडिच्छा । भरहहों भिच्च होह हियइच्छा ॥२॥
उज्झ मुएप्पिणु दाहिण-देसहों । अम्हेंहिँ जाएवउ वण-वासहों' ॥३॥
एम भणेप्पिणु समर-समत्था । सायर-वज्जावत्त-विहत्था ॥४॥
पइसरन्ति तहिँ सलिलें भयङ्करें । रामहों चडिय सीय वामएँ करें ॥५॥
सिय अरविन्दहों उप्परि णावइ । णावइ णियय-कित्ति दरिसावइ ॥६॥
ण उओल्ल करावइ गयणहों । णाइँ पदरिसइ वण दहवयणहों ॥७॥
लद्धु जलवाहिणि-पुलिणु पवण्णउँ । णं भवियहुँ णरयहों उत्तिण्णइँ ॥८॥

घत्ता

वलिय पडीवा जोह जे पहु-पच्छलें लग्गा ।
कु-मुणि कु-बुद्धि कु-सील णं पव्वज्जहें भग्गा ॥९॥

[१५]

बलु बोल्लावेंवि राय णियत्ता । णावइ सिद्धि कु-सिद्ध ण पत्ता ॥१॥
वलिय के वि णीसासु मुअन्ता । खणें खणें 'हा हा राम' भणन्ता ॥२॥
के वि महन्तें दुक्खें लइया । लोउ करेवि के वि पव्वइया ॥३॥
के वि तिमुण्ड-धारि बम्भारिय । के वि तिकाल-जोइ वय-धारिय ॥४॥
के वि पवण-धुय-धवल-विसालएँ । गम्पिणु तहिँ हरिसेण-जिणालएँ ॥५॥
थिय पव्वज्ज लएप्पिणु णरवर । सढ-कढोर-वर-मेढु-महीहर ॥६॥
विजय-विअड्ढ-विओय-विमद्दण । धीर-सुधीर-सव्वे-पियवद्धण ॥७॥
पुङ्गम-पुण्डरीय-पुरिसुत्तम । विउल-विसाल-रणुम्मिय उत्तम ॥८॥

घत्ता

इय एक्केक्क-पहाण जिणवर-चलण णमंसेंवि ।
संजम-णियम-गुणेहिँ अप्पउ थिय सइँ भूसेंवि ॥९॥

[१४] जैसे ही उन्होंने गम्भीर नदीको देखा, वैसे ही समूची सेनाको उन्होंने लौटा दिया "कि आप लोग इस समय आज्ञाकी प्रतीक्षा करनेवाले भरतके हृदयसे चाहनेवाले अनुचर होना। अयोध्याको छोड़कर हम लोग दक्षिण देश और वनवास-के लिए जायेंगे।" यह कहकर सागरावर्त और वज्रावर्त धनुष हाथमें लिये हुए समरमें समर्थ वे लोग उसके भयंकर जलमें प्रवेश करते हैं, सीता रामके बायें हाथपर चढ़ जाती हैं मानो कमलोंपर शोभा बैठ गयी हो, मानो वह अपनी कीर्ति दिखा रही हो, मानो आकाशको आलोकित करवाती है, मानो रावण-के लिए अपनी कन्या दिखाई जा रही हो। शीघ्र ही वे नदीके तटपर (उस पार) पहुँच गये, मानो भव्य ही नरकसे उत्तीर्ण हो गये हों। जो सैनिक पीछे लगे थे वे वापस लौट गये, मानो कुबुद्धि, कुमुनि और कुशील व्यक्ति संन्याससे भाग खड़े हुए हों ॥१–९॥

[१५] रामका व्यतिक्रम कर राजा इस प्रकार लौट आये, जैसे कुसिद्धोंको सिद्धि प्राप्त न हुई हो। कोई निःश्वास छोड़ते हुए लौटे, पल-पलमें, "हा राम, हा राम", यह कहते हुए। कोई महान् दुःखसे भर उठे। कोई केशलोंच करके प्रव्रजित हो गये। कोई त्रिपुण्ड धारण कर संन्यासी बन गये। कोई व्रतधारण करनेवाले त्रिकालयोगी बन गये। कोई नरवर हवासे प्रकम्पित धवल और विशाल हरिषेण-जिनालयमें जाकर संन्यास लेकर स्थित हो गये। शठ, कठोर, वरमेढ, महीधर, विजय, विदग्ध, विनोद, विमर्दन, धीर, सुधीर, सत्य, प्रिय, वर्धन, पुंगम और पुरुषोत्तम, जो विपुल विशाल रणमें उन्मद और उत्तम थे। यहाँ एक-से-एक प्रधान जिनवरके चरणोंको नमस्कार कर संयम, नियम और गुणोंसे अपनेको विभूषित कर स्थित हो गये ॥१–९॥

[२४. चउवीसमो संधि]

गएँ वण-वासहों रामें उज्झ ण चित्तहों भावइ ।
थिय णीसास मुअन्ति महि उण्हालएँ णावइ ॥

[१]

सयलु वि जणु उम्माहिज्जन्तउ । खणु वि ण थक्कइ णामु लयन्तउ ॥१॥
उव्वेल्लिज्जइ गिज्जइ लक्खणु । मुरव-वज्जेँ वाइज्जइ लक्खणु ॥२॥
सुह-सिद्धन्त-पुराणेँहिँ लक्खणु । ओङ्कारेण पढिज्जइ लक्खणु ॥३॥
अण्णु वि जं जं किं वि स-लक्खणु । लक्खण-णामें वुच्चइ लक्खणु ॥४॥
का वि णारि सारङ्गि व दुण्णी । वड्ढी थाइ मुएवि परुण्णी ॥५॥
का वि णारि जं केइ पसाहणु । तं उल्हावइ जाणइ लक्खणु ॥६॥
का वि णारि जं परिहइ कङ्कणु । भणइ सु गाढउ जाणइ लक्खणु ॥७॥
का वि णारि जं जोयइ दप्पणु । अप्पणु ण पेक्खइ पेक्खँवि लक्खणु ॥८॥
तो एत्थन्तरें पाणिय-हारिउ । पुरें पोक्कन्ति परोप्परु णारिउ ॥९॥
'सो पल्लङ्कु तं जेँ उवहाणउ । सेज्ज वि सज्जेँ तं जेँ पच्छाणउ ॥१०॥

घत्ता

तं घरु रयणइँ ताइँ तं चित्तयम्मु स-लक्खणु ।
णवर ण दीसइ माएँ रामु ससीय-सलक्खणु ॥११॥

[२]

ताम पत्तु पडहु हडिपहय पट्टु-पङ्गणे । णाइँ सुर-दुन्दुही दिण्ण गयणङ्गणे ॥१॥
रसिय सय सङ्ख जायं महा-गोन्दलं । टिविलि-टण्टन्त-घुम्मन्त-वरमन्दलं ॥२॥
ताल-कंसाल-कोलाहलं काहलं । गीय संगीय गिज्जन्त-वर-मङ्गलं ॥३॥

चौबीसवीं सन्धि

रामके वनवासके लिए चले जानेपर, अयोध्या चित्तको अच्छी नहीं लगती। वरन्, उष्ण कालकी भाँति निःश्वास लेती हुई स्थित थी।

[१] समस्त जन उत्पीड़ित होता हुआ नाम लेते हुए एक क्षण भी नहीं थकता। लक्खण (लक्ष्मण) को उछाला जाता, गाया जाता, मृदंग वाद्यमें बजाया जाता, श्रुति सिद्धान्त और पुराणोंके द्वारा, तथा ओंकारके द्वारा लक्ष्मणको पढ़ा जाता। और भी जो-जो सलक्खण (सलक्षण) है उसे लक्ष्मणके नामसे लक्षण कहा जाता है। कोई नारी हरिणीकी तरह दुःखी हो गयी, और भारी धाड़ छोड़कर रो पड़ी। कोई नारी जो प्रसाधन पहनती है वह उसे शान्ति देता है, वह समझती है कि वह लक्ष्मण है, कोई नारी जो कंगन पहनती है उसे प्रगाढ़ता से धारण करती है, वह समझती है कि वह लक्ष्मण है। कोई नारी जो दर्पण देखती है उसमें वह, लक्ष्मणको छोड़कर कुछ और नहीं देखती। तब इसी बीच पनिहारिनें भी नगरमें आपसमें यही कहती हैं कि वही पलंग, वही तकिया, सेज भी वही है, वही प्रच्छादन (चादर) है, वही घर, वे ही रत्न, और लक्षण सहित वही चित्र कर्म। हे माँ, केवल लक्ष्मण सहित राम दिखाई नहीं देते ॥१-९॥

[२] इतनेमें राजाके आँगनमें पटु, पट और डडि (?) वाद्य इस प्रकार आहत हो उठे जैसे आकाशके प्रांगणमें देव-दुन्दुभियाँ बजा दी गयी हों। सैकड़ों शंख बजा दिये गये, महा कोलाहल होने लगा। टिविल टनटनाने लगे और श्रेष्ठ मृदंग घूमने लगे। ताल और कंसालका कोलाहल होने लगा, काहल बज उठा, जिनमें उत्तम मंगल गाये जा रहे हैं, ऐसे गीत गाये

डमरु-तिरिडिक्किया-झल्लरी-रउरवं। भम्भ-भम्भीस गम्भीर-भेरी-रवं ॥४॥
घण्ट-जयघण्ट-संघट्ट-टङ्कारवं। घोल-उक्कोल-हलबोल-गुरुकारवं ॥५॥
तेण सद्देण रोमञ्च-कञ्चुब्भुआ। गोन्दलुद्दाम-मट्ठ-बहुल-अच्चब्भुआ ॥६॥
सुहड-संघाय सव्वा व थिय पङ्गणे। मेरु-सिहरेसु णं अमर जिण-जम्मणे ॥७॥
पणइ-फरफाव-णड-छत्त-कइ वन्दणं। 'णन्द जय भद्द जय जयहि' वर सद्दणं ॥८॥

घत्ता

लक्खण-रामहुँ बप्पु णिय-भिच्चेंहिँ परियरियउ।
जिण-अहिसेयहोँ कज्जेँ णं सुरवइ णीसरियउ ॥९॥

[३]

जं णीसरिउ राउ आणन्दें। वुत्तु णवेप्पिणु भरह-णरिन्दें ॥१॥
'हउँ मि देव पइँ सहुँ पव्वज्जमि। दुग्गइ-गामिउ रज्जु ण भुञ्जमि ॥२॥
रज्जु असारु वारु संसारहोँ। रज्जु खणेण णेइ तम्वारहोँ ॥३॥
रज्जु भयङ्करु इह-पर-लोयहोँ। रज्जेँ गम्मइ णिच्च-णिगोयहोँ ॥४॥
रज्जेँ होउ होउ महु सरियउ। सुन्दरु तो किं पइँ परिहरियउ ॥५॥
रज्जु अकज्जु कहिउ मुणि-छेयहिँ। दुट्ठ-कलत्तु व भुत्तु अणेयहिँ ॥६॥
दोसवन्तु मयलञ्छण-बिम्बु व। बहु-दुक्खाउरु दुग्ग-कुडुम्बु व ॥७॥
तो वि जीउ पुणु रज्जहोँ कङ्खइ। अणुदिणु आउ गलन्तु ण लक्खइ ॥८॥

घत्ता

जिह महुबिन्दुहेँ कज्जेँ करहु ण पेक्खइ कक्करु।
तिह जिउ विसयासत्तु रज्जेँ गउ सय-सक्करु' ॥९॥

[४]

भरहु चवन्तु णिवारिउ राएं। 'अज्ज वि तुज्झु काइँ तव-वाएं ॥१॥

जाने लगे। डमरू, तिरिडिक्किया और झल्लरीसे भयंकर, भम्भ-भम्भीस और गम्भीर भेरीका शब्द होने लगा। घण्टा और जयघण्टोंके संघर्षणसे टंकारध्वनि होने लगी। घूमते हुए शत्रुओंके कोलाहलसे मुखर शब्द होने लगे। उस शब्दसे, रोमांचरूपी कंचुकसे उद्धत, कोलाहलसे उत्कट, और अत्यन्त आश्चर्यचकित सभी सुभटसमूह प्रांगणमें स्थित हो गये, मानो जिनवरके जन्मके समय मेरु शिखरोंपर देवता इकट्ठे हो गये। भगत चारण, नट, छत्रकवि और बन्दीजनोंका—"बढ़ो, जय हो, हे भद्र जय हो, जय हो" शब्द होने लगा। लक्ष्मण और रामके पिता अपने अनुचरोंके साथ घिरे हुए इस प्रकार निकले मानो जिनका अभिषेक करनेके लिए सुरपति (इन्द्र) निकला हो ॥१-९॥

[३] जब राजा दशरथ आनन्दसे निकला तो भरत राजाने प्रणाम कर कहा, "हे देव, मैं भी आपके साथ संन्यास ग्रहण करूँगा। मैं दुर्गतिगामी राज्यका भोग नहीं करूँगा। राज्य असार और संसारका द्वार है। राज्य एक क्षणमें विनाशको प्राप्त होता है। राज्य इस लोक और परलोकमें भयंकर होता है, राज्यसे मनुष्य नित्य निगोदमें जाता है। राज्य रहे। यदि राज्य मधु सदृश सुन्दर होता है, तो आपने उसका त्याग क्यों किया? मुनिसमूहने राज्यको अकाज कहा है जिसका दुष्ट स्त्रीकी तरह अनेक लोगोंने उपभोग किया है। राज्य चन्द्रबिम्बकी तरह दोषवाला है। दरिद्रकुटुम्बकी तरह अनेक दुःखोंसे व्याकुल है। तब भी जीव राज्यकी आकांक्षा करता है, प्रतिदिन गलती हुई आयुको नहीं देखता। जिस प्रकार मधुबिन्दुके लिए करभ कठोर नहीं देखता, उसी प्रकार विषयासक्त जीव राज्यके द्वारा सैकड़ों टुकड़ोंको प्राप्त होता है" ॥१-९॥

[४] भरतको इस प्रकार कहते हुए राजा दशरथने मना

अज्ज वि रज्जु करहि सुहु भुञ्जहि । अज्ज वि विसय-सुक्खु अणुहुञ्जहि ॥२॥
अज्ज वि तुहुँ तम्बोलु समाणहि । अज्ज वि वर-उज्जाणइँ माणहि ॥३॥
अज्जु वि अङ्गु स-इच्छएँ मण्डहि । अज्ज वि वर-विलयउ अवरुण्डहि ॥४॥
अज्ज वि जोग्गउ सव्वाहरणहोँ । अज्ज वि कवणु कालु तव-चरणहोँ ॥५॥
जिण-पव्वज्ज होइ अइ-दुसहिय । कें बावीस परीसह विसहिय ॥६॥
कें जिय चउ-कसाय-रिउ दुज्जय । कें आयामिय पञ्च महव्वय ॥७॥
कें किउ पञ्चहुँ विसयहुँ णिग्गहु । कें परिसेसिउ सयलु परिग्गहु ॥८॥
को दुम-मूलें वसिउ वरिसालएँ । को एक्कङ्गें थिउ सीयालएँ ॥९॥
कें उण्हालएँ किउ अत्तावणु । एउ तव-चरणु होइ भीसावणु ॥१०॥

घत्ता

भरह म चवहिउ-बोल्लि तुहुँ सो अज्ज वि बालु ।
भुञ्जहि विसय-सुहाइँ को पव्वज्जहेँ कालु ॥११॥

[५]

तं णिसुणेवि भरहु आरुट्ठउ । मत्त-गइन्दु व चित्तें दुट्ठउ ॥१॥
विरुयउ ताव वयणु पइँ वुत्तउ । किं बालहोँ तव-चरणु ण जुत्तउ ॥२॥
किं बालत्तणु सुहेँहिँ ण मुच्चइ । किं बालहोँ दय-धम्मु ण रुच्चइ ॥३॥
किं बालहोँ पव्वज्ज म होओ । किं बालहोँ दूसिउ पर-लोओ ॥४॥
किं बालहोँ सम्मत्तु म होओ । किं बालहोँ णउ इट्ठ-विओओ ॥५॥
किं बालहोँ जर-मरणु ण ढुक्कइ । किं बालहोँ जमु दिवसु वि चुक्कइ ॥६॥
तं णिसुणेवि भरहु णिब्भच्छिउ । 'सो किं पहिलउ पट्टु पडिच्छिउ ॥७॥
एवहिँ सयलु वि रज्जु करेवउ । पच्छलें पुणु तव-चरणु चरेवउ' ॥८॥

किया और कहा, "आज भी तुम्हें तपकी बातसे क्या? तुम आज भी राज्य करो और सुख भोगो। आज भी तुम ताम्बूल-का सम्मान करो। आज भी वर उद्यानोंको मानो। आज भी अपनी इच्छानुसार शरीरका अलंकरण करो, आज भी तुम वनिताओंका आलिंगन करो, आज भी तुम समस्त आभरणोंके योग्य हो। आज भी तुम्हारा तपका क्या समय है? जिन-प्रव्रज्या अत्यन्त असहनीय होती है। बाईस परीषहोंको सहन किसने किया? अजेय चार कषायरूपी शत्रुओंको किसने जीता? किसने पाँच महाव्रतोंका पालन किया? पाँच विषयोंका निग्रह किसने किया? किसने समस्त परिग्रहोंका त्याग किया? वर्षा-कालके समय वृक्षके नीचे कौन रहा? शीतकालमें अकेला कौन रहा? उष्णकालमें आतापन तप किसने तपा? यह तपश्चरण अत्यन्त भीषण होता है। हे भरत, तुम बढ़-चढ़कर बात मत करो; तुम अभी बालक हो। विषयसुखोंका भोग करो। यह प्रव्रज्याका कौन-सा समय है? विषयसुखोंका भोग करो। यह संन्यासका कौन-सा समय है?" ॥१-११॥

[५] यह सुनकर भरत क्रुद्ध हो उठा। मत्त हाथीकी तरह अपने मनमें क्षुब्ध हो गया। वह बोला, "हे पिता, आपने अनुचित बात कही। क्या बालकके लिए तपश्चरण उपयुक्त नहीं है, क्या बचपन सुखोंसे मुक्त नहीं होता? क्या बालकको दयाधर्म अच्छा नहीं लगता? क्या बालकको प्रव्रज्या नहीं होती? बालकका परलोक दूषित क्यों किया? क्या बालकको सम्यक्त्व नहीं होता, क्या बालकको इष्टवियोग नहीं होता? क्या बालकको जन्म और मृत्यु नहीं होते? क्या बालकको यम एक भी दिन छोड़ता है?" यह सुनकर उसने भरतको डाँटा कि "पहले तुमने राज्यपट्टकी इच्छा क्यों की? इस समय तुम समस्त राज्य करो? बादमें तुम तपश्चरण करना।" यह

घत्ता

एम भणेप्पिणु राउ सच्चु समप्पेँवि भज्जहेँ ।
भरहहोँ बन्धेंवि पट्टु दसरहु गउ पव्वज्जहेँ ॥९॥

[६]

सुरवर-वन्दिएँ धवल-विसालएँ । गम्पिणु सिद्धकूडेँ चइतालएँ ॥१॥
दसरहु थिउ पव्वज लएप्पिणु । पञ्च मुट्ठि सिरेँ लोउ करेप्पिणु ॥२॥
तेण समाणु सणेहेँ लइयउ । चालीसोत्तरु सउ पव्वइयउ ॥३॥
कण्ठा-कडय-मउड अवहारेँवि । दुद्धर पञ्च महव्वय धारेँवि ॥४॥
थिय णीसङ्ग णाग णं विसहर । अहवइ समय-वाल णं विसहर ॥५॥
णं केसरि गय-मासाहारिय । णं परद्वार-गमण परदारिय ॥६॥
केण वि कहिउ ताम भरहेसहोँ । गय सोमित्ति-राम वण-वासहोँ ॥७॥
तं णिसुणेवि वयणु भुय-वाहउ । पडिउ महीहरो व्व वज्जाहउ ॥८॥

घत्ता

जं मुच्छाविउ राउ सयलु वि जणु मुह-कायरु ।
पलयाणल-संतत्तु रसेँवि लग्गु णं सायरु ॥९॥

[७]

चन्दणेण पच्छालिज्जन्तउ । चमरुक्खेवेँहिँ विज्जिज्जन्तउ ॥१॥
दुक्खु दुक्खु आसासिउ राणउ । भरह-मियङ्कु व थिउ विद्दाणउ ॥२॥
अविरल-अंसु-जलोल्लिय-णयणउ । एम पजम्पिउ गग्गर-वयणउ ॥३॥
णिवडिय अज्जु असणि आयासहोँ । अज्जु अमङ्गलु दसरह-वंसहो ॥४॥
अज्जु जाउ हउँ सूडिय-पक्खउ । दुह-भायणु पर-मुहहँ उवेक्खउ ॥५॥
अज्जु णयरु सिय-सम्पय-मेल्लिउ । अज्जु रज्जु पर-चक्केँ पेल्लिउ ॥६॥
एम पलाउ करेंवि सहुँ मायएँ । राहव-जणणिहेँ गउ ओलग्गएँ ॥७॥
केस-विसण्ठुल दिट्ठ रुअन्ती । अंसु-पवाह धाह मेल्लन्ती ॥८॥

कहकर राजा दशरथ अपनी पत्नीके लिए सत्य देकर और भरतको पट्ट बाँधकर प्रव्रज्याके लिए कूच कर गये ॥१–९॥

[६] सुरवरों द्वारा वन्दनीय धवलविशाल सिद्धकूट चैत्यालयमें जाकर दशरथ संन्यास लेकर स्थित हो गये, पाँच मुट्ठी सिरसे केश लोंचकर। उनके स्नेहके कारण उनके साथ एक सौ चालीस लोग प्रव्रजित हुए। कण्ठा, कटक और मुकुटको उतारकर, कठोर पाँच महाव्रतोंको धारण कर वे अनासंग स्थित हो गये, मानो विषधर (धर्म / विष / धारण करनेवाले) नाग हों, मानो गयमासाहारिय (गजमांसका आहार करनेवाले / एक माहमें आहार करनेवाले) हों, मानो परदारिक हैं जो परदारगमण (परस्त्री / मुक्तिरूपी वधूका गमन करनेवाले) हैं। तब किसीने भरतेश्वरसे कहा कि राम और लक्ष्मण वनवासके लिए गये हुए हैं। यह वचन सुनकर जिसकी आँखें कम्पित हैं, ऐसा भरत वज्राहत पर्वतकी तरह गिर पड़ा। जब राजा मूर्च्छित हो गया तो मुखसे कातर सभी लोग प्रलयकी ज्वालासे सन्तप्त होकर चिल्लाने लगे मानो समुद्र गरज रहा हो ॥१–९॥

[७] चन्दनसे लेप किये जाने और चमरोंके उत्क्षेपणसे हवा किये जानेपर राजा भरत बड़ी कठिनाईसे आश्वस्त हुए। बूढ़े चन्द्रकी तरह वह एकदम म्लान हो गये। अविरल आँसुओंके जलसे आर्द्रनयन और गद्गद वचन वह इस प्रकार बोले—"आज आकाशके ऊपर वज्र निकल पड़ा। आज दशरथ-वंशका अमंगल है। जिसका पक्ष नष्ट हो गया है ऐसा मैं आज दुःखभाजन और दूसरोंके सुखकी अपेक्षा करनेवाला हो गया हूँ। आज नगर श्री और सम्पत्तिसे रहित है, आज राज्य शत्रु-चक्रके द्वारा पीड़ित है।" सभा के सामने, इस प्रकार प्रलापकर, भरत रामकी माताकी सेवामें गया। जिसके केश अस्त-व्यस्त हैं, ऐसी उसे रोते हुए और अश्रुप्रवाह तथा दहाड़ छोड़ते

घत्ता

धीरिय भरह-णरिन्दे होउ माएँ महु रज्जें ।
आणमि लक्खण-राम रोवहि काइँ अकज्जें ॥९॥

[८]

एम भणेवि भरहु संचल्लिउ । तुरिउ गवेसहुँ हरि-बलु चल्लिउ ॥१॥
दिण्णु सङ्खु जय-पडहु पवज्जिउ । णं चन्दुग्गमें उवहि पगज्जिउ ॥२॥
पहु-मग्गेण णराहिउ लग्गउ । जीवहाँ कम्मु जेम अणुलग्गउ ॥३॥
छट्ठऍ दिवसें पराइउ तेत्तहें । सीय स-लक्खणु राहउ जेत्तहें ॥४॥
खुडु खुडु सलिलु पिएवि णिविट्ठइँ । सरवर-तीरें लयाहरें दिट्ठइँ ॥५॥
चलणेंहिँ पडिउ भरहु तग्गय-मणु । णाइँ जिणिन्दहाँ दससय-लोयणु ॥६॥
'थक्क देव मं जाहि पवासहाँ । होहि तरण्डउ दसरह-वंसहाँ ॥७॥
हउँ सत्तुहणु भिच्च तउ बे वि । लक्खणु मन्ति सीय महएवि ॥८॥

घत्ता

जिह णक्खत्तेंहिँ चन्दु इन्दु जेम सुर-लोएं ।
तिह तुहुँ भुञ्जहि रज्जु परिमिउ बन्धव-लोएं ॥९॥

[९]

तं वयणु सुणेंवि दसरह-सुएण । अवगूढु भरहु उद्धसिय-भुएण ॥१॥
सच्चउ माया-पिय-परम-दासु । पइँ मेल्लेंवि अण्णहाँ कवणु कासु' ॥२॥
अवरोप्परु ए आलाव जाम । तहिँ जुवइ-सयहिँ परियरिय ताम ॥३॥
लक्खिज्जइ भरहहाँ तणिय माय । णं भय-वड मउ मउअन्ति आय ॥४॥
णं लिलय-विहूसिय कप्पराइ । स-पओहर अम्बर-सोह णाइँ ॥५॥
णं भरहहाँ सम्पय-रिद्धि-विद्धि । णं रामहाँ गमणहाँ तणिय सिद्धि ॥६॥
णं भरहहाँ सुन्दर-सोक्ख-खाणि । णं रामहाँ दुट्ठ-कलत्त-हाणि ॥७॥

हुए देखा। भरत राजाने धीरज बँधाया कि हे माँ, मेरा राज्य रहे ? मैं राम और लक्ष्मणको लाता हूँ। तुम व्यर्थ क्यों रोती हो ॥१-९॥

[८] यह कहकर भरत चल दिया। खोज करनेके लिए तुरन्त हाथ ऊँचा कर लिया। शंख बजा दिया गया और विजयका डंका भी मानो चन्द्रमाके उदयपर समुद्र गरज उठा हो। स्वामी रामके मार्गसे राजा भरत उसी प्रकार चला, जैसे जीवके पीछे कर्म लगा हो। छठे दिवस वह वहाँ पहुँचा जहाँ सीता और लक्ष्मण सहित राम थे। शीघ्र ही पानी पीकर निवृत्त हुए सरोवरके किनारे लतागृहमें वे उसे दिख गये। उनमें लीन होकर भरत उनके चरणोंपर गिर पड़ा, मानो इन्द्र जिनेन्द्रके चरणोंपर गिर पड़ा हो। (वह बोला) "हे देव ! ठहरिए, प्रवासपर मत जाइए। दशरथवंशकी नौका बनिए। मैं और शत्रुघ्न, दोनों तुम्हारे अनुचर हैं। लक्ष्मण मन्त्री है और सीता महादेवी। जिस प्रकार नक्षत्रोंसे चन्द्रमा, जिस प्रकार सुरलोक-से इन्द्र शोभित होता है उसी प्रकार तुम बन्धुलोकके साथ राज्यका भोग करो" ॥१-९॥

[९] यह वचन सुनकर दशरथपुत्र रामने अपनी हर्षित भुजाओंसे भरतका आलिंगन कर लिया। तुम माता-पिताके सच्चे दास हो। तुम्हें छोड़कर और किसके पास इतनी विनय है। जबतक दोनोंमें यह आलाप हो रहा था, तबतक सैकड़ों युवतियों-से घिरी हुई भरतकी माता इस प्रकार दिखाई दी मानो भटों-को भग्न करती हुई गजघटा आ रही हो, मानो तिलक (तिलक वृक्ष और तिलक) से विभूषित वृक्षराजी हो, मानो पयोधरों (मेघ और स्तन) से सहित आकाशकी शोभा हो। मानो भरतकी सम्पत्तिकी ऋद्धिवृद्धि हो। मानो रामके गमन (वन-वास) की सिद्धि हो। मानो भरतकी सुन्दर सुखखान हो।

जं भणइ भरहु 'तुहुँ आउ आउ । वण-वासहों राहउ जाउ जाउ' ॥८॥

घत्ता

सु-पय सु-सन्धि सु-णाम वयण-विहत्ति-विहूसिय ।
कइ वायरणहों जेम केक्कय पुत्ति पदीसिय ॥९॥

[१०]

तहिँ सीयएँ दसरह-णन्दणेहिँ । जोक्कारिय राम-जणद्दणेहिँ ॥१॥
पुणु वुच्चइ सीर-प्पहरणेण । 'किं आणिउ भरहु अकारणेण ॥२॥
सुणु माएँ भडारउ परम-तच्चु । पालेवउ तायहों तणउ सच्चु ॥३॥
णउ तुरएँहिँ णउ रहवरेँहिँ कज्जु । णउ सोलह वरिसहँ करमि रज्जु ॥४॥
जं दिण्णु सच्चु ताएं ति-वार । तं मइ मि दिण्णु तुम्ह सय-वार' ॥५॥
एँउ वयणु भणेप्पिणु सुह-समिद्धु । सइँ हत्थेँ भरहहों पट्टु बद्धु ॥६॥
आउच्छेँवि पर-बल-मद्दण-वट्टु । घण-वासहों राहउ पुणु पयट्टु ॥७॥
गउ भरहु णियत्तु सु-पुज्जमाणु । जिण-भवणु पत्तु भिच्चेहिँ समाणु ॥८॥

घत्ता

थिउ मुणि-धवलहों पासेँ भरहेँ लइउ अवग्गहु ।
'दिट्ठएँ राहवचन्देँ महु णिवित्ति हय-रज्जहों' ॥९॥

[११]

एम चवेँवि उच्चलिउ महाइउ । राहव-जणणिहेँ भवणु पराइउ ॥१॥
विणउ करेप्पिणु पासु पढुक्किउ । 'रामु माएँ मइँ धरेँवि ण सक्किउ ॥२॥
हउँ तुम्हँहिँ आणवडिच्छउ । पेसणयारउ चलण-णियच्छउ' ॥३॥
धीरेँवि एम जणणि दणु-दमणहों । भरहु पराइउ गउ णिय भवणहों ॥४॥
आणइ हरि हलहर विहरन्तहँ । तिण्णि मि तावस-वणु संपत्तइँ ॥५॥

मानो रामकी इष्ट-कलत्र हानि हो। मानो वह कह रही है, "हे भरत ! तुम आओ, और राघव तुम वन जाओ, जाओ। व्याकरणकी कथा कैकेयी आती हुई दिखाई दी। जो सुपद (सु और आदिसे युक्त सुबन्तपद—अच्छे पैर), सुसंन्धि (सन्धिपदों-से सहित—अच्छी तरह गठी हुई); वचन विभक्ति (एक-दो आदि वचनों और प्रथमा-द्वितीया आदि विभक्तियोंसे विभू-षित—मुखके विभाजनसे विभूषित) से विभूषित थी ॥१-९॥

[१०] सीताके साथ, दशरथपुत्रों—राम और लक्ष्मणने उनका जय-जयकार किया फिर रामने कहा --"अकारण भरत-को लायीं। हे माँ, मेरा परमतत्त्व सुनो। मैं पिताके सत्यका पालन करूँगा। न मुझे घोड़ोंसे काम है, और न रथवरोंसे। मैं सोलह वर्ष राज्य नहीं करूँगा। पिताने जो सत्य तीन बार दिया है, वह मैं तुम्हें सौ बार देता हूँ।" यह कहकर रामने अपने हाथों सुखसे समृद्ध राज्यपट्ट भरतको बाँध दिया। जिनका मार्ग शत्रुसेनासे अवरुद्ध है ऐसे राम वनवासके लिए चल दिये। भरत लौटकर आये और अपने अनुचरोंके साथ सुपूज्य जिनमन्दिर पहुँचे। उन दोनों (भरत और शत्रुघ्न) ने धवल मुनिवरके पास यह व्रत ले लिया कि रामके देखते ही हम अश्वों और राज्यसे निवृत्ति ले लेंगे ॥१-९॥

[११] यह कहकर महात्मा भरत चला और रामकी माताके भवनपर पहुँचा। विनय करके वह निकट गया (और बोला)—"हे माँ ! मैं रामको रोक नहीं सका। मैं तुम्हारी आज्ञाकी इच्छा रखता हूँ। मैं तुम्हारा आज्ञाकारी और चरणोंको देखते रहना चाहता हूँ।" इस प्रकार माताको धीरज बँधाकर राक्षसका दमन करनेवाला राजा भरत अपने भवनके लिए गया। जानकी, लक्ष्मण और हलधर तीनों विहार करते हुए तापसवन पहुँचे। वहाँ उन्हें कितने ही जटाधारी तापस दिखाई

तावस के वि दिट्ठ जड-धारिय । कु-गण कु-णाम जेम जड-धारिय ॥६॥
के वि तिदण्डि के वि धाईसर । कुच्छिय णरिन्द जेम धाईसर ॥७॥
के वि रुद्द रुद्दक्ख-हत्था । मेरु जेम रुद्दक्ख-हत्था ॥८॥

घत्ता

तहिँ पइसन्ती सीय लक्खण-राम-विहूसिय ।
तिहिँ पक्खेहिँ समाण पुण्णिम णाइँ पदीसिय ॥९॥

[१२]

अण्णु वि थोवन्तरु विहरन्तइँ । वणु धाणुक्कहँ पुणु संपत्तइँ ॥१॥
जहिँ जणवउ मय-मत्थ-णियत्थउ । सरहिण-पिच्छ-पसाहिय-हत्थउ ॥२॥
कन्द-मूल-बहु-वणफल-भुञ्जउ । सिरेँ-मउ-मउल बद्ध गलेँ गुञ्जउ ॥३॥
जहिँ जुवइउ घुक्कु जाय विवाहउ । मयकरि-रय वलयङ्किय-बाहउ ॥४॥
मयकरि-कुम्भु करेप्पिणु उक्खलु । लेवि विसाण-मुसलु धवलुज्जलु ॥५॥
मोत्तिय-चाउल-हुलणोवइयउ । चुम्बिय-वयणउ मयणब्भइयउ ॥६॥
तं तेहउ वणु भिल्लहुँ केरउ । हरि-बलएवेंहिँ किउ विवरेरउ ॥७॥

घत्ता

तं मेल्लेँवि वरवाह लोयहिँ हरिसिय-देहेँहिँ ।
छाइय लक्खण-राम चन्द-सूर जिम मेहेँहिँ ॥८॥

[१३]

स-हरि स-भज्ज रामु धणुद्धरु । अण्णु वि जाम जाइ थोवन्तरु ॥१॥
दिट्ठ गोट्ठय णाइँ सु-वेसइँ । णं णरवइ-मन्दिरइँ सु-वेसइँ ॥२॥
जुज्झन्तइँ वेक्कार मुअन्तइँ । णलिणि-मुणाल-सण्ड तोडन्तइँ ॥३॥
कत्थइ वच्छ-रुणइँ णीसरइँ । पण्हइयाइँ व णिरु णीसरइँ ॥४॥
कत्थइ जणवउ सिसिरेँ चम्पिउ । पढम-सूइ सिरेँ धरेँ वि पणच्चिउ ॥५॥

लिये जो कुजन, कुग्राम (खोटे आदमी और गाँवकी तरह) जड़त्वको धारण करनेवाले (जडहारिय) थे। कोई त्रिदण्डी थे और कोई धाडीस्वर (धाडीसर) थे, जो कुपित राजाकी तरह, धाडीसर (तीर्थ जानेवाले—आक्रमणके लिए जोरसे चिल्लानेवाले) थे। कोई त्रिशूल हाथमें लिये रुद्र थे, जो महा-वतकी तरह रुद्रांकुश (त्रिशूल और अंकुश) लिये हुए थे। लक्ष्मण और रामसे विभूषित सीता देवी वहाँ प्रवेश करती हुई दोनों पक्षोंसे समान पूर्णिमाकी तरह दिखाई दीं ॥१-९॥

[१२] और भी थोड़ी दूर विहार करनेपर वे धानुष्कोंके वनमें पहुँचे, जो लोग मृगचर्म पहने हुए थे (मय-मत्थ-णियत्थउ), जिनके हाथ मयूरपंखोंसे प्रसाधित थे, जो कन्दमूल और तरह-तरहके वनफल खानेवाले थे। जिनके सिरपर वट-माला थी और जो गलेमें गुंजाफल बाँधे हुए थे। जहाँ युव-तियोंका शीघ्र विवाह हो जाता है उनकी बाँहें हाथी दाँतके वलयोंसे अंकित थीं। जो हाथियोंके मस्तकको ऊखल बनाकर तथा धवलोज्ज्वल हाथीदाँतका मूसल लेकर मोतियोंके चावल कूटनेवाली थीं। कामसे विह्वल, जिनके मुख चुम्बित हैं। भीलोंके उस वनको रामने उलट-पुलट दिया (मदल दिया)। अपने घरद्वारको छोड़कर, हर्षित शरीरवाले उन लोगोंने राम और लक्ष्मणको उसी प्रकार आच्छादित कर लिया, जिस प्रकार मेघोंके द्वारा सूर्य-चन्द्र आच्छादित कर लिये जाते हैं ॥१-८॥

[१३] लक्ष्मण और पत्नी सीता सहित धनुर्धारी राम जैसे ही थोड़ी दूर जाते हैं तो उन्हें रूपवाले गोठ दिखाई दिये। कहींपर ढेक्का ध्वनि करते हुए कमलिनियोंके मृणाल दण्डोंके समूहको तोड़ते हुए बिना सींगोंके बछड़े थे, जो अत्यन्त प्रव्रजितों (संन्यासियोंके समान) णीसंग (सींगोंसे रहित / परिग्रहसे रहित) थे। कहींपर शिशिरकाल (फागुन) में जनपद इस प्रकार

कत्थइ मन्था-मन्थिय-मन्थणि । कुणइ सद्दु सुरए व विलासिणि ॥६॥
कत्थइ णारि-णियम्बें सुहासिउ । णावइ कुडउ कुणइ मुहवासिउ ॥७॥
कत्थइ डिम्भउ परियन्दिज्जइ । अम्माहीरउ गेउ झुणिज्जइ ॥८॥

घत्ता

तं पेक्खेप्पिणु गोट्ठु णारीयण-परियरियउ ।
णावइ दिट्ठि मि जणेहिँ बालत्तणु संभरियउ ॥९॥

[१४]

तं मेल्लेप्पिणु गोट्ठु रवण्णउ । पुणु वणु पइसरन्ति आरण्णउ ॥१॥
जं फल-पत्त-रिद्धि-संपण्णउ । तरल-तमाल-ताल-संछण्णउ ॥२॥
वणं जिणालयं जहा स-चन्दणं । जिणिन्द-सासणं जहा स-सावयं ॥३॥
महा-रणङ्गणं जहा सचासणं । मइन्द-कन्धरं जहा स-केसरं ॥४॥
णरिन्द-मन्दिरं जहा स-माडयं । सुसज्ज-णच्चियं जहा स-तालयं ॥५॥
जिणेस-ण्हाणयं जहा महासरं । कु-तावसे तवं जहा मयासवं ॥६॥
मुणिन्द-जीवियं जहा स-मोक्खयं । महा-णहङ्गणं जहा स-सोमयं ॥७॥
मियङ्क-बिम्बयं जहा मयासयं । विलासिणी-मुहं जहा महारसं ॥८॥

घत्ता

तं वणु मेल्लेवि ताइँ कुन्द-दिसए आसण्णइँ ।
मासेंहिँ चउदहेंहिँ चित्तकूडु वोलीणइँ ॥९॥

शोभित था, मानो धान्यके प्रथम अंकुरोंकी नोकोंको अपने सिरपर धारण कर नाच उठा हो। कहींपर दही बिलोनेवालीकी मथानी इस प्रकार शब्द कर रही थी मानो जिस प्रकार विलासिनी कामक्रीड़ामें शब्द कर रही हो। कहींपर नारियोंके नितम्बोंसे सुवासित वन ऐसा लगता था मानो कुटज पुष्प मुख सुवासित कर रहा हो। कहींपर बालकको झुलाया जा रहा था और 'हो हो' इत्यादि लोरी गीत गाये जा रहे थे। स्त्रियों और परिजनोंसे घिरे हुए उस गोठको देखकर जैसे उन दोनोंको अपने बचपनकी याद आ गयी ॥१–९॥

[१४] उस सुन्दर गोठको छोड़कर, फिर वनमें प्रवेश करते हैं, जो फल और पत्तोंकी ऋद्धिसे सम्पन्न था। जो तरल तमाल और ताड़वृक्षोंसे आच्छादित था। वह वन जिनालयकी तरह चन्दन (चन्दन वृक्ष, चन्दन) से सहित था, जो जिनेन्द्रशासनकी तरह सावय (श्रावक और श्वापदसे सहित) था। जो महायुद्धके प्रांगणकी तरह सवासन (मांस और वृक्षविशेष) से संयुक्त था, जो सिंहके कन्धेकी तरह केशर (वृक्षविशेष और अयाल) से सहित था, जो राजाके मन्दिरकी तरह माधव (मंजरी वृक्षविशेष) से युक्त था, जो सुनिबद्ध नृत्यकी तरह ताल (वृक्ष और ताल) से सहित था, जो जिनेश्वरके स्नानकी तरह महासर (स्वर और सरोवर) वाला था, जो कुतापसके तपके समान मदासव (मद और मृग) वाला था, जो मुनीन्द्रके जीवनकी तरह मोक्ष (वृक्ष और मुक्ति) की तरह था, जो महाकाशके प्रांगणकी तरह सोम (चन्द्रमा और वृक्षविशेष) से सहित था, जो चन्द्रबिम्बकी तरह मद (मृग और मद) से आश्रित था, जो विलासिनीके मुखकी तरह महारसवाला था। उस वनको छोड़कर वे पूर्व दिशाकी ओर गये। दो माह वे चित्रकूटमें रहे ॥१–९॥

[१५]

तं चिसउन्तु सुएवि तुरन्तइँ । दसउरपुर-सीमन्तरु पत्तइँ ॥१॥
दिट्ठ महासरु कमल-करम्बिय । सारस-हंसावलि-बग-चुम्बिय ॥२॥
उज्जाणइँ सोहन्ति सु-पत्तइँ । मुणिवर इव सु-हलाइँ सु-पत्तइँ ॥३॥
सालिवणइँ पवकल्लिय सु-कइँ । णं सावयइँ जिणवर-भत्तइँ ॥४॥
उच्छुवणइँ दल-दीहर-गत्तइँ । णिय-बहु-कङ्कणइँ व दुकलत्तइँ ॥५॥
पङ्कय-पत्त-णीलुप्पल-सामें हिँ । तहिँ पइसन्तें हिँ लक्खण-रामें हिँ ॥६॥
सीरकुडुम्बिउ मणुसु पदीसिउ । जुण्णु कुरङ्गु व वाहुत्तासिउ ॥७॥
हडहड-फुट्ट-सीसु चल-णयणउ । पाणकन्तु समुब्भड-वयणउ ॥८॥

घत्ता

सो णासन्तु कुमारें सुरवर-कीर-पयण्डेंहिं ।
आणिउ रामहों पासु धरेंविं स इं भु य-दण्डेंहिं ॥९॥

●

[२५. पंचवीसमो संधि]

धणुहर-हत्थेंण दुव्वार-वइरि-आयामें ।
सीरकुड्डुविउ मम्भीसेंवि पुच्छिउ रामें ॥१॥

[१]

कुङ्कुम-दाणविन्द-मयण-महाहवेण ।
भो भो किं पिसन्थुलो वुत्तु राहवेण ॥१॥
तं णिसुणेवि पजम्पिउ गहवइ । वज्जयण्णु णामेण सु-णरवइ ॥२॥
सीहोयरहों भिच्चु हियइच्छिउ । भरहु व रिसहहों आणवडिच्छिउ ॥३॥
दसउर-णाहु जिणेसर-भत्तउ । पियवद्धणह पासें उवसन्तउ ॥४॥

[१५] फिर चित्रकूटको छोड़कर वे सुन्दर दशपुरकी सीमा-में पहुँचे। वहाँ उन्होंने महासरोवर देखा, जो कमलोंसे शोभित था, सारसों और हंसोंकी आवली तथा बगुलोंसे चुम्बित था। उसमें सुन्दर पत्तोंवाले उद्यान मुनिवरोंके समान सुफल और सुन्दर पत्रों (पात्रों और पत्तों) वाले थे। चावलोंसे युक्त शालिवन इस तरह प्रणाम करते हैं, मानो श्रावक जिनेश्वरको प्रणाम कर रहे हों। दलों (पत्तों) से लम्बे शरीरवाले गन्नेके खेत अपने (पति/प्रति) उल्लंघन करनेवाली दुष्कलत्रके समान प्रतीत होते हैं। कमल और नवनील कमलकी तरह श्याम राम-लक्ष्मणको वहाँ प्रवेश करते हुए सीरकुटुम्बक नामक मनुष्य दिखाई दिया, जो व्याधासे त्रस्त हरिणकी तरह था। हड़बड़ा कर फूटते हुए सिरवाला, चंचल नेत्र, प्राणोंसे नष्ट ? प्रचण्ड मुखवाला ? अपने सुरवरके ऐरावतके समान प्रचण्ड भुजदण्डोंसे कुमार भागते हुए उसे पकड़कर रामके पास ले आये ॥१-९॥

●

पचीसवीं सन्धि

दुर्वार शत्रुके लिए समर्थ तथा धनुष है हाथमें जिनके, ऐसे रामने अभय वचन देकर सीरकुटुम्बकसे पूछा।

[१] दुर्दम दानवेन्द्रोंका जिन्होंने महायुद्धमें मर्दन किया है ऐसे रामने कहा, "अरे-अरे-अरे! तुम दुःखी क्यों हो?" यह सुनकर गृहपति कहता है—वज्रकर्ण नामका मनुष्योंका अच्छा राजा है। वह सिंहरथका हृदयसे इच्छित उसी प्रकार अनुचर है जिस प्रकार भरत ऋषभके आज्ञाकारी थे। दशपुर-का राजा वज्रकर्ण जिनभक्त है। प्रियवर्धन मुनिके पास उसने

जिणवर-पडिम-अङ्गुट्ठएँ केप्पिणु । अण्णहों पणवइ ण णाहु मुएप्पिणु ॥५॥
ताम कु-मन्तिहिँ कहिउ णरिन्दहों । "पइँ अवगण्णेँवि णवइ जिणिन्दहों" ॥६॥
तं णिसुणेवि वयणु पहु कुद्धउ । णं खय-कालें कियन्तु विरुद्धउ ॥७॥
कोवाणल-पलित्तु सीहोयरु । णं गिरि-सिहरें सहन्ध-किसोयरु ॥८॥
'जो महु मुएँवि अण्णु जयकारइ । सो किं हय गय रज्जु ण हारइ ॥९॥

घत्ता

अह किं बहुऍण कल्लऍ दिणयरें अत्थन्तऍ ।
जइ ण वि मारमि तो पइसमि जलणें जलन्तऍ ॥१०॥

[९]

पइज करेवि ताम पहु आहवे अभङ्गो ।
ताम पइट्ठु चोरु णामेण विज्जुलङ्गो ॥१॥
पइसन्तें रयणिहिँ मज्झयालें । अलिउल-कज्जल-सण्णिह-तमालें ॥२॥
तें दिट्ठु णराहिउ विप्फुरन्तु । पलयाणलो व्व धगधगधगन्तु ॥३॥
रोमञ्च-कम्पु-कम्पुइय-देहु । जल-गब्भिणु णं गज्जन्तु मेहु ॥४॥
सण्णद्ध-बद्ध-परियर-णिबन्धु । रण-भर-धुर-धोरिउ दिण्ण-खन्धु ॥५॥
दलिअण्ड-मण्ड-णिब्भुरिय-णयणु । दट्ठोट्ठु सुदट्ठ-विप्फुरिय-वयणु ॥६॥
"मारेमि रिउ" जम्पन्तु एम । खय-कालें सणिच्छरु कुविउ जेम ॥७॥
"तं पेक्खेंवि चिन्तइ भुअ-विसालु । किं मारमि णं णं सामिसालु ॥८॥
साहम्मिय-वच्छलु किं करेमि । सव्वायरेण रक्खेप्पिणु करेमि" ॥९॥
गउ एम भणेंवि कण्टइय-गत्तु । णिविसद्धें दस उर-णयरु पत्तु ॥१०॥

घत्ता

दुट्ठु अहणुग्गमें सो विज्जुलङ्गु धावन्तउ ।
दिट्ठु णरिन्दें जस-पुञ्जु णाइँ आवन्तउ ॥११॥

जिनवरकी प्रतिमा अँगूठेमें लेकर यह उपशमभाव लिया है कि जिननाथको छोड़कर वह किसी औरके लिए नमस्कार नहीं करेगा ? लेकिन इतनेमें कुमन्त्रियोंने यह बात नरेन्द्रसे कह दी कि वह आपकी उपेक्षा करके जिनेन्द्रको नमस्कार करता है। यह वचन सुनकर राजा बहुत क्रुद्ध हुआ मानो प्रलयकालमें कालानल विरुद्ध हो उठा हो। कोपाग्निसे प्रदीप्त सिंहोदर ऐसा लगता है मानो पहाड़के शिखरपर सिंहशावक हो। (वह कहता है)—"जो मुझे छोड़कर किसी दूसरेकी जयकार करता है, वह क्या हय, गज और राज्यको नहीं हारेगा ? अथवा बहुत कहनेसे क्या ? कल सूर्यास्त तक यदि मैं उसे नहीं मारता, तो स्वयं अग्निमें प्रवेश करूँगा ॥१-१०॥

[२] जब युद्धमें वह अभग्न प्रभु यह प्रतिज्ञा कर रहा था कि तभी विद्युदंग चोर वहाँ प्रविष्ट हुआ। रात्रिके उस भ्रमर-कुल और काजलके समान श्याम मध्यकालमें (मध्य रात्रिमें) प्रवेश करते हुए उसने विस्फुरित राजाको प्रलयानलके समान धधकते हुए देखा। उसका शरीर रोमांचरूपी कवचसे कटीला था, वह मानो सजलमेघके समान गरज रहा था, सन्नद्ध जिसने समूचा परिकर बाँध लिया था। रणभारकी धुरीको उठानेमें जिसने अपना कन्धा दिया, जो जबरदस्त डरावने नेत्रोंवाला था, जो अपने ओंठ चबा रहा था, जो अत्यन्त विस्फुरित मुखवाला था, जो 'मैं शत्रुको मारूँगा' इस प्रकार कह रहा था। जो प्रलयकालमें शनिश्चरके समान कुपित था। उसे देखकर बाहुओंसे विशाल वह सोचता है, क्या इसे मार डालूँ, नहीं नहीं, यह स्वामी श्रेष्ठ है ? साधर्मीजनके प्रति वत्सल मैं क्या करूँ ? समस्त आदरके साथ उससे जाकर कहता हूँ। यह विचारकर रोमांचित शरीर वह आधे पलमें दशपुर नगर पहुँच गया। शीघ्र ही अरुणोदय होनेपर दौड़ता हुआ

[३]

पुच्छिउ वज्जयण्णेण हसेवि विज्जुलङ्गो ।
"भो भो कहिँ पयट्टु बहु-वहल-पुलइयङ्गो" ॥१॥

तं णिसुणेप्पिणु वयण-विसालें । वुच्चइ वज्जयण्णु कुसुमालें ॥२॥
"कामलेह-णामेण विलासिणि । सुन्द-पओहर जण-मण-भाविणि ॥३॥
तहें आसत्तउ अत्थ-विवज्जिउ । कारणें मणि-कुण्डलहँ विसज्जिउ ॥४॥
पुणु सिमाहर-करणु करेप्पिणु । गउ सत्त वि पायार कमेप्पिणु ॥५॥
किर वर-भवणु पईसमि जावेंहिं । पइज करन्तु राउ सुउ तावेंहिं ॥६॥
हउँ वयणेण तेण आदण्णउ । वट्टइ वज्जयण्णु उच्छण्णउ ॥७॥
साहम्मिउ जिण-सासण-दीवउ । एम भणेप्पिणु चलिउ पदीवउ ॥८॥
पुणु वि विरुद्ध-पय-छोहेंहिं धाइउ । णिविसें तुम्हहुँ पासु पराइउ ॥९॥

घत्ता

किं ओलग्गएँ आणन्तु वि राय म बुज्झहि ।
पाण लएप्पिणु जेंम णासहि रणें जुज्झहि ॥१०॥

[४]

अइवइ काइँ वट्टु जम्पिएण राया ।
पर-बलें पेक्खु पेक्खु उट्ठन्ति धूलि-छाया ॥१॥

पेक्खु पेक्खु आवन्तउ साहणु । गलगज्जन्तु महागय-वाहणु ॥२॥
पेक्खु पेक्खु हिंसन्ति तुरङ्गम । णहयलें चिउलें भमन्ति विहङ्गम ॥३॥
पेक्खु पेक्खु चिन्धइँ धुव्वन्तइँ । रह-चक्कइँ महियलें खुप्पन्तइँ ॥४॥
पेक्खु पेक्खु वज्जन्तइँ तूरइँ । णाणाविह-णिणाय-गम्भीरइँ ॥५॥
पेक्खु पेक्खु सव सङ्ख रसन्ता । णाइँ सदुक्खउ सयण रुअन्ता ॥६॥
पेक्खु पेक्खु पचलन्तउ णरवइ । गह-णक्खत्त-मज्झे ससि णावइ" ॥७॥
दसउर-णाहु णिहालइ जावेंहिं । पर-बलु सयलु विहावइ तावेंहिं ॥८॥
"साहु साहु" सो एम भणेप्पिणु । विज्जुलङ्गु णिउ आलिङ्गेप्पिणु ॥९॥

विद्युदंग राजा वज्रकर्णको आते हुए यशःपुंजकी तरह दिखाई दिया ॥१-११॥

[३] वज्रकर्णने हँसकर विद्युदंगसे पूछा—"अरे अरे, अत्यन्त पुलकित अंग तुम कहाँ जा रहे हो?" यह सुनकर मुखसे विशाल चोर विद्युदंगने कहा, "कामलेखा नामकी विलासिनी है, जो अत्यन्त ऊँचे स्तनोंवाली और जनमनोंके लिए प्रिय है। अर्थसे हीन मैं उसमें अनुरक्त हूँ। उसने मुझे मणिकुण्डलोंके लिए भेजा है। मैंने विद्याधरका तन्त्र कर सातों परकोटोंको लाँघकर जैसे ही उत्तम भवनमें प्रवेश किया, वैसे ही राजाको यह प्रतिज्ञा करते हुए सुना तो मैं उस वचनसे पीड़ित हो उठा। वज्रकर्णका नाश होना चाहता है; वह साधर्मी और जिनशासनका दीपक है। यह विचारकर मैं वापस आ गया। फिर भी पैरोंके अत्यन्त वेगसे मैं दौड़ा और एक पलमें तुम्हारे पास आ पहुँचा। उसकी सेवासे क्या? जानते हुए भी हे राजन्! तुम मूर्ख मत बनो। युद्धमें इस प्रकार लड़ो कि जिससे वह प्राण लेकर भाग जाये ॥१-१०॥

[४] अथवा, अधिक कहनेसे हे राजन्! क्या? देखो देखो, शत्रुसेनासे धूलकी छाया उठ रही है; आती हुई सेनाको देखो देखो; गरजते हुए महागजवाहनको देखो; देखो देखो, घोड़े हींस रहे हैं और विशाल आकाशतलमें पक्षी चढ़ रहे हैं; देखो देखो, पताकाएँ उड़ रही हैं; रथचक्र धरतीतलपर निमग्न हो रहे हैं; देखो देखो, तूर्य बज रहे हैं, जो नाना शब्दोंसे गम्भीर हैं। देखो देखो, सैकड़ों शंख बज रहे हैं जैसे अपने दुःखसे स्वजन रो रहे हों। देखो देखो चलते हुए राजाको, जैसे ग्रह और नक्षत्रोंके बीच शनि हो।" जबतक रथपुरका राजा देखता है, तबतक समूचा शत्रुसैन्य दिखाई देने लगता है। तब साधु-साधु कहकर, राजा वज्रकर्ण विद्युदंगका आलिंगन कर, जब-

थिउ रण-भूमि पसाहेँवि जावेँहिँ । सयलु वि सेण्णु पराइउ तावेँहिँ ॥१०॥

घत्ता

अमरिस-कुद्धेँहिँ चउपासेँहिँ णरवर-विन्देँहिँ ।
वेढिउ पट्टणु जिम महियलु चउहिँ समुद्देँहिँ ॥११॥

[५]

किय गय सारि-सज्ज पक्खरिय वर-तुरङ्गा ।
कवय-णिबद्ध जोह अब्भिट्ट पुलइयङ्गा ॥१॥
अब्भिट्टइँ जुज्झु विण्ह वि बलाइँ । अवरोप्परु वड्ढिय-कलयलाइँ ॥२॥
वज्जन्त-तूर-कोलाहलाइँ । उच्चोइय-चलाविय-मयगलाइँ ॥३॥
मुक्केक्कमेक्क-सर-सब्बलाइँ । भुअ-छिण्ण-भिण्ण-वच्छत्थलाइँ ॥४॥
लोट्टाविय-धय-मालाउलाइँ । पडिपहर-विहुर-विहलङ्घलाइँ ॥५॥
णिट्ठुरिय-णयण-दसियाहराइँ । असि-झस-सर-सत्ति-पहरण-धराइँ ॥६॥
सुपमाण-चाव-कड्ढिय-कराइँ । गुण-दिट्ठि-मुट्ठि-सन्धिय-सराइँ ॥७॥
दुग्घोट्ट-थट्ट-लोट्टावणाइँ । कायर-णर-मण-संतावणाइँ ॥८॥
जयकारहोँ कारणेँ दुद्धराइँ । रणु वज्जयण्ण-सीहोयराइँ ॥९॥

घत्ता

विहि मि भिडन्तहिँ समरङ्गणेँ दुन्दुहि वज्जइ ।
विहि मि णरिन्दहुँ रणेँ एक्कु वि जिणइ ण जिज्जइ ॥१०॥

[६]

"हणु हणु [हणु]" भणन्ति हम्मन्ति आहणन्ति ।
पउ वि ण ओसरन्ति मारन्ति रणेँ मरन्ति ॥१॥
उहय-बलेँहिँ पवियम्भिय-खन्धइँ । उहय-बलेँहिँ णच्चन्ति कबन्धइँ ॥२॥
उहय-बलेँहिँ सुसुमूरिय धयवड । उहय-बलेँहिँ लोट्टाविय भड-थड ॥३॥
उहय-बलेँहिँ हय गय विणिवाइय । उहय-बलेँहिँ रुहिरोह पधाइय ॥४॥

तक युद्धभूमिमें सज्जित होकर स्थित होता है, तबतक समूचा सैन्य वहाँ पहुँच जाता है। चारों ओरसे अमर्षसे क्रुद्ध नरवर समूहोंसे घिरा हुआ नगर ऐसा लगता है जैसे चार समुद्रोंसे धरतीतल घिरा हो ॥१-११॥

[५] हाथियोंको पर्याणोंसे सजा दिया गया, श्रेष्ठ घोड़ोंको कवच पहना दिये गये। कवच पहने हुए पुलकितांग योद्धा आपसमें भिड़ गये। एक दूसरेपर कोलाहल करती हुई सेनाओं-में युद्ध होने लगा। जिसमें बजते हुए नगाड़ोंका कोलाहल हो रहा था, जिसमें मदमाते महागजोंको विभूषासे अंकित किया गया था, जिसमें एक दूसरेपर सब्बल फेंके जा रहे थे, भुजाओं-से वक्षस्थल छिन्न-भिन्न हो रहे थे, जिसमें ध्वजमाला कुल नष्ट हो रहा था, जिसमें (लोग) प्रतिहारोंसे विधुर और विह्वलांग हो रहे थे। जो भयावने नेत्र और चबाते हुए ओठोंवाले थे, जो तलवार, क्षप, तीर और शक्ति प्रहरणोंको धारण करनेवाले थे, जिन्होंने सुप्रमाणित धनुष हाथोंमें खींच लिये थे, जिन्होंने गुणदृष्टि और मुट्ठीसे सरोंका सन्धान कर लिया था, जिसमें गजघटाएँ लोटपोट हो रही थीं, जो कायर नरोंके मनोंके लिए सन्तापदायक थे ऐसे वज्रकर्ण और सिंहोदरमें विजयके लिए रण हुआ। युद्धरत दोनोंके समर प्रांगणमें दुन्दुभि बज उठती है। उन दोनों राजाओंमें-से युद्धमें एक भी न तो जीतता, और न जीता जाता ॥१-१०॥

[६] वे मारो-मारो कहते हैं, मारते हैं और मार खाते हैं। युद्धमें मरते हैं या मारते हैं, परन्तु एक भी कदम नहीं हटते। दोनों सेनाओंके द्वारा अग्रिम सेना गिरा दी गयी, दोनों सेनाओंके द्वारा कबन्ध नचाये गये, दोनों सेनाओंके द्वारा ध्वजपट मसल दिये गये, दोनों सेनाओंके द्वारा भटसमूह धराशायी कर दिया गया। दोनों सेनाओंके द्वारा हाथी और

उहय-बलेँहिँ णिवंसिय सग्गइँ । उहय बलेँहिँ वेवन्ति विहङ्गइँ ॥५॥
उहय-बलेँहिँ णीसद्दइँ तूरइँ । उहय-बलइँ पहरण-सर-चिहुरइँ ॥६॥
उहय-बलइँ गय-दन्तहिँ भिण्णइँ । उहय-बलइँ रण-भूमि-णिसण्णइँ ॥७॥
उहय-बलइँ रुहिरोल्लिय-गत्तइँ । रुक्ख-रुक्ख-कलुकल मुअन्तइँ ॥८॥
एम एक्कु वट्टइ संगामहोँ । अच्छइ सीरकुडुम्बिउ रामहोँ ॥९॥

घत्ता

तं णिसुणेप्पिणु मणि-अरणय-किरण-फुरन्तउ ।
दिण्णु स-हत्थेँण कण्ठउ कढउ कविसुत्तउ ॥१०॥

[७]

पुणु संचल्ल वे वि बलएव-वासुएवा ।
जाणइ-करिणि-सहिय गय णिल्लु-गण्ड जेवा ॥१॥

चाव-विहत्थ महत्थ महाइय । सहसकूडु जिणभवणु पराइय ॥२॥
जं इट्टाल-धवल-छुह-पङ्किउ । सज्जण-हियउ जेम अकलङ्किउ ॥३॥
जं उत्तुङ्ग-सिहरु सुर-कित्तिउ । वण्ण-विचित्त-चित्त-चिर-चित्तिउ ॥४॥
तं जिणभवणु णियवि परितुट्ठइँ । पयहिण देवि ति-वार पइट्ठइँ ॥५॥
तहिँ चन्दप्पह-बिम्बु णिहालिउ । जं सुरवरतरु-कुसुमोमालिउ ॥६॥
जं णागेन्द-सुरेन्द-णरिन्दहिँ । वन्दिउ मुणि-विज्जाहर-विन्दहिँ ॥७॥
दिट्ठु सु-सोहिउ सोम्मु सु-दंसणु । अण्णु वि सेय-चमरु सिंहासणु ॥८॥
छत्त-त्तउ असोउ भा-मण्डलु । लच्छि-विहूसिउ वियड-उरत्थलु ॥९॥

घत्ता

किं बहु (एं)-चवियएँण जसेँ को पडिबिम्बु ठविज्जइ ।
पुणु वि पडीवउ अइ णाहेँ णाहुवमिज्जइ ॥१०॥

घोड़े गिरा दिये गये। दोनों सेनाओंके द्वारा रक्तकी धाराएं प्रवाहित कर दी गयीं: दोनों सेनाओं द्वारा तलवारें मोड़ दी ली गयीं, दोनों सेनाओंसे पक्षी काँप उठे। दोनों सेनाओंके द्वारा तूर्य निःशब्द कर दिये गये, दोनों सेनाएँ प्रहरणोंसे कठोर और विधुर थीं। दोनों सेनाएँ गजदन्तोंसे भिन्न हो गयीं। दोनों सेनाएँ रणभूमिमें स्थित हो गयीं। दोनों सेनाएँ रक्तसे आर्द्रशरीर हो उठीं। दोनों सेनाएँ हुंकार, हक्कार और ललकार रही थीं। इस प्रकार संग्रामके लिए एक पखवाड़ा हो चुका है,"—सीरकुटुम्ब रामसे कहता है। यह सुनकर रामने अपने हाथसे मणि-मरकतकी किरणोंसे विस्फुरित कण्ठा, कटक और कटिसूत्र उसे दिया ॥१-१०॥

[७] फिर दोनों बलदेव और वासुदेव चले। सीतारूपी हथिनीके साथ वे आर्द्रगण्डस्थल गजके समान लगते थे। हाथमें धनुष लिये महाआदरणीय महारथी राम सहस्रकूट जिनभवन-में पहुँचे, जो ईंटोंवाला धवल चूनेसे पुता हुआ था, जो सज्जनोंके हृदयके समान अकलंकित था, जो ऊँची शिखरों-वाला और देवोंके द्वारा प्रशंसनीय था, जो वर्णविचित्र चित्रोंसे चिरचित्रित था। उस जिनभवनको देखकर वे सन्तुष्ट हो गये। तीन प्रदक्षिणा देकर वे वहाँ बैठ गये। वहाँ उन्होंने चन्द्रप्रभकी प्रतिमाको देखा जो कल्पवृक्षके पुष्पोंकी मालासे युक्त थी, जो नागेन्द्र, सुरेन्द्र, नरेन्द्रों, मुनि, विद्याधर-समूहोंके द्वारा वन्दनीय थी तथा जो सुशोभित, सौम्य सुदर्शनीय थी। दूसरे, श्वेत चामर, सिंहासन, छत्रत्रय, अशोक और भामण्डल भी। लक्ष्मी-से विभूषित एवं विकट उरस्थलवाले उस प्रतिबिम्बकी उपमा किससे स्थापित की जाये। बहुत कहनेसे क्या? फिर भी यह प्रतिकूल बात होगी यदि स्वामीसे स्वामीकी उपमा दी जाये ॥१-१०॥

[८]

जं जग-णाहु दिट्ठु बल-सीय-लक्खणेहिँ ।
तिहि मि जणेहिँ वन्दिओ विविह-वन्दणेहिँ ॥१॥

'जय रिसह दुसह-परिसह-सहण । जय अजिय अजिय-वम्मह-महण ॥२॥
जय संभव संभव-णिद्दलण । जय अहिणन्दण णन्दिय-चलण ॥३॥
जय सुमइ-भडारा सुमइ-कर । पउमप्पह पउमप्पह-पवर ॥४॥
जय सामि सुपास सु-पास-हण । चन्दप्पह पुण्ण-चन्द-वयण ॥५॥
जय जय पुप्फयन्त पुप्फच्चिय । जय सीयल सीयल-सुह-संचिय ॥६॥
जय सेयङ्कर सेयंस-जिण । जय वासुपुज्ज पुज्जिय-चलण ॥७॥
जय विमल-भडारा विमल-सुह । जय सामि अणन्त अणन्त-सुह ॥८॥
जय धम्म-जिणेसर धम्म-धर । जय सन्ति-भडारा सन्ति-कर ॥९॥
जय कुन्थु महत्थुइ-थुअ-चलण । जय अर-अरहन्त महन्त-गुण ॥१०॥
जय मल्लि मल्ल-मल्ल-मलण । मुणि सुव्वय सु-व्वय सुद्ध-मण' ॥११॥

घत्ता

वीस वि जिणवर वन्देप्पिणु रामु पहसइ ।
जहिँ सीहोयरु तं णिलउ कुमारु पईसइ ॥१२॥

[९]

ताम णरिन्द-वारे थिर थोर-बाहु-जुअलो ।
सो पडिहारु दिट्ठु सव्वत्थ-देसि-कुसलो ॥१॥

पइसन्तु सुहडु तें धरिउ केम । णिय-समएं लवणसमुद्दु जेम ॥२॥
तं कुविउ वीरु विप्फुरिय-वयणु । विहुणन्तु हत्थ णिट्ठुरिय-णयणु ॥३॥
मणेँ चिन्तइ वइरि-समुद्द-महणु । 'किं मारमि णं णं कवणु गहणु' ॥४॥

[८] जब राम, सीता और लक्ष्मणके द्वारा विश्वनाथ (जिनेन्द्र) देखे गये तो उन्होंने विविध वन्दनाओंसे उनकी वन्दना की, "असह्य परीषह सहन करनेवाले आपकी जय हो, अजेय कामका नाश करनेवाले आपकी जय हो, जन्मका नाश करनेवाले सम्भवनाथ आपकी जय हो, नन्दित चरण अभिनन्दन आपकी जय हो, सुमति करनेवाले आदरणीय सुमति आपकी जय हो, पद्म (कमल) की तरह सौरभ (कीर्तिवाले) प्रवर पद्मनाथ आपकी जय हो, पुष्पोंसे अर्चित पुष्पदन्त आपकी जय हो, जिन्होंने शीतलसुखका संचय किया है ऐसे शीतलनाथ आपकी जय हो; कल्याण करनेवाले श्रेयांस जिन आपकी जय हो; पूज्यचरण वासुपूज्य आपकी जय हो; पवित्रमुख आदरणीय विमलनाथ आपकी जय हो, अनन्त सुखवाले हे अनन्त स्वामी आपकी जय हो। हे धर्मधारण करनेवाले धर्म जिनेश्वर आपकी जय हो, हे शान्तिविधायक आदणीय शान्तिनाथ आपकी जय हो, जिनके चरण महास्तुतियोंसे संस्तुत हैं ऐसे कुन्थुनाथ आपकी जय हो। महान् गुणोंसे विशिष्ट अर अरहन्त आपकी जय हो। बड़े-बड़े मल्लों (कामक्रोधादि)-का नाश करनेवाले मल्लिनाथ आपकी जय हो। सुव्रतों-वाले शुद्ध मन हे सुव्रत आपकी जय हो।" इस प्रकार बीसों जिनवरोंकी वन्दना कर राम वहाँ बैठ जाते हैं। लेकिन लक्ष्मण उस भवनमें प्रवेश करता है जहाँ कि सिंहोदर था ॥१–१२॥

[९] इतनेमें राज्यद्वारपर स्थिर और स्थूल बाहुवाला शब्दार्थ और देशीभाषामें कुशल प्रतिहार दिखाई दिया। प्रवेश करते हुए सुभटको उसने उसी प्रकार पकड़ लिया, जिस प्रकार अपनी मर्यादाके द्वारा लवण समुद्र पकड़ लिया जाता है। इससे विस्फुरित मुख वह वीर कुपित हो उठा। हाथ पीटता हुआ भयंकर नेत्र, शत्रुसमुद्रका मन्थन करनेवाला वह अपने मनमें

णाइ एम भणेँवि भुअ-दण्ड-चण्डु । णं मत्त-महागउ गिल्ल-गण्डु ॥५॥
तं दसउर-णयरु पइट्ठु केम । जण-मण-मोहणु अणङ्गु जेम ॥६॥
दुव्वार-वइरि-सय-पाण-चोरु । णीसरिउ णाइँ केसरि-किसोरु ॥७॥
थिउ लक्खणु लक्खिउ राय-बारेँ । पडिहारु वुत्तु 'मं मं णिवारेँ' ॥८॥
तं वयणु सुणेवि पइट्ठु वीरु । पच्चक्ख-लच्छि-लञ्छिय-सरीरु ॥९॥

घत्ता

दसउर-णाहेण लक्खिज्जइ एन्तउ लक्खणु ।
रिसह-जिणिन्देँण णं धम्मु अहिंसा-लक्खणु ॥१०॥

[१०]

हरिसिउ वज्जयण्णु दिट्ठेँण लक्खणेणं ।
पुणु पुणु णेह-णिब्भरो चविउ तक्खणेणं ॥१॥
'किं देमि हत्थि रह तुरय-थट्ट । विप्फुरिय-फुरिय-मणि-मउड-पट्ट ॥२॥
किं वत्थेँहिँ किं रयणेहिँ कज्जु । किं णरवर-परिमिउ देमि रज्जु ॥३॥
किं देमि स-विब्भमु पिण्डवासु । किं स-सुउ स-कलत्तु होमि दासु' ॥४॥
तं वयणु सुणेँवि हरिसिय-मणेण । पडिवुत्तु णराहिउ लक्खणेण ॥५॥
'कहिँ मुणिवरु कहिँ संसार-सोक्खु । कहिँ पाव-पिण्डु कहिँ परम-मोक्खु ॥६॥
कहिँ पायउ केत्थु कुडुक्क-वयणु । कहिँ कमल-सण्डु कहिँ विउलु गयणु ॥७॥
कहिँ मयगलेँ हलु कहिँ उट्टेँ घण्ट । कहिँ पल्थिउ कहिँ रह-तुरय-थट्ट ॥८॥
तं बोल्लहि जं ण घडइ कलाएँ । अम्हइँ चाहिय भुक्खएँ खलाएँ ॥९॥

घत्ता

मुइँ साहम्मिउ वय-धम्मु करन्तु ण थक्कहि ।
भोयणु मग्गिउ तिहुँ जणहुँ देहि जइ सक्कहि' ॥१०॥

विचार करता है कि क्या मार दूँ। नहीं-नहीं, इसमें क्या मिलेगा। यह विचार कर, भुजदण्डोंसे प्रचण्ड वह वहाँसे गया, मानो आर्द्रगण्डस्थलवाला महागज हो। वह उस दशपुर नगरमें किस प्रकार पहुँचा मानो जनमनोंको मोहित करनेवाला कामदेव हो। दुर्वार सैकड़ों वैरियोंके प्राणोंको चुरानेवाला वह किशोर सिंहके समान निकला। जब राज्यद्वारपर लक्ष्मण देखा गया तो प्रतिहारसे कहा गया कि इसे मत रोको। यह वचन सुनकर लक्ष्मीके चिह्नोंसे भूषित शरीर वह वीर वहाँ गया। दशपुरके राजा वज्रकर्णने लक्ष्मणको आते हुए देखा, मानो ऋषभनाथने अहिंसा लक्षणवाले धर्मको देखा हो ॥१-१०॥

[१०] लक्ष्मणको देखकर वज्रकर्ण प्रसन्न हुआ। बारबार स्नेहसे परिपूर्ण होकर तत्क्षण उसने यही कहा कि "क्या हाथी, रथ या नगरसमूह। या अपूर्व और स्फुरित मणियोंका मुकुट-पट्ट। वस्त्रोंसे क्या और रत्नोंसे क्या? क्या मनुष्योंसे परिमित राज्य दे दूँ। क्या विभ्रमसहित सुहृद्जन दे दूँ? क्या पुत्र और पत्नीसहित इनका दास बन जाऊँ?" यह वचन सुनकर हर्षितमन लक्ष्मणने राजासे कहा, "कहाँ मुनिवर और कहाँ संसार सुख? कहाँ पापपिण्ड और कहाँ परम मोक्ष? कहाँ प्राकृत और कहाँ कठोर वचन[1]। कहाँ कमलसमूह और कहाँ विशाल आकाश? मदमाते हाथीको हल कहाँ और ऊँटके घण्टी कहाँ? कहाँ हम पथिक और कहाँ रथ और घोड़ोंका समूह? वह बोलना चाहिए जो कलासे कम न हो, हम लोग दुष्ट भूखसे पीड़ित हैं? तुम साधर्मी जन हो, दयाधर्म करते हुए कभी नहीं थकते। हम तीन जनोंको, यदि दे सकते हो, तो भोजन दो ॥१-१०॥

---

१. कहाँ प्राकृतजन और कहाँ कैतवपूर्ण वचन।

[११]

वुत्तइ वज्जयण्णेंण सजल-लोयणेण ।
'मग्गिउ देमि रज्जु किं गहणु भोयणेण' ॥१॥
एम भणेप्पिणु अण्णु वि आइउ । णिविसें रामहों पासु पराइउ ॥२॥
रयणेँ कच्चोल थाल ओयारिय । परियल-सिप्पि-सङ्ख वित्थारिय ॥३॥
बहुविह-खण्ड-पयारेंहिं मण्डिउ । उब्भु-मग्ग पिव सुह-रसियड्ढिउ ॥४॥
सज्जाणं पिव सुदढु सुअन्धउ । सिद्धहों सिद्धि-सुहं पिव सिद्धउ ॥५॥
रेहइ असण-वेल बलहद्दहों । णाइँ विणिग्गय अमय-समुद्दहों ॥६॥
धवल-पवर-कूर-फेणुज्जल । पेज्जावत्त दिन्ति चल चञ्चल ॥७॥
घिय-कल्लोल-वोल पवहन्ती । तिम्मण-तोय-तुसार मुअन्ती ॥८॥
सालण-सय-सेवाल-करम्बिय । हरि-हलहर-जलयर-परिचुम्बिय ॥९॥

घत्ता

किं बहु-चविएँण सच्छाउ सलोणु स-विञ्जणु ।
दुट्ठ-कलत्तु व तं भुत्तु जहिच्छएँ भोयणु ॥१०॥

[१२]

भुञ्जेंवि रामचन्देंण पभणिओ कुमारो ।
'भोयणु ण होइ एउ उवयार-गरुअ-भारो ॥१॥
पडिउवयारु किं पि चिन्तासहि । उभय-बलेंहि अप्पाणु पगासहि ॥२॥
तं सीहोयरु गम्पि णिवारहि । अद्धें रज्जहों सन्धि समारहि ॥३॥
वुत्तइ भरहें दूउ विसज्जिउ । कुमरउ वज्जयण्णु अपरज्जिउ ॥४॥
तेण समाणु कवणु किर विग्गहु । जं अप्पाणिउ समरें परिग्गहु ॥५॥
तं णिसुणेंवि वयणु रिउ-मद्दणु । रामहों चलणेंहिं पडिउ जणद्दणु ॥६॥
'अज्जु कियत्थु अज्जु हउँ धण्णउ । जं आएसु देव पइँ दिण्णउ' ॥७॥

[११] सजल आँखोंसे वज्रकर्णने कहा, "माँगा गया मैं राज्य दे दूँगा ! भोजन ग्रहण करनेसे क्या ?" यह कहकर उसने अन्न (भोजन) उठा लिया और एक पलमें रामके पास पहुँचा। एक पलमें कटोरी और थालमें उसे रख दिया गया। भोजन पात्र, सीप और शंख फैला दिये गये।

वह भोजन, अनेक प्रकार भोजनोंसे प्रचुर था, ईखवनकी तरह सुखरससे परिपूर्ण था, उद्यानकी तरह सुगन्धित था, सिद्धके सिद्धि-सुखकी तरह सिद्ध था। रामकी भोजनकी वेला, अमृत समुद्रसे निकली हुई वेला (तट) के समान शोभित थी, जो धवल और मधुर कूट (भात) रूपी फेनसे शबलित थी, जो चंचल और चल पेयरूपी आवर्त दे रही थी, जो घीरूपी लहरोंके समूहसे प्रवाहित हो रही थी, कढ़ीरूपी जलके कणोंको छोड़ रही थी, जो शालनरूपी सैकड़ों शैवालोंसे अंचित थी तथा लक्ष्मण और रामरूपी जलचरोंसे परिचुम्बित थी। अधिक कहनेसे क्या, प्रिय कलत्र (प्रिय स्त्रीकी तरह) कान्तिवाला (सच्छाय), लवण (सुन्दरता और नमक), व्यंजन (अलंकार और पकवान) से सहित वह भोजन (राम-लक्ष्मण ने) भोगा (खाया, भोग किया) ॥१-१०॥

[१२] भोजन कर रामने कुमार लक्ष्मणसे कहा, "यह भोजन नहीं है यह तो उपकारका भारी भार है। इसलिए इसका कुछ प्रत्युपकार करो, दोनों सेनाओंके बीच तुम अपनेको प्रकट करो। जाकर उस सिंहोदरका निवारण करो। आधे राज्यपर सन्धि करवा दो, भरतके द्वारा प्रेषित दूत कहता है कि वज्रकर्ण दुर्जय और अपराजित है। उसके साथ कैसा युद्ध कि जिसने युद्धमें साधन जुटाये हैं।"

यह वचन सुनकर, शत्रुओंका मर्दन करनेवाला लक्ष्मण रामके चरणोंमें गिर पड़ा कि आज मैं धन्य हूँ, आज मैं कृतार्थ

एम भणेवि पधाइउ महाइउ । गउ सीहोयर-भवणु पराइउ ॥८॥
मत्त-गइन्दु जेम गजगज्जेवि । तं पडिहारु करग्गें तज्जेवि ॥९॥

घत्ता

तिण-समु मण्णेवि अत्थाणु सयलु अवगण्णेवि ।
पइट्ठु भयाणणु गय-जूहें जेम पञ्चाणणु ॥१०॥

[१३]

अमरिस-कुद्धएण बहु-भरिय-मच्छरेणं ।
सीहोयरु पलोइओ जिह सणिच्छरेणं ॥१॥
कोवाणल-सय-जाल-झलक्कें । पुणु पुणु जोइउ णाइँ कयन्तें ॥२॥
जव जव लक्खणु लक्खइ संमुहु । तव तव सिमिरु थाइ हेट्ठा-मुहु ॥३॥
चिन्तिउ 'को वि महा-बलु दीसइ । णवर पणिवाउ करइ णउ वइसइ' ॥४॥
तं जि णिमित्तु लएवि कुमारें । वुत्तु राउ 'किं बहु-वित्थारें ॥५॥
एम विसज्जिउ भरह-णरिन्दें । करइ केलि को समउ मइन्दें ॥६॥
को सुर-करि-विसाण उप्पाडइ । मन्दरसेल-सिहरु को पाडइ ॥७॥
कोऽजयबाहु करग्गें ढक्कइ । वज्जयण्णु को मारेंवि सक्कइ ॥८॥
सन्धि करहों परिभुञ्जहों मेइणि । हियय-सुहङ्करि जिह वर-कामिणि ॥९॥

घत्ता

अहवइ णरवइ अज्जु रज्जहों अद्धु ण इच्छहि ।
तो समरङ्गणें सर-धोरणि एन्ति पडिच्छहि' ॥१०॥

[१४]

लक्खण-वयण-दूसिओ अहर-विप्फुरन्तो ।
'मरु मरु मारि मारि हणु हणु' भणन्तो ॥१॥
उट्ठिउ पहु करवाल-विहत्थउ । 'अच्छउ ताम भरहु वीसत्थउ ॥२॥
दूअहों दूअत्तणु दरिसावहों । छिन्दहों णासु सीसु मुण्डावहों ॥३॥
लुणहों हत्थ विच्छोरेंवि मावहों । गद्दहें चडिवउ णयरें भमाडहों' ॥४॥

हूँ कि जो है देव, आपने आदेश दिया। (यह कहकर) इस प्रकार वह आदरणीय चला और सिंहोदरके भवनपर पहुँचा। (वहाँ) मतवाले हाथीकी तरह गरजकर और प्रतिहारको हाथके अग्रभागसे डाँटकर, तिनकेके बराबर समझकर, समस्त दरबारकी उपेक्षा कर उसने उसी प्रकार प्रवेश किया कि जिस प्रकार गजसमूहमें सिंह प्रवेश करता है ॥१-१०॥

[१३] अमर्षसे क्रुद्ध बहुत मत्सरसे भरे हुए उसने सिंहोदर-को इस प्रकार देखा जैसे शनिश्चरने देखा हो। क्रोधानलकी सैकड़ों ज्वालाओंसे प्रज्वलित उसने बार-बार इस प्रकार देखा जैसे कृतान्तने देखा हो। जब-जब लक्ष्मण सम्मुख देखता, तब-तब शिविर नीचा मुख करके रह जाता। उसने (सिंहोदरने) सोचा, कोई महाबलवान् दिखाई देता है, जो न तो प्रणाम करता है और न बैठता है। उसीको लक्ष्य बनाकर कुमारने राजासे कहा—"बहुत विस्तारसे क्या? भरत राजाने यह कहकर भेजा है कि सिंहके साथ कौन क्रीड़ा करता है, ऐरावत-के दाँत कौन उखाड़ सकता है, मन्दराचलके शिखरको कौन उखाड़ सकता है? चन्द्रमाको कौन अपने हाथसे ढक सकता है? वज्रकर्णको कौन मार सकता है? सन्धि कर लो और धरतीका हृदयके लिए शुभकर उत्तम कामिनीकी तरह भोग करो। अथवा हे राजन्, तुम राज्यका आधा भाग नहीं चाहते, तो युद्धके प्रांगणमें आती हुई तीरोंकी कतारकी प्रतीक्षा करो" ॥१-१०॥

[१४] लक्ष्मणके वचनोंसे क्रुद्ध होकर जिसके अधर विस्फुरित हो रहे हैं ऐसा वह सिंहोदर राजा, 'मर-मर, मारो-मारो' कहता हुआ, हाथमें तलवार लेकर उठा। भरत तबतक विश्वस्त बैठे, दूतको दूतत्व दिखा दो, उसकी नाक काटकर सिर मुड़वा दो, हाथ काट लो, धूल लगाकर निकाल दो,

तं णिसुणेवि समुट्ठिय णरवर । गलगज्जन्त णाइँ णव जलहर ॥५॥
'हणु हणु हणु' भणन्त बहु-मच्छर । णं कलि-काल-कियन्त-सणिच्छर ॥६॥
णं णिय-समय-मुक्क रयणायर । णं उम्मेट्ठ पधाइय कुञ्जर ॥७॥
करेँ करवालु को वि आयामइ । ओढणु को वि णवरङ्गेँ णावइ ॥८॥
को वि भयङ्करु घाउ पदावइ । सामिहेँ भिच्चत्तणु दरिसावइ ॥९॥

घत्ता

एव णरिन्देँहिँ फुरियाहर-भिउडि-करालेँहिँ ।
वेढिउ लक्खणु पञ्चाणणु जेम सियालेँहिँ ॥१०॥

[१५]

सूरु व जलहरेँहिँ जं वेढिओ कुमारो ।
उट्ठिउ घर दलन्तु दुव्वार-वइरि-वारो ॥१॥
रोक्कइ वलइ धाइ रिउ रुम्भइ । णं केसरि-किसोरु पवियम्भइ ॥२॥
णं सुरवर-गइन्दु मय-विब्भलु । सिर-कमलइँ तोडन्तु महा-बलु ॥३॥
दरमलन्तु मणि-मउड णरिन्दहुँ । सीहु पढुक्किउ जेम गइन्दहुँ ॥४॥
को वि सुसुमूरिउ चूरिउ पाएँहिँ । को वि णिसुम्भिउ टक्कर-घाएँहिँ ॥५॥
को वि करग्गेँहिँ गयणेँ भमाडिउ । को वि रसन्तु महीयलेँ पाडिउ ॥६॥
को वि णुज्झञ्चिउ मेस-झडक्कएँ । को वि कड्डुवाविउ हक्क-दडक्कएँ ॥७॥
गयवर-लग्गण-खम्भुप्पाडेँवि । गयण-मग्गेँ पुणु भुअहिँ भमाडेँवि ॥८॥
णाइँ कमेण दण्डु पम्मुक्कउ । वइरिहिँ णं खय-कालु पढुक्कउ ॥९॥

घत्ता

आलण-खम्भेँण आमम्भेँ पुहइ भमाडिय ।
तेण पडन्तेण दस सहस णरिन्दहुँ पाडिय ॥१०॥

गधेपर चढ़ाकर नगरमें घुमाओ।" यह सुनकर नरश्रेष्ठ गरजते हुए इस प्रकार उठे, जैसे नवजलधर हों। बहुत ईर्ष्यासे भरे हुए और मारो-मारो कहते हुए जैसे वे कलिकाल, यम और शनिश्चर हों, मानो अपनी मर्यादासे चूका हुआ समुद्र हो, मानो महावत-से रहित महागज दौड़ा हो। कोई अपने हाथमें तलवार निकालता है, कोई भयंकर गदाशनि घुमाता है, कोई भयंकर धनुष चढ़ाता है, और अपने स्वामीकी वफादारी बताता है। जो फड़कते हुए अधरों और भौंहोंसे भयंकर हैं ऐसे राजाओंने लक्ष्मणको उसी प्रकार घेर लिया जिस प्रकार सियारोंके द्वारा सिंह घेर लिया गया हो ॥१-१०॥

[१५] या मेघोंके द्वारा सूर्य घेर लिया गया हो। तब दुर्वार शत्रुओंपर आक्रमण करनेवाला वह (लक्ष्मण) धरतीको रौंदता हुआ उठा। वह रुकता है, मुड़ता है, दौड़ता है, शत्रुको अवरुद्ध करता है, जैसे किशोरसिंह उछल रहा हो, मानो मदसे विह्वल ऐरावत हो। वह महाबली सिरकमलोंको तोड़ता हुआ मणि मुकुटोंको दलित करता हुआ राजाओंके ऊपर उसी प्रकार पहुँचा जिस प्रकार गजराजोंके ऊपर सिंह पहुँचता है। किसीको कुचलकर उसने पैरोंसे चूर-चूर कर दिया, किसीको टक्करोंके आघातसे नष्ट कर दिया। किसीको हाथसे आकाशमें उछाल दिया, चिल्लाते हुए किसीको धरतीपर गिरा दिया। किसीसे मेषकी झड़पसे भिड़ गया, कोई हुंकार और चपेटसे खिन्न हो गया? हाथियोंके बाँधनेके खम्भेको उखाड़कर और फिर बाहुओंके द्वारा घुमाकर इस प्रकार छोड़ दिया जैसे यम अपना दण्ड छोड़ दिया हो, मानो शत्रुओंके लिए क्षयकाल आ गया हो। आलान-स्तम्भको घुमाते हुए उसने धरतीको घुमा दिया। गिरते हुए उस खम्भेने साथ दस हजार राजाओंको धराशायी कर दिया ॥१-१०॥

[१६]

जं पडिवक्खु सयलु णिद्दलिउ लक्खणेणं ।
गयवरें पइसन्तेण महिउ तक्खणेणं ॥१॥

अहिमुहु सीहोयरु संचलिउ । पलय-समुद्दु णाइँ उत्थल्लिउ ॥२॥
सेण्णावत्त णिसुम्भ गअन्तउ । पहरण-तोय-तुसार-मुअन्तउ ॥३॥
तुङ्ग-तुरङ्ग-तरङ्ग-समाउलु । मत्त-महागय-घड-वेलाउलु ॥४॥
उब्भिय-धवल-छत्त-फेणुज्जलु । धय-कल्लोल-चलन्त-महाबलु ॥५॥
रिउ-समुद्दु जं दिट्ठु भयङ्करु । लक्खणु ढुक्कु णाइँ गिरि मन्दरु ॥६॥
चलइ वलइ परिभमइ सु-पच्चलु । णाइँ विलासिणि-मणु चलु चञ्चलु ॥७॥
गेण्हँवि पहरु णरिन्दु णरिन्दें । तुरएं तुरउ गइन्दु गइन्दें ॥८॥
रहिएं रहिउ रहङ्गु रहङ्गें । छत्तें छत्तु धयग्गु धयग्गें ॥९॥

घत्ता

जउ जउ लक्खणु परिसक्कइ भिउडि-भयङ्करु ।
तउ तउ दीसइ महि-मण्डलु रुण्ड-णिरन्तरु ॥१०॥

[१७]

जं रिउ-उवहि महिउ सोमित्ति-मन्दरेणं ।
सीहोयरु पधाइओ समउ कुञ्जरेणं ॥१॥

अब्भिट्टु जुज्झु विण्णि वि जणाहँ । उज्जेणि-णराहिव-लक्खणाहँ ॥२॥
दुव्वार-वइरि-गेण्हण-मणाहँ । उग्गामिय-भामिय-पहरणाहँ ॥३॥
मयमत्त-गइन्दु दारणाहँ । पडिवक्ख-पक्ख-संघारणाहँ ॥४॥
सुरवहुअ-सत्थ-तोसावणाहँ । सीहोयर-लक्खण-णरवराहँ ॥५॥
। भुअ-दण्ड-चण्ड-हरिसिय-मणाहँ ॥६॥
एत्थन्तरें सीहोयर-धरेण । दूरें पेल्लिउ लक्खणु गयवरेण ॥७॥
रहसुब्भडु पुलय-विसट्ट-देहु । णं सुक्कें कीलिउ स-जलु मेहु ॥८॥
तें लेवि भुअग्गें थरहरन्त । उप्पाडिय दन्तिहें बे वि दन्त ॥९॥
कड्ढाविउ मयगलु मणेंण तट्टु । चिचरमुहु पाण लएवि णट्ठु ॥१०॥

[१६] जब लक्ष्मणने समस्त प्रतिपक्षको नष्ट कर दिया तो, सिंहोदर पट्ट बन्धन नामक गजवरपर चढ़ गया, वह इस प्रकार सम्मुख चला, जैसे प्रलय समुद्र ही उछल पड़ा हो, सेना-रूपी आवर्तसे युक्त नित्य गर्जन करता हुआ; प्रहरणरूपी जलके कण छोड़ता हुआ, ऊँचे घोड़ोंरूपी लहरोंसे व्याप्त, मतवाले महागजोंके घण्टारूपी तटसे संकुल, उठे हुए धवल छत्रोंके फेनसे उज्ज्वल, ध्वजरूपी लहरोंका महाजल जिसमें चल रहा है ऐसे भयंकर महासमुद्रको जब लक्ष्मणने आते हुए देखा तो वह मन्दराचल पर्वतकी तरह वहाँ पहुँच गया। अत्यन्त दृढ़ वह चलता है, मुड़ता है और इस प्रकार घूम जाता है, जैसे चंचल और चल विलासिनी गण हो। पकड़नेके लिए राजासे राजा, घोड़ोंसे घोड़ा, गजेन्द्रसे गजेन्द्र, रथिकसे रथिक, चक्रसे चक्र, छत्रसे छत्र और ध्वजाग्रसे ध्वजाग्र आहत कर दिया गया। भौंहोंसे भयंकर लक्ष्मण जहाँ-जहाँ जाता है, वहाँ-वहाँ धरतीमण्डल धड़ोंसे अवच्छिन्न दिखाई देता है ॥१-१०॥

[१७] जब लक्ष्मणरूपी मन्दराचलके द्वारा शत्रुरूपी समुद्र मथ दिया गया तो सिंहोदर अपने हाथीके साथ दौड़ा और लक्ष्मणसे भिड़ गया। जिनका मन दुर्वार शत्रुको पकड़नेका है, जो प्रहरणोंको निकालकर घुमा रहे हैं, जो मतवाले गजोंको उखाड़नेवाले हैं, प्रतिपक्ष और पक्षका संहार करनेवाले हैं, सुरवर-वधुओंको सन्तुष्ट करनेवाले हैं, जो अपने भुजदण्डोंसे प्रचण्ड और हर्षित मन हैं, ऐसे लक्ष्मण और सिंहोदर राजाओं-का युद्ध होने लगा। इसी बीच सिंहोदरको धारण करनेवाले गजवरने हर्षसे उत्कट और पुलकसे विशिष्ट शरीर लक्ष्मणके ऊपर इस प्रकार आघात किया; मानो शुक्रने सजल मेघसे क्रीड़ा की हो। उसने अपने हाथसे पकड़कर हाथीके थर्राते हुए दोनों दाँत उखाड़ लिये। अपने मनमें त्रस्त वह महागज

घत्ता

ताम कुमारेँण विज्जाहर-करणु करेप्पिणु ।
धरिउ णराहिउ गय-मत्थएँ पाउ थवेप्पिणु ॥११॥

[१८]

णरवइ जीव-गाहि जं धरिउ लक्खणेणं ।
केण वि वज्जयण्णहो कहिउ तक्खणेणं ॥१॥

हे णरणाह-णाह अच्छरियउ । पर-बलु पेक्खु केम जज्जरियउ ॥२॥
हणइ णिरन्तरु सोणिय-चच्चिउ । णाणाविह-चिन्ध-परियञ्चिउ ॥३॥
को वि पयण्ड-वीरु बलवन्तउ । भमइ कियन्तु व रिउ-जगडन्तउ ॥४॥
गय-घड भड-थड सुहड वहन्तउ । करि-सिर-कमल-सण्ड तोडन्तउ ॥५॥
रोक्कइ कोक्कइ ढुक्कइ थक्कइ । णं खय-कालु समरेँ परिसक्कइ ॥६॥
भिउडि-भयङ्करु कुइउ समच्छरु । थिउ अवलोयणेँ णाइँ सणिच्छरु ॥७॥
णउ जाणहुँ किं णरु किं गन्धव्वु । किं पच्छण्णु को वि सउ वम्महु ॥८॥
किण्णरु किं गरुलु विज्जाहरु । किं वम्माणु माणु हरि हलहरु ॥९॥
तेण महाहवेँ माण-मइन्दहँ । विणिवाइय दस सहस णरिन्दहँ ॥१०॥
अण्णु वि ढुक्कउ मच्छर-भरियउ । जीव-गाहि सीहोयरु धरियउ ॥११॥

घत्ता

एवँ होन्तेँण मल्लु सयलु वि आहिन्दोलिउ ।
मन्दर-वीढेँण णं सायर-सलिलु विरोलिउ ॥१२॥

[१९]

तं णिसुणेवि को वि परितोसिओ मणेणं ।
को वि णिएहुँ लग्गु उव्वेण जम्पणेणं ॥१॥

को वि पजम्पिउ मच्छर-भरियउ । 'चङ्गउ जं सीहोयरु धरियउ ॥२॥
जो मारेवउ महरि स-हत्थेँ । सो परिवद्धु णाउ पर-हत्थेँ ॥३॥
बन्धव-सयणहिँ परिमिउ भज्जु । वज्जयण्णु अणुहुञ्जउ रज्जु' ॥४॥

खिन्न हो गया और पोपले मुखवाला वह अपने प्राण लेकर भागा। तबतक कुमारने विद्याधर करण रचकर, हाथीके सिर-पर पैर रखकर राजा सिंहोदरको पकड़ लिया ॥१-११॥

[१८] जीवके लिए ग्राहके समान राजाको जब लक्ष्मणने पकड़ लिया तो किसीने तत्काल जाकर वज्रकर्णसे कहा—"हे राजाओंके राजा, आश्चर्य है। देखिए शत्रुपक्ष किस प्रकार क्षतविक्षत हो गया है? यह धड़ोंसे अवच्छिन्न है, रक्तसे शोभित और नाना प्रकारके पक्षियोंसे घिरा हुआ है। कोई बलवान् प्रचण्डवीर शत्रुसे झगड़ता हुआ यमकी तरह घूम रहा है। गजघटा, भटघटा और सुभटोंको चलाता हुआ, हाथियोंके सिरकमलोंके समूहको तोड़ता हुआ वह रुकता है, पुकारता है, पहुँचता है और ठहर जाता है, मानो युद्धमें क्षय-काल मँडरा रहा हो। भृकुटियोंसे भयंकर, कठोर ईर्ष्यासे भरा हुआ वह इस प्रकार स्थित हो गया, जैसे शनि हो। हम नहीं जानते कि वह गण (देव) है या गन्धर्व है या क्या कोई तुम्हारा छिपा हुआ मित्र या बन्धु है। क्या किन्नर, मारुत या विद्याधर है? क्या ब्रह्मा है? सूर्य है या वासुदेव या बलदेव है? उसने महायुद्धमें दस हजार मानमें सिंहराजनरेन्द्रको भी धराशायी कर दिया। और भी मत्सरसे भरे हुए उसने जीव-ग्राही सिंहोदरको पकड़ लिया।" अकेले होते हुए उसने समूची सेनाको आन्दोलित कर दिया है। मानो मन्दराचलकी पीठने समुद्रके जलको विलोड़ित कर दिया हो ॥१-१२॥

[१९] यह सुनकर, कोई अपने मनमें सन्तुष्ट हो गया। उठे हुए जंपानसे कोई उसे देखने लगा। कोई मत्सरसे भरकर बोला कि अच्छा हुआ जो सिंहोदर पकड़ा गया। जिसने अपने हाथसे दूसरोंको मारा था वह पापी दूसरेके हाथसे मारा गया। हे वज्रकर्ण, तुम राज्यका अनुभोग करो।

को वि विरुद्धउ पुणु पुणु णिन्दइ । 'धम्मु मुएवि पाउ किं वन्दइ' ॥५॥
को वि भणइ 'जं मग्गिउ भोयणु । दीसइ सो व्वें णाइँ एहु बम्भणु' ॥६॥
ताम कुमारें रिउ उक्खन्धें वि । थोरु व राउलेण णिउ बन्धेंवि ॥७॥
सालङ्कारु स-दोरु स-णेउरु । दुम्मणु दीण-वयणु अन्तेउरु ॥८॥
धाइउ अंसु-जलोल्लिय-णयणउ । हिम-हय-कमलवणु व कोमाणउ ॥९॥

घत्ता

केस-विसण्ठुलु मुह-कायरु करुणु रुअन्तउ ।
थिउ चउपासेंहिँ भत्तार-भिक्ख मग्गन्तउ ॥१०॥

[२०]

ताम भएण सङ्किया राहवस्स घरिणी ।
णं भय-भीय काणणे तुण्णुयपण हरिणी ॥१॥
'पेक्खु पेक्खु बलु बलु आवन्तउ । सायर-सलिलु जेम गज्जन्तउ ॥२॥
लइ धणुहरु म अच्छि णिच्चिन्तउ । सण्णहु लक्खणु रणेँ अत्थन्तउ' ॥३॥
तं णिसुणेंवि णिव्वूढ-महाहवु । जाम चाउ किर गिण्हइ राहवु ॥४॥
ताम कुमारु दिट्ठु सइँ णारिहिँ । परिमिउ हत्थि जेम गणियारिहिँ ॥५॥
तं पेक्खेंविणु सुहड-णिसामें । सीय सीय मम्भीसिय रामें ॥६॥
'पेक्खु केम सोहियरु बद्धउ । सीहेण व सियालु उट्टद्धउ' ॥७॥
एव बोल्ल किर वट्टइ जावेंहिँ । लक्खणु पासु पराइउ तावेंहिँ ॥८॥
चलणेंहिँ पडिउ विसाविउ-मत्थउ । भविउ व जिणहों कियञ्जलि-हत्थउ ॥९॥

घत्ता

'साहु' भणन्तेंण सुरभवण-विणिग्गय-णामें ।
सइँ भुअ-फलिहेंहिँ अवरुण्डिउ लक्खणु रामें ॥१०॥

●

कोई विरुद्ध होकर बार-बार निन्दा करता है कि धर्मको छोड़कर वह पापी किस प्रकार आनन्द मनाता है। कोई कहता है कि जिसने भोजन माँगा था, यह उसी ब्राह्मणके समान दिखाई देता है। तब कुमार शत्रुको अपने कन्धेपर चढ़ाकर उसी प्रकार ले गया जिस प्रकार राजकुलके द्वारा चोर ले जाया गया हो। अलंकारोंसे सहित, डोर और नूपुरोंसे सहित, दुर्मन, वचन और आँसुओंसे आर्द्रनयन अन्तःपुर दौड़ा। वह हिमसे आहत कमलवनके समान था। अस्त-व्यस्त केशराशि, मुखसे कातर और एकदम करुण विलाप करता हुआ, अपने पतिकी भीख माँगता हुआ, उसके चारों पास स्थित हो गया ॥१–१०॥

[२०] तब रामकी पत्नी अपने मनमें शंकित हो उठी। मानो भयभीत काननमें अत्यन्त उदास और खिन्न हरिणी हो। "देखो-देखो राम, आती हुई सेनाको समुद्र जलकी तरह गरजती हुई। धनुष हाथमें ले लो, निश्चिन्त मत बैठे रहो। शायद युद्धमें लक्ष्मणका अन्त हो गया है।" यह सुनकर महायुद्धका निर्वाह करनेवाले राम जबतक धनुष अपने हाथमें लेते हैं, तबतक कुमार नारियोंसे घिरा हुआ उसी प्रकार दिखाई दिया, जिस प्रकार हथिनियोंसे घिरा हुआ हाथी हो। शत्रुओंका नाश करनेवाले रामने उसे देखकर सीतादेवीको अभय वचन दिया कि "देखो सिंहोदर किस प्रकार बाँध लिया गया है जैसे सिंहके द्वारा सियार उठा लिया गया हो।" जब तक (उन दोनोंमें) इस प्रकार बातचीत हो रही थी कि तबतक लक्ष्मण पास आया। विकट मस्तक वह चरणोंमें पड़ गया, उसी प्रकार, जिस प्रकार भक्त हाथ जोड़कर जिनवरके चरणोंमें पड़ जाता है। देव-भवनोंमें जिनका नाम प्रसिद्ध है ऐसे रामने 'साधु' कहकर लक्ष्मणको अपने बाहुफलकोंसे आबद्ध कर लिया ॥१–१०॥

●

छव्वीसमो संधि

लक्खण-रामहुँ धवलुज्जल-कसण-सरीरहुँ ।
एक्कहिँ मिलियइँ णं गङ्ग-जउणहुँ णीरइँ ॥

[१]

अवरोप्परु गओल्लिय-गत्तेंहिँ । सरहसु साइउ देवि सुरत्तेंहिँ ॥१॥
सीहोयरु णमन्तु वइसारिउ । लक्खणेँ वज्जयण्णु हक्कारिउ ॥२॥
सहुँ णरवर-जणेण णीसरियउ । णाइँ पुरन्दरु सुर-परियरियउ ॥३॥
रेहइ विज्जुलङ्गु अणुपच्छऍ । पडिचा-इन्दु व सूरहों पच्छऍ ॥४॥
तं हल्लोल-धूलि-धुअ-धवलउ । सहसक्कूडु गय पत्त जिणालउ ॥५॥
चउदिसु पयक्खिण देवि तिवारऍ । पुणु अहिवन्दण करइ भडारऍ ॥६॥
तं पियवयण-मुणि पणवेप्पिणु । बलहों पासें थिउ कुसलु भणेप्पिणु ॥७॥
दसउर-पुर-परमेसरु रामें । साहुक्कारिउ सुहड–णिसामें ॥८॥

घत्ता

'सच्चउ णरवइ मिच्छत्त-सरेंहिँ णउ भिज्जहि ।
दिढ-सम्मत्तेंण पर तुज्झु जें तुहुँ उवमिज्जहि ॥९॥

[२]

तं णिसुणेवि पयम्पिउ राऍं । 'एउ सव्वु सहु तुम्ह पसाऍं' ॥१॥
पुणु वि तिलोय-विणिग्गय-णामें । विज्जुलङ्गु पोमाइउ रामें ॥२॥
'भो दिढ-कढिण-वियड-वच्छत्थल । साहु साहु साहम्मिय-वच्छल ॥३॥
सुन्दरु किउ जं णरवइ रक्खिउ । रणें अच्छन्तु ण पइँ उव्वेक्खिउ' ॥४॥
तो एत्थन्तरें वुत्तु कुमारें । 'जम्पिएण किं बहु-वित्थारें ॥५॥
हे दसउर-णरिन्द विसयाइ-सुअ । जिणवर-चलण-कमल-कुल्लन्धुअ ॥६॥
जो खलु खुद्दु पिसुणु मच्छरियउ । अच्छइ एहु सीहोयरु धरियउ ॥७॥
किं मारमि किं अप्पणु मारहि । णं तो दय करि सन्धि समारहि ॥८॥

छब्बीसवीं सन्धि

लक्ष्मण और रामके धवलोज्ज्वल श्याम शरीर एकाकार हो गये, मानो गंगा और यमुनाके जल हों।

[१] पुलकित शरीरवाले उन दोनोंने एक दूसरेको सहर्ष आलिंगन देकर प्रणाम करते हुए सिंहोदरको बैठाया और तत्काल वज्रकर्णको बुलाया। नरवरोंके साथ वह इस प्रकार निकला जैसे देवोंसे घिरा हुआ इन्द्र हो। उसके पीछे विद्युदंग चोर ऐसा शोभित हो रहा था, मानो सूर्यके पीछे प्रतिपदाका चन्द्रमा हो। वे ईंटोंकी पंक्तियों और ध्वजोंसे धवल सहस्रकूट गये और जिनालयको प्राप्त हुए। चारों दिशाओंमें तीन बार प्रदक्षिणा देकर, फिर वे आदरणीयके लिए अभिवन्दना करते हैं। उन प्रियवर्द्धन मुनिको प्रणाम कर तथा कुशल पूछकर राम-के पास बैठ गया। सुभटोंका नाश करनेवाले रामने दशपुरके राजाको साधुवाद दिया। 'हे राजन्, सत्य मिथ्यात्वके तीरोंसे नष्ट नहीं होता, परन्तु दृढ़सम्यक्त्वमें तुम्हारी उपमा तुम्हींसे दी जा सकती है'॥१–९॥

[२] यह सुनकर राजा वज्रकर्ण बोला, "मेरा यह सब आपके प्रसादसे है।" फिर, जिनका नाम त्रिलोकमें विख्यात है ऐसे रामने विद्युदंगकी प्रशंसा की, 'हे दृढ़, कठोर एवं विकट वक्षस्थलवाले साधर्मी वत्सल, साधु-साधु। तुमने यह सुन्दर काम किया जो राजाकी रक्षा की। युद्धमें होते हुए भी तुमने उपेक्षा नहीं की।" तब इस बीच कुमारने कहा, "कि बहुत विस्तारसे कहनेसे क्या? हे विहगगतिके पुत्र, जिनवरके चरण-कमलोंके भ्रमर दशपुर नरेश, जो खल, क्षुद्र, पिशुन, मत्सरसे भरा हुआ यह सिंहोदर पकड़ा हुआ है, इसे क्या मैं मारूँ, तुम स्वयं क्या मारोगे? नहीं तो दया कर इससे सन्धि कर लो।

घत्ता

आण-वडिच्छउ एँहु एवहिँ भिच्चु सुहाउ ।
रिसह-जिणिन्दहों सेयंसु व पेसणयारउ' ॥९॥

[३]

पभणइ वज्जयण्णु बहु-जाणउ । 'हउँ पाइक्कु तुम्ह वि एँहु राणउ ॥१॥
णवर एक्कु वउ महँ पालेवउ । जिणु मेल्लेवि अण्णु ण णमेवउ' ॥२॥
तं णिसुणेविणु लक्खण-रामेँहिँ । सुरवर-भवण-विणिग्गय-णामेहिँ ॥३॥
दसउरपुर-उज्जेणि-पहाणा । वज्जयण्ण-सीहोयर-राणा ॥४॥
बेण्णि वि हत्थें हत्थु [illegible] । दसरहु [illegible] ॥५॥
अक्खोभन्तिऍ महि भुञ्जाविय । अण्णु वि जिणवर-धम्मु सुणाविय ॥६॥
कामिणि कामलेह कोक्काविय । विज्जुलअङ्गहों कण्णऍ लाविय ॥७॥
दिण्णइँ मणि-कुण्डलइँ फुरन्तइँ । चन्दाइच्चहुँ तेउ हरन्तइँ ॥८॥
ताम कुमारु वुत्तु विण्णाएँहिँ । वज्जयण्ण-सीहोयर-राएँहिँ ॥९॥
णव-कुवलय-दल-दीहर-णयणहुँ । मयगल-गइ-गमणहुँ ससि-वयणहुँ ॥१०॥
उच्च-णिडालालङ्किय-तिलयहुँ । बहु-सोहग्ग-भोग्ग-गुण-णिलयहुँ ॥११॥
विब्भम-भाउब्भिण्ण-सरीरहुँ । तणु-मज्झहुँ थण-हर-गम्भीरहुँ ॥१२॥

घत्ता

अहिणव-रूवहुँ लायण्ण-वण्ण-संपुण्णहुँ ।
लइ भो लक्खण वर तिण्णि सयइँ तुहुँ कण्णहुँ' ॥१३॥

[४]

तं णिसुणेप्पिणु दसरह-णन्दणु । एम पजम्पिउ हसेंवि जणद्दणु ॥१॥
'अच्छउ ति-यणु ताम बिलवन्तउ । मिसिणि-णिहाउ व रवियर-छित्तउ ॥२॥
महँ जाएवउ दाहिण-देसहों । कोङ्कण-मलय-पण्डि-उद्देसहों ॥३॥
तहिँ वलहद्दहों णिलउ गवेसमि । पच्छऍ पाणिग्गहणु करेसमि' ॥४॥
एम कुमारु पजम्पिउ जं जे । मणेँ विसण्णु कण्णायणु तं जे ॥५॥
दवदड्ढ हिमेण व णलिणि-समुच्चउ । मुहेँ-मुहेँ णाइँ दिण्णु मसि-कुच्चउ ॥६॥

इस समय यह तुम्हारा आज्ञाकी इच्छा करनेवाला उसी प्रकार भृत्य है जिस प्रकार ऋषभजिनेन्द्रका श्रेयांस आज्ञापालन करनेवाला था" ॥१-९॥

[३] बहुज्ञानी वज्रकर्ण पुनः कहता है—"मैं सेवक हूँ, यह राजा है। मैं तो केवल एक व्रतका पालन करूँगा; जिनवरको छोड़कर किसी दूसरेको नमन नहीं करूँगा।" यह सुनकर देवविमानोंमें प्रसिद्धनाम राम और लक्ष्मणने दशपुर और उज्जैनके प्रधानों वज्रकर्ण और सिंहोदर दोनों राजाओंको हाथ-पर हाथ रखकर हर्षपूर्वक गले मिलवाया। आधी-आधी धरती-का उपभोग कराया तथा जिनधर्म भी सुनाया। कामलेखा कामिनीको बुलवाया और उसे विद्युदंगके करतलमें दे दिया। चमकते हुए मणिकुण्डल दे दिये गये कि जो चन्द्रमा और सूर्यका तेज हरण करनेवाले थे। तब विख्यात वज्रकर्ण और सिंहोदर राजाओंने कुमारसे कहा—"जो नवकुवलयदलके समान लम्बे नेत्रोंवाली हैं, मदमाते हाथीकी गतिवाली और चन्द्रमुखी हैं, जिनके ऊँचे ललाटोंपर तिलक अंकित है, जो अनेक सौभाग्य, भोग और गुणोंकी घर हैं, जिनका शरीर विभ्रम भावसे परिपूर्ण है, जिनका मध्य भाग कृश है और जो स्तनोंसे गम्भीर हैं ऐसी अभिनव रूपवाली लावण्य और रंगसे परिपूर्ण हे लक्ष्मण, तीन सौ कन्याएँ ग्रहण कर लो" ॥१-१३॥

[४] यह सुनकर, दशरथके पुत्र लक्ष्मणने हँसकर यह कहा—"रविकिरणोंसे स्पृष्ट, कमलिनी समूहकी तरह, विलाप करती हुई रहें, मुझे कोंकण, मलय और पाण्ड्यदेशको उद्देश्य बनाकर दक्षिण देश जाना है। वहाँ मैं रामके लिए घरकी खोज करूँगा, बादमें (आकर) पाणिग्रहण करूँगा।" कुमारने जब इस प्रकार कहा तो इससे कन्यारत्न अपने मनमें दुःखी हो गया। जिस प्रकार हिमसे कमलिनी-समूह जल जाता है,

जाम ताम तूरेंहिँ वज्जन्तेंहिँ । विविहेंहिँ मङ्गलेहिँ गिज्जन्तेंहिँ ॥७॥
बन्दिणेंहिँ 'जय-जय' पभणन्तेंहिँ । खुज्जय-वामणेहिँ णच्चन्तेंहिँ ॥८॥
सीय स-लक्खणु बलु पइसारिउ । बीया-इन्दु व जयजयकारिउ ॥९॥
तहिँ णिवसेप्पिणु कइवयँ रयणाएँ । रयणन्ति-अवसरेँ पडिबक्खाएँ ॥१०॥

घत्ता

बल-णारायण गय दसउरु मुएँ वि महाइय ।
चेत्तहोँ मासहोँ तं कुव्वर-णयरु पराइय ॥११॥

[५]

कुव्वर-णयरु पराइय जावेंहिँ । फग्गुण-मासु पवोलिउ तावेंहिँ ॥१॥
पइठु वसन्तु-राउ आणन्दें । कोइल-कलयल-मङ्गल-सद्दें ॥२॥
अलि-मिहुणेंहिँ बन्दिणेंहिँ पढन्तेंहिँ । बरहिण-वावणेहिँ णच्चन्तेंहिँ ॥३॥
अन्दोला-सय-तोरण-वारेंहिँ । ढुक्कु वसन्तु अणेय-पयारेंहिँ ॥४॥
कत्थइ चूअ-वणइँ पल्लवियइँ । णव-किसलय-फल-फुल्लब्भहियइँ ॥५॥
कत्थइ गिरि-सिहरइँ विच्छायइँ । खल-मुहइँ व मसि-वण्णइँ जायइँ ॥६॥
कत्थइ माहव-मासहोँ मेइणि । पिय-विरहेण व सूसइ कामिणि ॥७॥
कत्थइ गिज्जइ वज्जइ मन्दलु । णर-मिहुणेहि पणच्चिउ गोन्दलु ॥८॥
तं तहोँ णयरहोँ उत्तर-पासेंहिँ । जण-मणहरु जोयण-उद्देसेंहिँ ॥९॥
दिट्ठु वसन्ततिलउ उज्जाणउ । सज्जण-हियउ जेम अ-पमाणउ ॥१०॥

घत्ता

सुहलु सुयन्धउ मोल्लन्तु पियावड-भरियउ ।
अग्गएँ रामहोँ णं थिउ कुसुमञ्जलि-हत्थउ ॥११॥

[६]

तहिँ उववणेँ पइसेँवि जिणु खेवें । पणविउ वासुएवु बलएवें ॥१॥
'भो असुरारि-वइरि-सुसुमूरण । दसरह-वंस-मणोरह-पूरण ॥२॥

वैसे ही उनके मुखपर जैसे किसीने मषिकूची फेर दी हो। तबतक बजते हुए तूर्यों, विविध मंगल गीतों, जय-जय कहते हुए वन्दीजनों, नाचते हुए कुब्जकों और वामनोंके साथ सीता और लक्ष्मण सहित रामका प्रवेश कराया गया, दूसरे इन्द्रकी तरह उनका जय जयकार किया गया। उस सुन्दर नगरमें निवास कर, आधी रातका अवसर होनेपर आदरणीय राम और लक्ष्मण दशपुर नगर छोड़कर चल दिये। तथा चैत्रमाहमें वे कूबर नगरमें पहुँचे ॥१-११॥

[५] जब वे कूबर नगर पहुँचे, तब फागुन माह आ चुका था। आनन्दसे वसन्तराजने कोयलोंके कल-कल और मंगल शब्दके साथ प्रवेश किया। पढ़ते हुए (मंगल पाठ करते हुए) अलिमिथुनों, नाचते हुए मयूररूपी वामनों, आन्दोलित सैकड़ों तोरण द्वारों तथा अनेक प्रकारोंसे वसन्त आ पहुँचा। कहींपर नव किसलय फल और फूलोंसे परिपूर्ण आम्रवन पल्लवित हो उठे, कहींपर गिरिशिखर इस प्रकार कान्तिहीन हो उठे कि दुष्टोंके मुँहकी तरह श्यामवर्ण ज्ञात होते थे। कहींपर माधव माहकी धरिणी इस प्रकार होती थी जैसे प्रियके विरहसे कामिनी सूख रही हो। कहींपर गाया जाता है, और कहींपर बजाया जाता है ? और मनुष्य युगलोंके द्वारा हर्ष ध्वनि की जाती है। उस नगरसे उत्तरकी ओर एक योजनकी दूरीपर, जनोंके लिए सुन्दर, वसंततिलक नामका उद्यान दिखाई दिया, जो सज्जनके हृदयकी तरह सीमाहीन था। सुफल सुगन्धित हिलता हुआ नतमस्तक वह मानो हाथोंमें कुसुमांजलि लेकर रामके आगे स्थित हो ॥१-११॥

[६] बिना किसी विलम्बके उस उपवनमें प्रवेशकर रामने लक्ष्मणसे कहा—"हे असुरारि (काम) रूपी शत्रुको चूर चूर करनेवाले तथा दशरथ कुलके मनोरथोंको पूरा करने-

लक्खण कहि मि गवेसहि तं जलु । सज्जण-हियउ जेम जं णिम्मलु ॥३॥
दूरागमणें सीय तिसाइय । हिम-हय-णव-णलिणि व विच्छाइय ॥४॥
तं णिसुणेंवि चवल-दुम-सोवाणेंहिं । चडिउ महारिसि व्व गुणथाणेंहिं ॥५॥
ताव महासरु दिट्ठु रवण्णउ । णाणाविह-तरुवर-संछण्णउ ॥६॥
सारस-हंस-कुञ्च-बग-चुम्बिउ । णव-कुवलय-दल-कमल-करम्बिउ ॥७॥
तं पेक्खेवि कुमारु पधाइउ । णिविसें तं सर-तीरु पराइउ ॥८॥

घत्ता

पइट्ठु महाबलु जणें कमल-सण्डु तोडन्तउ ।
माणस-सरवरें णं गइन्दु कीलन्तउ ॥९॥

[७]

लक्खणु जलु आरोहइ जावेंहिं । कुब्बर-णयर-णराहिउ तावेंहिं ॥१॥
सुट्ठु सुट्ठु वण-कीलएं णीसरियउ । मयण-दिवसें णरवर-परियरियउ ॥२॥
तरुवरें तरुवरें मञ्चु णिबद्धउ । मञ्चें मञ्चें थिउ जणु सण्णद्धउ ॥३॥
मञ्चें मञ्चें आरूढ णरेसर । मेरु-णियम्बें णाइँ विज्जाहर ॥४॥
मञ्चें मञ्चें आलावणि वज्जइ । महु पिज्जइ हिन्दोलउ गिज्जइ ॥५॥
मञ्चें मञ्चें जणु रसय-विहत्थउ । घुम्मइ घुलइ विसायल-सत्थउ ॥६॥
मञ्चें मञ्चें कीलन्ति सु-मिहुणइँ । णव-मिहुणइँ कहिँ णेह-विहूणइँ ॥७॥
मञ्चें मञ्चें अन्दोलइ जणवउ । कोइलु वासइ भज्जइ दमणउ ॥८॥

घत्ता

कुब्बर-णाहेंण किउ मञ्चारोहणु जावेंहिं ।
सूरु व चन्देंण लक्खिज्जइ लक्खणु तावेंहिं ॥९॥

[८]

लक्खिउ लक्खणु लक्खण-भरियउ । णं पच्चक्खु मयणु अवयरियउ ॥१॥
रूउ णिएँवि सुर-भवणाणन्दहों । मणु उल्लोवेंहिं जाइ णरिन्दहों ॥२॥

वाले लक्ष्मण, तुम कहीं भी पानीकी खोज करो, कि जो सज्जनके हृदयकी तरह निर्मल हो। दूर तक चलनेके कारण सीता प्याससे पीड़ित है, और हिमसे आहत नवकमलिनीकी तरह कान्तिहीन हो गयी है।" यह सुनकर वह वटवृक्षकी सीढ़ियोंसे उसी प्रकार चढ़ गया जिस प्रकार महामुनि गुणस्थानोंके द्वारा चढ़ जाते हैं। वहाँ उसने नाना प्रकारके वृक्षोंमें आच्छादित सुन्दर महासरोवर देखा, जो सारस, हंस, क्रौंच और बगुलोंसे चुम्बित था, तथा नवकुवलयदल और कमलोंसे अंकित था। उसे देखकर कुमार दौड़ा और एक पलमें उस सरोवरके तीरपर पहुँच गया। वह महाबली कमलसमूह तोड़ता हुआ जलमें घुसा, मानो मानसरोवरमें महागज क्रीड़ा कर रहा हो ॥१-९॥

[७] जिस समय लक्ष्मण जलको आलोड़ित करते हैं तब-तक कूबर नगरका राजा शीघ्र वनक्रीड़ाके लिए निकला— कामदेव (वसन्तपंचमी) के दिन नरश्रेष्ठोंसे घिरा हुआ। वृक्ष-वृक्षपर मंच बाँध दिये गये। मंच-मंचपर एक-एक व्यक्ति उपलब्ध कर दिया गया। मंच-मंचपर नरेश्वर आरूढ़ हो गये, जैसे सुमेरु पर्वतके कटिबन्ध विद्याधर स्थित हों। मंच-मंचपर आलापिनी बज रही है, मधु पिया जाता है, हिंदोल राग गाया जाता है, मंच-मंचपर लोग हाथमें प्याला (चसक) लिये थे, मंच-मंचपर मिथुन क्रीड़ा कर रहे थे। कहींपर नवमिथुन (नवदम्पति) कहीं स्नेहसे हीन होते हैं? मंच-मंचपर जनपद आन्दोलित था। जैसे ही कूबरनाथने मंचपर आरोहण किया, वैसे ही उसने लक्ष्मणको उसी प्रकार देखा, जिस प्रकार चन्द्रमाके द्वारा सूर्य देखा जाता है ॥१-९॥

[८] लक्षणोंसे भरे लक्ष्मणको उसने इस प्रकार देखा मानो साक्षात् कामदेव अवतरित हुआ हो। देवभवनको

मयण-सरासणि धरेँ वि ण सक्किउ । वम्महु दस-थाणेहिँ पढुक्किउ ॥३॥
पहिलएँ कहीँ वि समाणु ण बोल्लइ । बीयएँ गुरु णीसासु पमेल्लइ ॥४॥
तइयएँ सयलु अङ्गु परितप्पइ । चउथएँ णं करवत्तेँहिँ कप्पइ ॥५॥
पञ्चमेँ पुणु पुणु पासेइज्जइ । छट्ठएँ वारवार मुच्छिज्जइ ॥६॥
सत्तमेँ जलु वि जलइ ण भावइ । अट्ठमेँ मरण-लील दरिसावइ ॥७॥
णवमएँ पाण पडन्त ण वेयइ । दसमएँ सिरु छिज्जन्तु ण चेयइ ॥८॥

घत्ता

एम वियम्भिउ कुसुमाउहु दसहि मि थाणेँहिँ ।
तं अच्छरियउ जं मुक्कु कुमारु ण पाणेँहिँ ॥९॥

[९]

जं कण्ठ-ट्ठिउ जीउ कुमारहोँ । सयणएँ वुत्तु 'पढिउ हक्कारहोँ' ॥१॥
पहु आणएँ पाइक्क पधाइय । णिमिसद्धेँ तहोँ पासु पराइय ॥२॥
पणवेँवि वुत्तु ति-खण्ड-पहाणउ । 'तुम्हहँ काइँ मि कोक्कइ राणउ' ॥३॥
तं णिसुणेँवि उच्चलिउ जणद्दणु । तिहुअण-जण-मण-णयणाणन्दणु ॥४॥
थियप पओहि देन्तु णं केसरि । कम्पइ भारक्कन्त वसुन्धरि ॥५॥
दिट्ठु कुमारु कुमारेँ एन्तउ । मयणु जेम जण-मण-मोहन्तउ ॥६॥
खणेँ कल्लाणमालु रोमञ्चिउ । पाउ जिह हरिस-विसाएँहिँ णच्चिउ ॥७॥
पुणु बइसारिउ हरि अद्धासणेँ । भविउ जेम थिउ दिढु जिण सासणेँ ॥८॥

आनन्द देनेवाले उसका रूप देखकर राजाका मन हलचलोंसे युक्त हो गया। वह कामके धनुषको धारण नहीं कर सका। कामदेव दस स्थानों (दसों अवस्थाओं) से आ पहुँचा। पहली अवस्थामें वह किसी समान व्यक्तिसे बात नहीं करता, दूसरीमें लम्बे निःश्वास छोड़ने लगता है, तीसरीमें सारे अंग सन्तप्त हो उठते हैं, चौथीमें जैसे करपत्रसे काटा जा रहा हो, पाँचवींमें बार-बार पसीना आने लगता है, छठीमें बार-बार मूर्च्छा आने लगती है, सातवींमें जल या जलसे गीला कपड़ा अच्छा नहीं लगता, आठवींमें वह मृत्युलीला दिखाता है; नौवींमें आते हुए प्राणोंको नहीं जानती; दसवींमें फटते हुए सिरको नहीं जानती। कामदेव इस प्रकार दसों अवस्थाओंसे बढ़ गया। आश्चर्य यही था कि जो कुमारको प्राणोंने नहीं छोड़ा ॥१–९॥

[९] जब कुमारके प्राण कण्ठस्थित रह गये, तो संज्ञा (चेतना) आनेपर कुमारने कहा—"पथिकको बुलाओ।" प्रभुकी आज्ञासे पथिक दौड़े और आधे पलमें उसके पास पहुँच गये। तीन खण्डकी धरतीके स्वामी उससे कहा, "तुम्हें राणा किसी कारण बुला रहे हैं"। यह सुनकर त्रिभुवनके जनोंके मन और नेत्रोंको आनन्द देनेवाला लक्ष्मण इस तरह चल पड़ा, मानो विकट पदसमूह रखता हुआ सिंह हो। भारसे आक्रान्त धरती काँप उठती है। कुमारने कुमारको आते हुए देखा, कामदेवके समान जनमनको मोहित करते हुए। एक क्षणमें कल्याणमाला रोमांचित हो उठी, नटकी तरह वह हर्ष-विषादसे नाच उठी। फिर लक्ष्मणको उसने आधे आसनपर बैठाया जैसे भव्य जीव जिनशासनमें दृढ़तासे स्थित हो। विशेष सुन्दर मंचपर जनार्दन बैठ गया जैसे प्रच्छन्न नव वरण करनेवालेके समान कन्याके साथ मिल गया ॥१–९॥

घत्ता

बइट्ठु जणद्दणु आलीढएँ मञ्चेँ रवण्णएँ ।
णव-वरइत्तु स-पच्छण्णु मिलिउ सइँ कण्णाएँ ॥९॥

[१०]

बे वि वइट्ठ वीर एक्कासणेँ । चन्दाइच्च जेम गयणङ्गणेँ ॥१॥
एक्कु रवण्णउ तिखण्ड-पहाणउ । अण्णेक्कु वि कुब्बर-पुर-राणउ ॥२॥
एक्कहोँ चलण-जुअलु कुम्मुण्णउ । अण्णेक्कहोँ रत्तुप्पल-वण्णउ ॥३॥
एक्कहोँ ऊरु (?)-जुअलु सु-वित्थरु । अण्णेक्कहोँ कुडुमोरु सु-मच्छरु ॥४॥
पवणागम-कडि-मण्डलु एक्कहोँ । णारि-णियम्ब-बिम्बु अण्णेक्कहोँ ॥५॥
एक्कहोँ सुकलिउ सुन्दरु मज्झउ । अण्णेक्कहोँ तणु-तिवलि-तरङ्गउ ॥६॥
एक्कहोँ सोहइ वियडु उरत्थलु । अण्णेक्कहोँ जोव्वणु थण-चक्कलु ॥७॥
एक्कहोँ बाहउ दीह-विसालउ । अण्णेक्कहोँ णं मालइ-मालउ ॥८॥
वयण-कमलु पप्फुल्लिउ एक्कहोँ । पुण्णिम-चन्द-इन्दु अण्णेक्कहोँ ॥९॥
एक्कहोँ गो-कमलइँ वित्थरियइँ । अण्णेक्कहोँ बहु-विब्भम-भरियइँ ॥१०॥
एक्कहोँ सिरु वर-कुसुमेँहिँ वासिउ । अण्णेक्कहोँ वर-मउड-विहूसिउ ॥११॥

घत्ता

एक्कु स-लक्खणु लक्खिज्जइ जणेँण असेसेँ ।
अण्णेक्कु वि पुणु पच्छण्ण णारि णर-वेसेँ ॥१२॥

[११]

तणु-दुग्गाइँ-गाह-अवगाहेँ । पुणु पुणरुत्तेंहिँ कुब्बर-णाहेँ ॥१॥
णयण-कडक्खिउ लक्खण-सरवरु । जो सुर-सुन्दरि-णलिणि-सुहङ्करु ॥२॥
जो कत्थूरिय-पङ्कुप्पङ्किउ । जो अरि-करिहिँ ण केहिँ वि सङ्किउ ॥३॥
जो सुर-सउण-सहासेँहिँ मण्डिउ । जो कामिणि-थण-चक्केँहिँ चड्डिउ ॥४॥
तहिँ तेहएँ सरेँ सेय-जलोल्लिउ । लक्खण-वयण-कमलु पप्फुल्लिउ ॥५॥
कण्ठ-मणोहर-दीहर-णालउ । वर-रोमञ्च-कम्बु-कण्टालउ ॥६॥

[१०] दोनों वीर एक ही आसनपर बैठ गये—वैसे ही जैसे सूर्य और चन्द्र आकाशके आँगनमें। एक प्रचण्ड तीन खण्ड धरतीका राजा था, दूसरा कूबर नगरका राजा था। एकके चरणकमल कछुएकी तरह उन्नत थे, दूसरेके चरणकमल रक्तकमलकी तरह थे। एकके दोनों ऊरु विस्तृत थे, दूसरेके नवनीतकी तरह सुकुमार थे। एकका सिंहकी तरह कटिमण्डल था, जबकि दूसरेका नारीनितम्बके समान था। एकका शरीर सुन्दर और सुललित था, जबकि दूसरेका शरीर त्रिवलीरूपी लहरोंसे (रेखाओंसे) युक्त था। एकका विकट वक्षःस्थल शोभित था, जबकि दूसरेका स्तनचक्रोंसे युक्त यौवन था। एक की बाँहें लम्बी और विशाल थीं, जब कि दूसरेकी मानो मालतीकी मालाएँ थीं। एकका मुखरूपी कमल खिला हुआ था, जबकि दूसरेका पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान सुन्दर था। एकके नेत्रकमल बिखरे हुए थे, जबकि दूसरेके अनेक विभ्रमोंसे भरे हुए थे। एकका सिर श्रेष्ठ कुसुमोंसे सुवासित था, जबकि दूसरेका सिर श्रेष्ठ मुकुटसे विभूषित था। एक लक्षणों सहित, अशेष जनके द्वारा लक्षित किया गया, जबकि दूसरा पुरुषरूपमें प्रच्छन्न स्त्री था ॥१–१२॥

[११] दानवरूपी दुष्टग्रहके ग्रह अर्थात् लक्ष्मणका अवगाहन करनेवाले कूबरनरेशने लक्ष्मणरूपी सरोवरको तिरछे नेत्रोंसे देखा कि जो देवस्त्रियोंरूपी कमलिनियोंके लिए अत्यन्त सुन्दर था। जो कस्तूरीरूपी कीचड़से पंकिल था, जो शत्रुरूपी गजोंके द्वारा बिलोड़ित नहीं किया जा सकता था। जो देवरूपी हजारों पक्षियोंसे मण्डित था, जो कामिनियोंके स्तनरूपी चक्र (चक्रवाकों) से चढ़ा हुआ था। वहाँ उस सरोवरमें स्वेदरूपी जलसे आर्द्र लक्ष्मणका मुखरूपी कमल खिला हुआ था; जो कण्ठरूपी सुन्दर मृणालवाला था, उत्तम

दसण-सकेसरु अहर-महादलु । मय-मयरन्दउ कण्णावयलु ॥७॥
लोयण-फुल्लन्धुय-परिचुम्बिउ । कुडिल-वाल-सेवाल-करम्बिउ ॥८॥

घत्ता

लक्खण-सरवरु हुउ भुक्ख-महाहिम-वाएं ।
तं मुह-पङ्कउ लक्खिज्जइ कुव्वर-राएं ॥९॥

[१२]

जं मुह-कमलु दिट्ठु ओहुल्लिउ । वालिखिल्ल-तणएण पबोल्लिउ ॥१॥
'हे णरणाह-णाह भुवणाहिव । भोयणु भुञ्जहु सु-कलत्त पिय ॥२॥
स-गुलु स-लोणउ सरसु स-दुद्धउ । महुरु सुअन्धु स-णेहु सु-पक्कउ ॥३॥
तं भुञ्जेप्पिणु पवर-पियासणु । पच्छलें किं पि करहु संभासणु' ॥४॥
तं णिसुणेवि पजम्पिउ लक्खणु । अमर-वरङ्गण-णयण-कडक्खणु ॥५॥
'जसु जो दीसइ रुक्खु रवण्णउ । पत्तल-बहल-डाल-संछण्णउ ॥६॥
आयहोँ विउलें मूलें दणु-दारउ । अच्छइ सामिसालु अम्हारउ' ॥७॥

घत्ता

लक्खण-वयणेंहिँ बलु कोक्किउ आइउ स-कलत्तउ ।
करिणि-विहूसिउ णं वण-गइन्दु मयमत्तउ ॥८॥

[१३]

गुलुगुलन्तु हल्लेइ महग्गउ । तरुवर-गिरि-कन्दरहोँ विणिग्गउ ॥१॥
सेय-पवाह-गलिय-गण्डत्थलु । तोणा-जुयल-विउल-कुम्भत्थलु ॥२॥
पिच्छावलि-अलि-उल-परिमालिउ । किङ्किणि-णेउर-मालोमालिउ ॥३॥
विरइय-बाण-विसाण-भयङ्करु । थोर-पलम्ब-बाहु-लम्बिय-करु ॥४॥
धणुवर-कण्णाणक्खम्भुम्मूलणु । हुङ्कारट्ठ-मेट्ठ-पडिक्खलणु ॥५॥
सर-सिक्कार करन्तु महाबलु । तिस-भुक्खएँ खलन्तु विहलङ्घलु ॥६॥

रोमांचरूपी कंचुकसे काँटोंवाला था। दाँतोंरूपी केशर, अधररूपी महादल, पयरूपी मकरन्द और कानरूपी पत्तोंसे युक्त था। लोचनरूपी भ्रमरोंसे चुम्बित तथा कुटिल केशोंरूपी शैवालसे अंचित था। भूखरूपी महाहिमपातसे लक्ष्मणरूपी वह सरोवर आहत हो उठा। वह मुखकमल कूबरराजाके द्वारा देखा गया ॥१-९॥

[१२] जब मुखकमल झुका हुआ दिखाई दिया तो वालिखिल्यकी कन्याने कहा, "हे नरराजाओंके राजा, विश्वराजा, आप सुकलत्रकी तरह सुन्दर भोजन करें। जो गुल (मधुरता और गुड़) से युक्त, सलोणु (सौन्दर्य और नमकसे सहित), सइच्छ (इच्छा और ईखसे सहित), मधुर सुगन्धित, सस्नेह और पथ्य सहित है। पहले उस प्रियभोजनको कर लें, बादमें कुछ भी सम्भाषण करें।" यह सुनकर देवांगनाओंके नेत्रोंके कटाक्षोंसे देखे गये लक्ष्मणने कहा—"वह जो सुन्दर वृक्ष दिखाई देता है, बहुत-से पत्तों और शाखाओंसे प्रच्छन्न, उसके विशाल मूलमें दनुका नाशक हमारा स्वामी श्रेष्ठ है।" लक्ष्मणके वचनोंसे बुलाये गये राम अपनी सीताके साथ इस प्रकार चले मानो हथिनीसे विभूषित वनगजराज प्रसन्नतापूर्वक जा रहा हो ॥१-८॥

[१३] बलभद्ररूपी महागज गरजता हुआ तरुवररूपी पहाड़ी गुफासे निकला, जिसके गण्डस्थलसे प्रस्वेद प्रवाह गिर रहा है, जिसका तरकस युगलरूपी कुम्भस्थल है। पुंखोंकी कतारोंरूपी भ्रमरसमूहसे घिरा हुआ है; जो किंकिणीरूपी घण्टियोंकी मालासे शोभित है, जो विस्तृत बाणोंरूपी दाँतोंसे भयंकर है, स्थूल और लम्बे बाहुरूपी लम्बी सूँडवाला है, जो धनुषरूपी आधारस्तम्भको उखाड़नेवाला है। जो क्रुद्ध दुष्टरूपी महावतके लिए प्रतिकूल है, जो स्वररूपी सीत्कार करता

छाहिएँ पेजमइँ देन्तु विरुद्धउ । जिणवर-वयणङ्कुसेंण णिरुद्धउ ॥७॥
जाणइ-वर-थणियारि-विहूसिउ । तं पेक्खेंवि जणवउ उद्धूसिउ ॥८॥

घत्ता

मत्तारूढहणाहों उत्तिण्णु असेसु वि राय-गणु (?) ।
मेरु-णियम्बहों णं णिवडिउ गह-तारायणु ॥९॥

[१४]

हरि-कल्लाणमाल दणु-दलणेंहिँ । पडिय वे वि वलएवहों चलणेंहिँ ॥१॥
'अच्छहुँ ताव देव जल-कीलऍं । पच्छऍं भोयणु भुञ्जहुँ लीलऍं' ॥२॥
एम भणेप्पिणु दिण्णइँ तूरइँ । झल्लरि-मुणव-पणव-दडि-पहरइँ ॥३॥
पइट्ठ स-साहण सरवर-णहयलेँ । फुल्लन्धुअ-भमन्त-गहमण्डलेँ ॥४॥
धवल-कवल-णक्खत्त-विहूसिऍ । मीण-मयर-कक्कडऍ पदीसिऍ ॥५॥
उत्थल्लन्त-सफरि-चल-विज्जुलेँ । णाणाविह-विहङ्ग-घण-सङ्कुलेँ ॥६॥
कुवलय-दल-तमोह-दरिसावणेँ । सीयर-णियर-वरिस-वरिसावणेँ ॥७॥
जल-तरङ्ग-सुरचावारम्भिएँ । मक-जोइसिय-चक्क-पवियम्भिएँ ॥८॥

घत्ता

तहिँ सर णहयलेँ स-कलत्त वे वि हरि-हलहर ।
रोहिणि-रण्णाहिँ णं परिमिय चन्द-दिवायर ॥९॥

[१५]

तहिँ तेहएँ सरेँ सलिलेँ तरन्तइँ । संचरन्ति चामीयर-जन्ताइँ ॥१॥
णाइँ विमाणइँ सग्गहों पडियइँ । कणय-विचित्त-रयण-वेयडियइँ ॥२॥
णत्थि रयणु जहिँ जन्तु ण घडियउ । णत्थि जन्तु जहिँ मिहुणु ण चडियउ ॥३॥
णत्थि मिहुणु जहिँ णेहु ण वड्ढिउ । णत्थि णेहु जो णउ सुरयड्ढिउ ॥४॥

हुआ महाबली, प्यास और भूखसे विह्वलांग और स्खलित होता हुआ विरुद्ध होकर अपनी ही छायापर प्रहार करता हुआ, वह रामरूपी महागज जिनवचनरूपी अंकुशसे रोका जा सका। जानकीरूपी श्रेष्ठ हथिनीसे विभूषित उसे देखकर लोग हर्षित हो उठे। सभी राजसमूह मंचके आरोहणसे इस प्रकार उतर पड़ा, मानो ग्रहतारा-गण मेरुनितम्बसे गिर पड़ा हो ॥१-९॥

[१४] लक्ष्मण और कल्याणमाला दोनों ही रामके दानवों-का संहार करनेवाले चरणोंमें गिर पड़े। (और बोले) 'हे देव! पहले देवक्रीड़ा हो ले, बादमें लीलापूर्वक भोजन ग्रहण करें।" यह कहकर उसने झल्लरि, तुणव, प्रणव, दडि और भहर बजवा दिये। वे दोनों साधन सहित सरोवररूपी आकाशमें घुस गये, जिसमें भ्रमररूपी घूमता हुआ ग्रहमण्डल था, जो धवल कमलरूपी नक्षत्रोंसे विभूषित था। मीन-मकररूपी राशियोंसे युक्त था। जो उछलती हुई मछलीरूपी चंचल बिजलीसे युक्त था। नाना प्रकारके विहंगों रूपी घनोंसे संकुल था, जो कुवलयदलरूपी अन्धकारसमूहको दरसानेवाला था। सीकर-समूहरूपी वर्षाको बरसानेवाला था। जो जलतरंगोंरूपी इन्द्रधनुषोंसे युक्त था तथा मलरूपी ज्योतिषचक्रसे विजृम्भित था। ऐसे उस सरोवररूपी आकाशतलमें राम और लक्ष्मण दोनोंने अपनी पत्नियोंके साथ इस प्रकार रमण किया, मानो रोहिणी और रण्णाके साथ चन्द्र और दिवाकर हों ॥१-९॥

[१५] उस वैसे सरोवरमें पानीमें तैरते हुए स्वर्णयन्त्र चलते हैं जैसे स्वर्गसे विमान आ पड़े हों, जो रंगोंसे विचित्र रत्नोंसे विजड़ित थे। उसमें एक भी रत्न ऐसा नहीं था कि जिसमें यन्त्र न जड़ा हो, ऐसा एक भी यन्त्र नहीं था, जिसमें मिथुन न चढ़ा हो, ऐसा एक भी मिथुन नहीं था, जिसमें स्नेह न बढ़ रहा हो। स्नेह भी ऐसा नहीं था जो सुरतिसे समृद्ध न

तहिँ णर-णारि-जुवइ जल-कीलएँ । कीलन्ताहँ णहन्ति सुर-लीलएँ ॥५॥
सलिलु करग्गेँहिँ अप्फालन्ताहँ । मुरव-वज्ज-वायइँ दरिसन्ताइँ ॥६॥
खलिएँहिँ वलिएँहिँ अहिणव-भेएँहिँ । वन्धहिँ सुरय-वियसिय-भेएँहिँ ॥७॥
छन्देँहिँ तालेँहिँ बहु-लय-भङ्गेँहिँ । करणुच्छित्तेँहिँ णाणा-भङ्गेँहिँ ॥८॥

घत्ता

चोक्खु स-रागउ सिङ्गार-हार-दरिसावणु ।
पुक्खर-जुज्झु व तं जल-कीलणउ स-लक्खणु ॥९॥

[१५]

थक्कें जय-जय-सद्दें ण्हाय णर । पुणु णिग्गय हल-सारङ्ग-धर ॥१॥
एत्थन्तरें समरें समत्थएँण । सिर-णमिय-कयञ्जलि-हत्थएँण ॥२॥
तणु-लुहणइँ देवि पहाणएँण । पुणु तिण्णि वि कुब्बर-राणएँण ॥३॥
पच्छण्णें भवणें पइसारियइँ । चामियर-वीढें वइसारियइँ ॥४॥
वित्थारिउ विरयरु भोयणउ । सुकलत्तु व इच्छु ण भञ्जणउ ॥५॥
रज्जं पिव पइ-विहूसियउ । सूरं पिव थालालङ्कियउ ॥६॥
सुरयं पिव स-रसु स-तिम्मणउ । वायरणु व सद्दइ स-विञ्जणउ ॥७॥
तं भुत्तु सइच्छएँ भोयणउ । णं किउ जग-णाहें पारणउ ॥८॥

घत्ता

दिण्णु विलेवणु दिण्णइँ देवङ्गइँ वत्थइँ ।
सालङ्कारइँ णं सुकइ-कियइँ सुइ-सत्थइँ ॥९॥

[१७]

तेहि मि परिहियाइँ देवङ्गइँ । उवहि-जलाइँ व बहल-तरङ्गइँ ॥१॥
दुल्लह-लम्भइँ जिण-वयणाइँ व । पसरिय-पट्टइँ उच्छु-वणाइँ व ॥२॥
दीहर-छेयइँ सत्थाणाइँ व । फुल्लिय-डालइँ उज्जाणाइँ व ॥३॥

हो, उस जलक्रीड़ामें युवा नरनारी क्रीड़ा करते हैं और वेचलीलासे स्नान करते हैं। हाथोंकी अंगुलियोंसे पानी उछालते हैं; तथा मृदंग वाद्यके आघात दिखाते हैं, स्खलित होते हुए, मुड़ते हुए—अभिनव गीतों, बन्धों, काम-कटाक्षके नाना भेदों, छन्दों, तालों, अनेक लयों और भंगों, इन्द्रियोंको सींचनेवाले प्रकारोंके द्वारा। वह जलक्रीड़ा पुष्कर-युद्धकी (?) तरह चोखी, सराग, सलक्षण (लक्षणसहित—लक्ष्मणसहित) और शृंगार-भारको दिखानेवाली थी ॥१–९॥

[१६] जलमें जय-जय शब्दोंके साथ लोगोंने स्नान किया, फिर राम और लक्ष्मण बाहर निकले। इसी बीच युद्धमें समर्थ, तथा जिसने सिरको झुकाते हुए और हाथकी अंजली बाँधी है, ऐसे प्रधान नलकूबर राजाने शरीर पोंछनेके लिए वस्त्र देकर, उन तीनोंको प्रच्छन्न भवनमें प्रवेश कराया, और स्वर्णपीठपर उन्हें बैठाया। उन्हें विस्तृत भोजन परसा गया, जो सुकलत्रकी तरह इच्छाका खण्डन नहीं करनेवाला था, राज्यके समान जो पट्टसे विभूषित था, तूर्यके समान थालसे अलंकृत था, सुरतके समान सरस और सतिम्मण (आर्द्रता और कढ़ी सहित) था। व्याकरणके समान व्यंजन (पकवान और व्यंजन वर्ण) से सहित था। उन्होंने अपनी इच्छासे उस भोजनको किया मानो विश्वनाथने पारणा की हो। उन्हें लेप और देवांग वस्त्र दिये गये, जो सालंकार (अलंकार सहित) थे, मानो कविके द्वारा रचित श्रुति शास्त्र हों ॥१–९॥

[१७] उन तीनोंने देवांग वस्त्र पहन लिये जो समुद्रके जलकी तरह बहल तरंगों (बहुत लहरों—बहुत रेखाओं) वाले थे, जिनवचनोंकी तरह, जो कठिनाईसे प्राप्त होते थे, ईखवनकी तरह जो प्रसरितपट्ट (जिनका पट्टा—विस्तार फैला है) थे, आस्थानकी तरह, जो दीर्घ छेद (सीमा और छेद) वाले थे,

णिच्छिद्दइँ कइ-कव्व-पयाइँ व । हल्लुवइँ चारण-जण-वयणाइँ व ॥४॥
उण्हइँ कामिणि-मुह-कमलाइँ व । वङ्कइँ जिणवर-धम्म-फलाइँ व ॥५॥
सम्मुत्तइँ किण्णर-मिहुणाइँ व । अइ-संमत्तइँ वायरणाइँ व ॥६॥
तो एत्थन्तरेँ कुव्वर-सारेँ । ओयारिउ लक्खणु कुमारेँ ॥७॥
सुरवर-कुलिस-मज्झ-तणु-अङ्गें । णावइ कञ्चुउ मुक्कु भुअङ्गें ॥८॥

घत्ता

तिहुअण णाहेँण सुरजण-मण-णयणाणन्दें ।
मोक्खहोँ कारणेँ संसारु व मुक्कु जिणिन्दें ॥९॥

[१८]

तहिँ एक्कन्त-भवणेँ पच्छण्णएँ । जं अप्पाणु पगासिउ कण्णएँ ॥१॥
पुच्छिय राहवेण परिओसेँ । 'अच्छु काइँ तुहुँ थिय णर-वेसेँ' ॥२॥
तं णिसुणेप्पिणु पगलिय-णयणी । एम पजम्पिय गग्गिर-वयणी ॥३॥
'रुद्दभुत्ति-णामेण पहाणउ । दुज्जउ विञ्झ-महीहर-राणउ ॥४॥
तेण धरेप्पिणु कुव्वर-सारउ । वालिखिल्लु णिउ जणणु महारउ ॥५॥
तें कज्जेँ थिय हउँ णर-वेसेँ । जिह ण मुणिज्जमि जणेँण असेसेँ' ॥६॥
तं णिसुणेवि वयणु हरि कुद्धउ । णं पञ्चाणणु आमिस-लुद्धउ ॥७॥
अप्फालन्त-णेत्तु फुरियाहरु । एम पजम्पिउ कुद्धु सलक्खणु ॥८॥

घत्ता

'अज्जु समरङ्गणेँ तं रुद्दभुत्ति णउ मारमि ।
तो सइँ सीयएँ सीराउहु णउ जयकारमि' ॥९॥

[१९]

जं कल्लाणमाल सम्भीसिय । छड्डु णर-वेसु कहउ आसासिय ॥१॥
ताव दिवायरु गउ अत्थवणहोँ । लोउ पइट्ठउ णिय-णिय-भवणहोँ ॥२॥

उद्यानके समान जो फूलों और शाखाओंवाले थे, कवि द्वारा रचित पदोंकी तरह, जो छिद्र (दोष) से रहित थे, जो चारण-जनके वचनोंकी तरह हलके थे। कामिनीके मुखरूपी कमलकी तरह जो सुन्दर थे, जिनवर धर्मके फलकी तरह जो बड़े थे, किन्नर मिथुनों (जोड़ों) की तरह जो (वस्त्र) समसुत्त (अच्छी तरह सोये हुए, अच्छी तरह गुथे हुए) थे, जो व्याकरण-की तरह अथसे लेकर समाप्ति तक पूर्ण थे, तब इसी बीच कूबर-नगरके श्रेष्ठ तथा सुरवरके वज्रके मध्यभागकी तरह क्षीणशरीर कुमारने अपना कवच उतार दिया मानो साँपने अपना केंचुल उतार दिया हो जैसे सुरजनोंके मनोंको आनन्द देनेवाले त्रिभुवनस्वामी जिनेन्द्रने मोक्षके कारण संसार छोड़ दिया हो ॥१–९॥

[१८] उस एकान्त भवनमें, जब उस प्रच्छन्न कन्याने अपने-आपको प्रकट किया तो रामने परितोषके साथ पूछा कि बताओ तुम पुरुषरूपमें क्यों हो ? यह सुनकर जिसकी आँखोंसे पानी बह रहा है, ऐसी वह रुँधी हुई वाणीमें इस प्रकार बोली, "रुद्रभूति नामका विन्ध्यपर्वतका राजा प्रधान और दुर्जेय है। वह मेरे पिता कुबरश्रेष्ठ वालिखिल्यको पकड़-कर ले गया है। इस प्रकारसे मैं पुरुषरूपमें रहती हूँ कि जिससे दूसरे पुरुषोंके द्वारा न जानी जाऊँ।" यह वचन सुनकर लक्ष्मण क्रुद्ध हो गया मानो आमिष (मांस) का लोभी सिंह हो। अत्यन्त सन्तप्त नेत्र, फड़कते हुए ओठोंवाला समरसर और कठोर वह इस प्रकार बोला—"यदि मैं युद्धके प्रांगणमें उस रुद्रभूतिको नहीं मारता हूँ तो सीतादेवी सहित रामकी जय नहीं बोलूँगा" ॥१–९॥

[१९] जब कल्याणमालाको अभयवचन दिया गया तो शीघ्र उसने आश्वस्त होकर पुरुषरूप ग्रहण कर लिया। इसी

णिसि-णिसियरि दस-दिसहिँ पधाइय। महि-णायणोट्ठ वसेवि संपाइय ॥३॥
णह-णक्खत्त-दन्त-उद्धन्तुर। उवहि-जीह-गिरि-दाढा-भासुर ॥४॥
घण-लोयण-ससि-तिलय-विहूसिय। सञ्झा-लोहिय-भिस-पदोसिय ॥५॥
तिहुयण-वयण-कमलु दरिसेप्पिणु। सुत्तणाइँ रवि-मडउ गिलेप्पिणु ॥६॥
ताव महाबल-बलु विण्णासेँवि। तालवसेँ णिय-णासु पगासेँवि ॥७॥
सीयएँ सहुँ बल-कण्ह विणिग्गय। णित्तुरङ्ग णीसन्दण णिग्गय ॥८॥

घत्ता

ताव विहाणउ रवि उट्ठिउ रअणि-विणासउ।
गउ अच्छन्ति य णं दिणयरु आउ गवेसउ ॥९॥

[६]

तहिँ वि कुब्बरपुर-परमेसरु। जाव स-हत्थें वाअइ अक्खरु ॥१॥
ताव तिलोयहाँ अतुल-पयावइँ। सुरवर-भवण-विणिग्गय-णायइँ ॥२॥
दुद्दम-दाणवेन्द-आयामइँ। दिट्ठइँ लक्खण-रामहुँ णामइँ ॥३॥
खणेँ कल्लाणमाल मुच्छङ्गय। णिवडिय केलि व खर-पवणाहय ॥४॥
दुक्खु-दुक्खु आसासिय जावेँहिँ। हाहाकारु पमेल्लिउ तावेँहिँ ॥५॥
'हा हा राम राम जग-सुन्दर। लक्खण लक्खणलक्ख-सुहङ्कर ॥६॥
हा हा सीएँ सीएँ उप्पेक्खमि। तिहि मि जणहुँ एक्कु वि ण पेक्खमि' ॥७॥
एम पलाउ करन्ति ण थक्कइ। खणे णीससइ ससइ खणेँ कोक्कइ ॥८॥

घत्ता

खणेँ खणेँ जोयइ चउदिसु लोयणेँहिँ विसालेँहिँ।
खण खणेँ पहणइ सिर-कमलु सइं भुव-डालेँहिँ ॥९॥

बीच सूर्यास्त हो गया। लोग अपने-अपने भवनोंके लिए चले गये। निशारूपी निशाचरी दसों दिशाओंमें दौड़ी। धरती और आकाशके ओठोंवाली जो मानो काटनेके लिए आयी हो। ग्रह और नक्षत्रोंरूपी दाँतोंसे वह नुकीले दाँतोंवाली थी, समुद्ररूपी जीभ और पर्वतरूपी दाढ़ोंसे वह भास्वर थी। मेघरूपी लोचन और चन्द्रमारूपी तिलकसे विभूषित थी। सन्ध्याकी लाल आभासे प्रकाशित थी। त्रिभुवनके मुखरूपी कमलको देखकर तथा सूर्य केशवको निगलकर वह जैसे सो गयी। तब, महाबल-के बलको स्थापित कर, ताड़पत्रपर अपना नाम प्रकाशित कर, सीताके साथ राम और लक्ष्मण वहाँसे चल दिये। रथ और अश्वके बिना वे निकल गये। तब इतनेमें सवेरे रात्रिका अन्त करनेवाला सूर्य उदित हुआ। मानो वे गये, या हैं, यह खोजने-के लिए दिनकर आया हो ॥१–९॥

[१०] कूबर नगरका राजा उठकर जबतक अपने हाथसे अक्षरोंको पढ़ता है, तबतक उसने त्रिलोकमें अतुल प्रतापवाले, सुरवर भवनमें प्रसिद्ध नाम, दुर्दमनीय दानवोंका दमन करने-वाले राम-लक्ष्मणके नामोंको देखा। एक क्षणमें कल्याणमाला मूच्छित हो गयी। प्रखर पवनसे आहत केलेके वृक्षकी तरह गिर पड़ी। बड़ी कठिनाईसे जिस प्रकार आश्वस्त हुई वैसे ही उसने हाहाकार करना शुरू कर दिया। "हा राम, जग सुन्दर, लाखों लक्षणोंसे शुभंकर हे लक्ष्मण, हा-हा सीते, मैं देखती हूँ परन्तु तीनोंमें-से मैं एकको भी नहीं देखती।" इस प्रकारका प्रलाप करती हुई वह जरा भी नहीं रुकती। एक क्षणमें निःश्वास छोड़ती और श्वास लेती, और एक क्षणमें पुकारती। क्षण-क्षणमें अपने विशाल नेत्रोंसे चारों दिशाओंको देखती। और क्षण-क्षणमें अपनी भुजारूपी शाखाओंसे सिररूपी कमलको पीटती ॥१–९॥

सत्तावीसमो संधि

तो सायर-वज्जावत्त-धर सुर-डामर असुर-विणासयर ।
णारायण-राहव रणेँ अजय णं मत्त महागय विञ्झु गय ॥

[१]

ताणन्तरेँ णम्मय दिट्ठ सरि । सरि जण-मण-णयणाणन्द-करि ॥१॥
करि-मयर-कराहय-उहय-तड । तडयड पडन्ति णं वज्ज-झड ॥२॥
झड-भीम-णिणाएं गीढ-भय । भय-भीय-समुट्ठिय-चक्कहय ॥३॥
हय-हिंसिय-गज्जिय-मत्त-गय । गयवर-अणवरय-विसट्ट-मय ॥४॥
मय-मुक्क-करम्बिय वहइ महु । महुयर रुण्टन्ति मिलन्ति तहु ॥५॥
तहिँ थाइय गन्धव-पवह-गण । गण-भरिय-करञ्जलि तुट्ठ-मण ॥६॥
मणहर ढेक्कार मुअन्ति चल । चल-कमल-करम्बिय सहस-दल ॥७॥
दलेँ भमर परिट्ठिय केसरहोँ । केसरु णिउ णवर जिणेसरहोँ ॥८॥

घत्ता

तो सीराउह-सारङ्गधर सहुँ सीयएँ सलिलेँ पइट्ठ णर ।
मयणारु करेप्पिणु रेवयएँ णं तारिय सासण-देवयएँ ॥९॥

[२]

तोयन्तरेँ महिहर भुअण-सिरि । सिरियच्छेँ दीसइ विञ्झइरि ॥१॥
हरिणप्पहु ससिपहु कण्णपहु । पिहुलप्पहु णिप्पहु भीणपहु ॥२॥
सुरवो व्व स-सालु स-वंसहरु । विसहो व्व स-सिङ्गु महन्त-ढरु ॥३॥

सत्ताईसवीं सन्धि

तब असुरोंका विनाश करनेवाले, देवोंके लिए भयंकर सागरावर्त और वज्रावर्त धनुष धारण करनेवाले, युद्धमें अजेय लक्ष्मण और राम मानो मत्त महागजकी तरह विन्ध्याचल पर्वतके लिए गये।

[१] इसी बीच उन्हें नर्मदा नदी दिखाई दी, नदी जो कि जनोंके मनों और नेत्रोंको आनन्द देनेवाली थी, जिसके दोनों तट गजों और मगरोंकी सूँड़ोंसे आहत थे, मानो उनपर तड़-तड़ कर वज्राघात हो रहा था; आघातके भयंकर शब्दसे जो भयसे व्याप्त थी। जिससे भयके कारण डरे हुए चक्रवाक और अश्व भाग रहे थे, जिसमें घोड़े हिनहिना रहे थे और मत्त गज गरज रहे थे। गजवर अनवरत रूपसे मद छोड़ रहे थे जिसमें मदसे युक्त और मिश्रित मधु बह रहा था। उसपर भ्रमर गुनगुनाते थे और मिलते रहे थे। उसपर गन्धर्वोंका प्रवाह-समूह दौड़ रहा था। गणोंकी अंजलियाँ भरी हुई थीं और वे तुष्ट मन थे। बैल मधुर ढेक्कारकी आवाज कर रहे थे, उनके सींगोंका समूह श्रेष्ठ कमलोंसे अंचित था। केशरके दल (पराग)में प्रविष्ट हो चुके थे; केशर जो कि केवल जिनेश्वरके लिए ले जायी जाती है। तो सीता देवीके साथ श्रीराम, लक्ष्मण और लोग पानीमें उतरे मानो उपकार कर शासनदेवताके समान नर्मदा नदी ने उन्हें तार दिया ॥१–९॥

[२] थोड़ी दूर चलनेपर भुवनकी शोभा विन्ध्याचल राम-को दिखाई देता है। हरिणप्रभ, शशिप्रभ, कर्णप्रभ, पृथुलप्रभ, निष्प्रभ और क्षीणप्रभ भी। जो विन्ध्याचल मृदंगकी तरह सताल (तालवृक्ष—ताल) वंसधर (वंश और कुटुम्ब) वृषभ-की तरह, ससिंग (सींग और शिखर सहित); महन्तवर

मयणो व्व महाणल-दड्ढ-तणु । जलउ व्व स-वारि मइ व्व स-वणु ॥४॥
तहिँ तेहएँ सेलेँ अहिट्ठियइँ । दुण्णिमित्तइँ ताव समुट्ठियइँ ॥५॥
फेक्कारइ सिव वायसु रसइ । मोसावणु मण्डणु अहिलसइ ॥६॥
सरु-सुणेवि पकम्पिय जणय-सुअ । थिय विहि मि धरेप्पिणु भुएँहिँ भुअ ॥७॥
'किं ण सुउ चवन्तु वि को वि णरु । जिह सउणउ मागिउ देइ वरु' ॥८॥

घत्ता

तं णिसुणेँवि असुर-विमद्दणेँण मम्भीसिय सीय जणद्दणेँण ।
'सिय लक्खणु बलु पवरक्खु जहिँ कउ सउण-विसउणेँहिँ गण्णु तहिँ' ॥९॥

[२]

एत्थन्तरेँ रहस-समुच्छलिउ । आहेडएँ कइभुत्ति चलिउ ॥१॥
ति-सहासेँहिँ रहवर-गयवरेँहिँ । तन्तूण-तुरङ्गेँहिँ णरवरेँहिँ ॥२॥
संचल्लेँ विब्भम-पसाहणेँण । लक्खिज्जइ जाणइ राणएँण ॥३॥
पप्फुल्लिय-धवल-कमल-वयणा । इन्दीवर-दल-दीहर-णयणा ॥४॥
तणु मज्झेँ णियम्बेँ वच्छेँ गरुअ । जं णयण-कडक्खिय जणय-सुअ ॥५॥
उम्मायण-मयणेँहिँ मोहणेँहिँ । बाणेँहिँ संदीवण-सोसणेँहिँ ॥६॥
आयल्लिउ सल्लिउ मुच्छियउ । पुणु दुक्खु दुक्खु ओसुच्छियउ ॥७॥
कर मोडइ अङ्गु वलेइ हसइ । ऊससइ ससइ पुणु णीससइ ॥८॥

घत्ता

मयरद्धय-सर-जज्जरिय-तणु पहु पुणु पजम्पिउ कुइय-मणु ।
'वलिमण्डएँ जणवसि वणवसहुँ उद्दालेँवि आणहोँ पासु महु' ॥९॥

[३]

तं वयणु सुणेप्पिणु णर-णियरु । उत्थरिउ णाइँ णव-अम्बुहरु ॥१॥
गज्जन्त-महागय-घण-पवलु । तिक्खग्ग-खग्ग-विज्जुल-चवलु ॥२॥

(महा भयानक), मदनके समान महानलदग्ध शरीर था। मेघके समान सवारि (जल सहित); भटके समान, सव्रण (व्रण और वन सहित), था। उस वैसे वनमें जब वे रहने लगे तो खोटे अपशकुन हुए। शृगाल चिल्लाने लगता है, कौआ बोलता है, भयंकर युद्ध चाहता है। स्वर सुनकर सीता काँप उठी और दोनों बाँहोंसे बाँह पकड़कर स्थित हो गयी और बोली, "क्या आपने किसी नरको बोलते हुए नहीं सुना, जैसा शकुन माना जाता है, वैसा वर देता है।" यह सुनकर असुरों-का मर्दन करनेवाले लक्ष्मणने सीताको अभय वचन दिया कि जहाँ सीता, लक्ष्मण और राम प्रत्यक्ष हैं, वहाँ स्वप्न और दुःस्वप्नकी क्या गिनती ॥१–९॥

[३] इसी बीच, हर्षसे उछलता हुआ रुद्रभूति आखेटके लिए चला—तीन हजार रथवरों और गजवरों, इससे दूने ऊँचे मनुष्यवरोंके साथ। चलते हुए विन्ध्याचलके प्रमुख राजा रुद्रभूतिने जानकीको देखा—जो खिले हुए धवल कमलके समान मुखवाली, और नील कमलदलके समान लम्बे नेत्रोंवाली है। मध्यमें दुबली-पतली तथा नितम्ब और वक्षमें भारी है। जब उसने सीताको देखा तो वह उन्मादन, मदन, मोहन, सन्दीपन और शोषण आदि बाणोंसे आहत, पीड़ित और मूर्छित हो गया। फिर बड़ी कठिनाईसे उसकी मूर्छा दूर हुई। वह हाथ मोड़ता है, शरीर चलाता है, हँसता है, उच्छ्वास लेता है, श्वास लेता और फिर निःश्वास लेता है। कामदेवके तीरोंसे जर्जर शरीर वह भिल्लराज कुपित मन होकर इस प्रकार बोला कि उस वनवासिनीको उन वनवासियोंसे बलपूर्वक छीनकर मेरे पास ले आओ ॥१–९॥

[४] नरसमूह, वह वचन सुनकर नवमेघकी तरह उछला जो गरजते हुए महागजोंरूपी घनसे प्रबल और तीखे अग्रभाग-

हय-पवण-पगज्जिय-गयणयलु । सर-धारा-धोरणि-जल-बहलु ॥३॥
सुअ-धवल-छत्त-छिण्डीर-धरु । मण्डलिय-चाव-सुरचाव-करु ॥४॥
सय-सन्दण-वीढ-भयाणउलु । सिय-चमर-बलाय-पन्ति-विउलु ॥५॥
ओरसिय-सङ्ख-दद्दुर-पउरु । तोणीर-मोर-णच्चण-गहिरु ॥६॥
तं पेक्खेंवि गुञ्ज-पुञ्ज-णयणु । दट्ठोट्ठ-रुट्ठ-रोसिय-वयणु ॥७॥
आवद्ध-तोणु धणुहरु अमउ । धाइउ लक्खणु लहु कसु-जउ ॥८॥

घत्ता

तं रिउ-कङ्काल-विणासयरु हलहेइहें भायरु सीय-वरु ।
जण-मण-कम्पावणु स-पवणु हेसन्तु पढुक्किउ मड्डमहणु ॥९॥

[५]

अप्फालिउ मड्डमहणेण धणु । धणु-सद्दें समुट्ठिउ खर-पवणु ॥१॥
खर-पवण-पहय जलयर रडिय । रडियागमे वज्जासणि पडिय ॥२॥
पडिया गिरि सिहर समुच्छलिय । उच्छलिय चलिय महि णिद्दलिय ॥३॥
णिद्दलिय भुअङ्ग विसग्गि मुक्क । मुक्कन्त णयर सायरहुँ ढुक्क ॥४॥
ढुक्कन्तेंहिं पहल फुलिङ्ग चित्त । घण सिप्पि-सङ्ख-संपुड पलित्त ॥५॥
धगधगधगन्ति मुत्ताहलाइँ । कढकढकढन्ति सायर-जलाइँ ॥६॥
हसहसहसन्ति पुलिणन्तराइँ । जलजलजलन्ति भुअणन्तराइँ ॥७॥
तें धणुहर-सद्दें णिट्ठुरेण । रिउ मुक्क पयाव-मडप्फरेण ॥८॥

घत्ता

रथ-सीय विसण्ठुल णर पवर लोट्टाविय हय गय धय चमर ।
धणुहर टङ्कार-पवण-पहय रिउ-तरुवर णं सय-खण्ड गय ॥९॥

वाली तलवाररूपी बिजलीसे चपल था। जो आहत नगाड़ोंसे गगनतलको गर्जित कर रहा था, जो सरधाराकी कतारोंसे प्रचुर जलवाला था, जो काँपते हुए धवल छत्रोंरूपी फेनसे श्रेष्ठ था। मण्डलाकार धनुषरूपी इन्द्रधनुष जिसके हाथमें था। जो सैकड़ों रथपीठोंसे समावृत था, उड़ते श्वेत चमरोंरूपी बलाकाओंकी पंक्तियोंसे विशाल था, जो बजते हुए शंखोंरूपी मेंढकोंसे प्रचुर था, और तूणीररूपी मयूरोंके नृत्योंसे गम्भीर था। ऐसे इस नवमेघको देखकर, गुंजाफल-समूहके समान नेत्रवाला, ओठ चबाते हुए रुष्ट और क्रुद्धमुख तरकस बाँधे हुए, अभय, धनुर्धर, लब्धजय लक्ष्मण शीघ्र दौड़ा। शत्रुरूपी कंकाल-का नाश करनेवाला, रामका भाई लक्ष्मण हेमन्तकी तरह जनमनको कँपानेवाला, सपवन (पवन और बाणसे सहित), सीयवर (ठण्डसे श्रेष्ठ, सीताके लिए उत्तम) वहाँ पहुँचा ॥१-९॥

[५] लक्ष्मणने अपना धनुष चढ़ाया। धनुषके शब्दसे तीव्र हवा उठी। तीव्र हवासे आहत मेघ गरज उठे। मेघोंकी गर्जनासे वज्राशनि पड़ने लगे। जब पहाड़ गिरे तो शिखर उछलने लगे। उछलते हुए वे चले और धरती दलित होने लगी। धरती दलनसे साँपोंकी विषाग्नि छोड़ने लगी, जो मुक्त होकर वह केवल समुद्र तक पहुँची। पहुँचते ही ज्वालाओंने चिनगारियाँ फेंकीं, उससे प्रचुर सीपी, शंख-सम्पुट जल उठा। मुक्ताफल धक-धक करने लगे, सागर जल कड़-कड़ करने लगे। किनारोंके अन्तराल हस-हस करके धँसने लगे, भुवनोंके अन्त-राल जलने लगे। जिसने शत्रुका प्रताप और घमण्ड छुड़वा दिया है, ऐसे उस निष्ठुर धनुष शब्दसे भयभीत अस्त-व्यस्त बड़े-बड़े मनुष्य, हय, गज, ध्वज और चमर लोट-पोट हो गये। धनुषकी टंकारकी हवासे आहत होकर शत्रुरूपी वृक्षवरोंके सैकड़ों टुकड़े हो गये ॥१-९॥

[६]

एत्थन्तरेँ तो विम्भाहियइ । सहुँ मन्तिहिँ करमुत्ति चवइ ॥१॥
'इमु काइँ होउ तइलोक्क-भउ । किं मेरु-सिहरु सय-खण्ड गउ ॥२॥
किं दुन्दुहि हय सुरवर-जणेँण । किं गज्जिउ पलय-महाघणेँण ॥३॥
किं गयण-मग्गेँ तडि तडयडिय । किं महिहरेँ वज्जासणि पडिय ॥४॥
किं कालु कयन्त-मित्तु हसिउ । किं वलयामुहु समुद्दु रसिउ ॥५॥
किं इन्दहोँ इन्दत्तणु टलिउ । खय-रक्खसेण किं जगु गिलिउ ॥६॥
किं गउ पायालहोँ भुवणयलु । वम्भण्डु फुट्टु किं गयणयलु ॥७॥
किं खय-मारुउ ठाणहोँ चलिउ । किं असणि-णिहाउ समुच्छलिउ ॥८॥

घत्ता

किं सयल स-सायर चलिय महि किं दिसि-गय किं गज्जिय उवहि ।
एउ अक्खु महन्तउ अच्छरिउ कहोँ सद्दें तिहुअणु थरहरिउ ॥९॥

[७]

जं णरवइ एम चवन्तु सुउ । पभणइ सुभुत्ति कण्टइय-भुउ ॥१॥
'सुणि अक्खमि जं तइलोक्क-भउ । णउ मेरु-सिहरु सय-खण्ड गउ ॥२॥
णउ दुन्दुहि हय सुरवर-जणेँण । णउ गज्जिउ पलय-महाघणेँण ॥३॥
णउ गयण-मग्गेँ तडि तडयडिय । णउ महिहरेँ वज्जासणि पडिय ॥४॥
णउ कालु कियन्त-मित्तु हसिउ । णउ वलयामुहु समुद्दु रसिउ ॥५॥
णउ इन्दहोँ इन्दत्तणु टलिउ । खय-रक्खसेण णउ जगु गिलिउ ॥६॥
णउ गउ पायालहोँ भुवणयलु । वम्भण्डु फुट्टु णउ गयणयलु ॥७॥
णउ खय-मारुउ थाणहोँ चलिउ । णउ असणि-णिहाउ समुच्छलिउ ॥८॥
णउ सयल स-सायर चलिय महि । णउ दिसि-गय णउ गज्जिय उवहि ॥९॥

घत्ता

सिय-लक्खण-बल-गुण-वन्तएँण णीसेसु वि जउ धवलन्तएँण ।
सु-कलत्तेँ जिह मण-मणहरेँण एउ गज्जिउ लक्खण-धणुहरेँण ॥१०॥

[६] इसी अन्तरालमें विंध्याचलका राजा रुद्रभूति अपने मंत्रियोंसे कहता है,—'त्रिलोकमें यह भय क्यों हो रहा है? क्या किसी देवजनने दुंदुभि बजायी है? क्या प्रलयके महा मेघ गरजे हैं? क्या आकाश मार्गमें बिजली तड़-तड़ चमकी है? या पर्वतपर वज्र गिरा है, या कृतान्तके मित्र कालने अट्टहास किया है? या वलयामुख समुद्र गरज उठा है। क्या इन्द्रका इन्द्रत्व टल गया है, क्या क्षय रूपी राक्षसने संसारको निगल लिया है, क्या भुवनतल पाताल लोकमें चला गया है। क्या ब्रह्माण्ड या आकाशतल फूट गया है? क्या प्रलय पवन अपने स्थानसे चल पड़ा है? क्या वज्रसमूह उछल पड़ा है? क्या समुद्र सहित समूची धरती चल पड़ी है? क्या दिशा गज या समुद्र गरज उठे हैं? यह बताओ मुझे महान् आश्चर्य है कि किसके शब्दसे त्रिभुवन थर्रा उठा है? ॥१-९॥

[७] जब राजाको यह कहते हुए सुना, तो पुलकित बाहु सुभुक्ति कहता है—"सुनिए, मैं बताता हूँ कि जिससे त्रिलोकको भय उत्पन्न हुआ है। मेरु पर्वतके शिखरके सौ टुकड़े नहीं हुए हैं, और न सुरवरोंने दुंदुभि बजायी है। प्रलय महामेघोंने गर्जन नहीं किया है, और न आकाश मार्गमें बिजली कड़की है। महीधर पर वज्र नहीं गिरा है, और न कृतांतका मित्र काल हँसा है। वलयाकार समुद्र नहीं गरजा और न इन्द्रका इन्द्रत्व ही अतिक्रान्त हुआ है? न तो विनाशके निशाचरने संसारको निगला है, और न ब्रह्माण्ड या गगनतल ही फूटा है। न तो क्षयपवन अपने स्थानसे चलित हुआ है, और न वज्रका आघात हुआ है। न तो समुद्र सहित धरती उछली है और न दिशागज। और न समुद्र गरजा है। सीता लक्ष्मण बलराम और गुणोंसे युक्त, समस्त जगको धवल करते हुए, शुक्लपक्षके समान विश्वके मनको हरण करनेवाले धनुर्धर लक्ष्मणके द्वारा

[८]

सुणें णरवइ असुर-परायणहुँ । जं चिण्हइँ बल-णारायणहुँ ॥१॥
तं अत्थि असेसु वि वणवसहुँ । सुरभुवणुच्छलिय-महाजसहुँ ॥२॥
एक्कहों ससि-णिम्मल-धवल तणु । अण्णेक्कहों कुवलय-वण-कसणु ॥३॥
एक्कहों महि-माणदण्ड चलण । अण्णेक्कहों कुम्म-सुणु-दलण ॥४॥
एक्कहों सणु मज्झु पदीसियउ । अण्णेक्कहों कमल-विहूसियउ ॥५॥
एक्कहों वच्छत्थलु सिय-सहिउ । अण्णेक्कहों सीयाणुग्गहिउ ॥६॥
एक्कहों मं:सावणु हेइ हलु । अण्णेक्कहों धणुहरु अतुल-बलु ॥७॥
एक्कहों मुहु ससिकुन्दुज्जलउ । अण्णेक्कहों णव-घण-सामलउ' ॥८॥

घत्ता

तं वयणु सुणेप्पिणु विगय-मउ णीसन्दणु णिप्पाउ णिप्फुरउ ।
बलएवहों चलणेंहिं पडिउ किह अहिसेएँ जिणिन्दहों इन्दु जिह ॥९॥

[९]

जं रुद्दभुत्ति चलणेंहिं पडिउ । तं लक्खणु कोवाणलें चडिउ ॥१॥
धगधगधगन्तु । थरथरथरन्तु ॥२॥
'हणु हणु' भणन्तु । णं कलि कियन्तु ॥३॥
करयलु धुणन्तु । महि णिद्दलन्तु ॥४॥
विप्फुरिय-वयणु । णिट्ठुरिय-णयणु ॥५॥
महि-माणदण्डु । परदल-पचण्डु ॥६॥
सो भणिउ एव । 'रिउ मेल्लि देव ॥७॥
जं पइज एण । पुज्जइ हएण' ॥८॥

घत्ता

तं वयणु सुणेप्पिणु अतुल-बलु 'सुणु लक्खण' पचविउ एव बलु ।
मुक्काउहु जो चलणेंहिं पडइ तें णिहएँ को जसु णिव्वडइ' ॥९॥

[१०]

थिउ लक्खणु वलेण णिवारियउ । णं वर-गइन्दु कण्णारियउ ॥१॥
णं सायरु मज्जायएँ धरिउ । पुणु-पुणु वि चविउ मच्छर-भरिउ ॥२॥

यह गर्जना की गयी है।" ॥१-१०॥

[८] हे राजन्, सुनो असुरको परास्त करनेवाले बलभद्र और वासुदेवके जो चिह्न हैं, वे सब चिह्न, जिनका महायश देव भवनमें उछल रहा है, ऐसे इन वनवासियोंमें हैं। एकका शरीर चन्द्रमाके समान धवल है, दूसरेका नीलकमल और मेघके समान श्याम है। एकके चरण धरतीके लिए मानदण्ड हैं, दूसरेके दुर्दम दानवोंका दलन करनेवाले हैं। एक शरीर मध्यमें कृश है, दूसरेका शरीर कमलोंसे विभूषित है। एकका वक्षस्थल सीतासे शोभित है, दूसरेका वक्षःस्थल सीता (लक्ष्मी) से अनुगृहीत है, एकके पास भयंकर वज्र और हल हैं, दूसरेके पास अतुलबल धनुष है। एकका मुख चन्द्रमा और कुन्दके समान उज्ज्वल है; दूसरेका नवघनके समान श्यामल है। यह वचन सुनकर विगतमद उत्तरहीन वह बिना रथके गया, और बलभद्रके चरणोंमें उसी प्रकार गिर पड़ा, जिस प्रकार इन्द्र जिनेन्द्रके अभिषेकमें उनके चरणोंमें गिर पड़ता है! ॥१-९॥

[९] जब रुद्रभुक्ति चरणोंमें गिरा तो लक्ष्मणका कोपानल बढ़ गया। धग-धग करता हुआ, और थर-थर करता हुआ मारो-मारो कहता हुआ, मानो जैसे कलि कृतान्त हो। करतल पीटता हुआ, धरतीको रौंदता हुआ, विस्फारित नेत्र भयावह नेत्र, धरतीका मानदण्ड और शत्रुबलके लिए प्रचंड उसने इस प्रकार कहा कि हे देव, शत्रुको छोड़ दीजिए, जिससे इसको मारनेसे मेरी प्रतिज्ञा पूरी हो सके! यह वचन सुनकर अतुल बल बलभद्र इस प्रकार बोले कि जो शस्त्रोंको छोड़कर चरणोंमें आकर गिरता है, उसके मारनेसे किस यशकी निष्पत्ति होगी ॥१-९॥

[१०] रामके मना करनेपर लक्ष्मण रह गया, मानो वर गजेन्द्र महावतके द्वारा रोक दिया गया हो, मानो सागर मर्यादासे

'खल खुद्द पिसुण तउ सिर-कमलु । पुत्तेण सुक्कु जं णविउ बलु ॥३॥
करि वालिखिल्लु सुएं सन्धि लहु । णं तो जीवन्तु ण जाहि महु' ॥४॥
तं णिसुणेंवि णिविसें मुक्कु पहु । णं जिणवरेण संसार-पहु ॥५॥
णं गह-कल्लोलें [illegible]-गहु । णं गरुडें विहगें उरगमणु ॥६॥
णं मुक्कु सुअणु दुज्जण-जणहों । णं वारणु वारि-णिबन्धणहों ॥७॥
णं मुक्कु भविउ भव-सायरहों । तिह वालिखिल्लु दुक्खोयरहों ॥८॥

घत्ता

ते रुद्दभुत्ति-वक-महुमहण सहुँ कुब्बर-णिवेंण चयारि जण ।
थिय जाणइ तेहिँ समाणु किह चउ-सायर-परिमिय पुहइ जिह ॥९॥

[११]

तो वालिखिल्ल-विम्भाहिवइ । अवरोप्परु णेह-णिबद्ध-मइ ॥१॥
कम-कमलेंहिँ णिवडिय हलहरहों । णमि-विणमि जेम थिरु जिणवरहों ॥२॥
सहुँ हत्थें वलेंण समुट्ठविय । उवहि व समएँहिँ परिट्ठविय ॥३॥
भरहहों पाइक्क वे वि थविय । लहु णिय-णिय-णिलयहुँ पट्ठविय ॥४॥
उत्तिण्णइँ तिण्णि वि महिहरहों । णं भवियइँ भव-दुक्खोयरहों ॥५॥
णं मेरु-णियम्बहों किण्णरइँ । णं सग्गहों चवियइँ सुरवरइँ ॥६॥
विणु खेवें ताविं पराइयइँ । किर सलिलु पियन्ति तिसाइयइँ ॥७॥
णवकण्णउ रवियर-तावियउ । सु-कुडुम्बु व खल-संतावियउ ॥८॥

रोक दिया गया हो। मत्सरसे भरा हुआ लक्ष्मण बार-बार बोला—"हे खल क्षुद्र दुष्ट, तेरा सिर कमल केवल इतनेसे बच सका है कि जो तूने रामको नमन किया। तू बन्दी बालिखिल्य-को शीघ्र छोड़ दे नहीं तो तू भी मुझसे जीवित नहीं जा सकता।" यह सुनकर पलमात्रमें राजाको छोड़ दिया गया। मानो जिनेन्द्रने संसार पथ छोड़ दिया हो, मानो राहुने चन्द्रमाको छोड़ दिया हो, मानो गरुड़पक्षीने साँपको छोड़ दिया हो, मानो दुर्जन समूहने सज्जनको छोड़ दिया हो, मानो द्वार निबन्धनसे हाथी छोड़ दिया गया हो। मानो भव्य संसार-समुद्रसे छोड़ दिया गया हो, उसी प्रकार बालिखिल्य दुःखके मध्यसे मुक्त हो गया। रुद्रभुक्ति राम और लक्ष्मण, कूबर नरेशके साथ चारों लोग वहाँ स्थित थे। उनके साथ जानकी ऐसी प्रतीत होती थी, जैसे चार समुद्रोंसे धरती घिरी हुई हो ॥१-९॥

[११] तब एक दूसरेपर स्नेहसे जिसकी बुद्धि निबद्ध है ऐसा विन्ध्याचलका राजा बालिखिल्य रामके चरणकमलोंपर गिर पड़ा, उसी प्रकार जिस प्रकार नमि विनमि, ऋषभ जिनवरके चरणोंमें गिर पड़े थे। रामने स्वयं उसे अपने हाथसे उठाया, और उसे उसी प्रकार स्थापित कर दिया, 'जिस प्रकार मर्यादा समुद्रको स्थापित करती है। उन दोनोंको उन्होंने भरत-का सेवक बनाया। और शीघ्र ही अपने-अपने घर भेज दिया। वे तीनों पहाड़से इस प्रकार उतरे मानो भव्य भवदुःखोदरसे निकल आये हों, मानो मेरुनितम्बसे किन्नर निकल आये हों, मानो स्वर्गसे देव च्युत हुए हों, बिना किसी विलम्बके वे तापी नदीके किनारे पहुँचे। प्याससे पीड़ित वे वहाँ पानी पीते हैं कि जो सूर्यकी किरणोंसे नव-उष्ण था, दुष्टोंके द्वारा सताये गये अच्छे कुटुम्बकी भाँति था। दिनकरकी श्रेष्ठ किरणोंसे

घत्ता

दिणयर-वर-किरण-करम्बियउ जलु देवि सुएँहिँ परि-चुम्बियउ ।
पइसन्तु ण भावइ सुहडहोँ किह अण्णाणहोँ जिणवर-वयणु जिह ॥११॥

[१२]

पुणु ताव सरेप्पिणु णिग्गयाइँ । णं तिण्णि वि विज्झ-महागयाइँ ॥१॥
वइदेहि पजम्पिय हरि-बलहोँ । सुरवर-करि-कर-थिर-करयलहोँ ॥२॥
'जलु कहि मि गवेसहोँ णिम्मलउ । जं तिस-हरु हिम-ससि-सीयलउ ॥३॥
तं इच्छमि भविउ व जिण-वयणु । जिह णिव्वाणु जच्चन्धु व णयणु' ॥४॥
जलु घोरइ 'धीरी होहि घणेँ । मं कायरु मुहु करि मिगणयणेँ' ॥५॥
थोवन्तरु पुणु विहरन्तएँहिँ । मल्हन्तेँहिँ पउ पउ देन्तएँहिँ ॥६॥
लक्खिज्जइ अरुणगामु पुरउ । वय-बन्ध-विहूसिउ जिह सुरउ ॥७॥
कप्पद्दुमो व्व चउदिसु सुहलु । णट्टावउ व्व णाडय-कुसलु ॥८॥

घत्ता

तं अरुणगामु संपाइयइँ मुणिवर इव मोक्ख-तिसाइयइँ ।
सो णउ जणु जेण ण दिट्ठाइँ घरु कविलहोँ णवरि पइट्ठाइँ ॥९॥

[१३]

णिज्झाइउ तं घरु दियवरहोँ । णं परम-थाणु थिरु जिणवरहोँ ॥१॥
णिरवेक्खु णिरक्खरु केवलउ । णिम्माणु णिरञ्जणु णिम्मलउ ॥२॥
णिग्गन्थु णिरत्थु णिराहरणु । णिव्वणु णिक्कसउ णिम्महणु ॥३॥
तहिँ तेहएँ भवणेँ पइट्ठाइँ । थक्कु थक्कु जलु पिएँवि णिविट्ठाइँ ॥४॥
कुञ्जर इव गुहेँ आवासियइँ । हरिणा इव वाउत्तासियइँ ॥५॥

मिश्रित जल लेकर उन्होंने हाथोंसे चूमा, परन्तु प्रवेश करता हुआ वह मुखको उसी प्रकार अच्छा नहीं लगता, जिसप्रकार कि अज्ञानी व्यक्तिको जिनवरके वचन अच्छे नहीं लगते ॥१-९॥

[१२] फिर वे नदीको पार कर चल दिये, मानो तीनों ही, विन्ध्य महागज हों। ऐरावत महागजकी सूँडके समान स्थिर करतलवाले लक्ष्मण और रामसे सीता बोली—"कहीं भी स्वच्छ पानीकी खोज करो जो प्यास बुझानेवाला और हिमचन्द्रकी तरह शीतल हो। मैं उसे उसी प्रकार चाहती हूँ जिस प्रकार भव्य जिनवचनको चाहता है, निर्धन निधिको और जन्मान्ध नेत्रों को।" रामने उन्हें धीरज दिया—हे धन्ये, तुम धैर्य धारण करो, हे मृगनयनी, तुम अपने मुँहको कायर मत करो? थोड़ी दूरपर, विहार करते हुए, प्रसन्नतापूर्वक कदम रखते हुए, अरुण ग्रामको इस प्रकार देखा जैसे वयबन्ध (उद्यान और चर्म)से विभूषित मुरज हो, वह कल्पवृक्षकी तरह, चारों दिशाओंमें सुफल था, नटकी भाँति नाटकमें कुशल था। ग्रीष्मकी तृषासे व्याकुल मुनिवरोंके समान वे उस अरुणग्रामको पहुँचे। वहाँ एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं था जिसके द्वारा वे देखे न गये हों। वे जाकर कपिल द्विजके घरमें घुस गये ॥१-९॥

[१३] उन्होंने ब्राह्मणके उस घरको इस प्रकार देखा, मानो जिनवरका स्थिर परमस्थान हो। वह घर निर्वाणकी तरह, निरपेक्ष निरक्षर केवल (केवलज्ञान सहित, अकेला) निर्मान, निरंजन (अहंकार गौरवसे रहित, पाप, अंजिरसे रहित) निर्मल, निर्वस्त्र, निरर्थ, निराभरण, निर्धन निर्भक्त (भक्ति, भोजनसे रहित), निर्मथन (विनाशसे रहित) था। उस वैसे भवनमें उन्होंने प्रवेश किया। और शीघ्र ही पानी पीकर बाहर निकल आये। गुहामें रहनेवाले हाथी अथवा व्याधासे त्रस्त हरिणकी तरह जब तक वे एक क्षण बैठते हैं, तबतक कुपित

अच्छन्ति ताव तहिँ एक्कु खणु । दिउ ताव पराइउ कुइय-मणु ॥६॥
'मरु मरु णीसरु-णीसरु' भणन्तु । धूमद्धउ जेम पधगधगन्तु ॥७॥
मय-मासेण कुरङ्गु समिच्छइ जेम । वड्डु उग्गविस विण्णउ विसहरु जेम ॥८॥

घत्ता

'किं कालु कियन्तु मित्तु चरिउ किं केसरि केसरग्गेँ धरिउ ।
को जम-मुह-कुहरहोँ णीसरिउ जो अवणेँ महावएँ पइसरिउ' ॥९॥

[१४]

तं वयणु सुणेप्पिणु महुमहणु । आरुट्ठु समर-भर-उव्वहणु ॥१॥
णं धाइउ करि थिर-थोर-करु । उम्मूलिउ दियवरु जेम तरु ॥२॥
उग्गामेँ वि भामेँ वि गयणयलेँ । किर घिवइ पडीवउ धरणियलेँ ॥३॥
करेँ धरिउ ताव हलपहरणेँण । 'मुएँ मुएँ मा हणहि अकारणेँण ॥४॥
दिय-बाल-गोल-पसु-तवसि-तिय । छ वि परिहरु मेल्लेँवि माण-किय' ॥५॥
तं णिसुणेँवि दियवरु लक्खणेँण । णं मुक्कु अलक्खणु लक्खणेँण ॥६॥
ओसरिउ बीरु पच्छामुहउ । अङ्कुस-णिरुद्धु णं मत्त-गउ ॥७॥
पुणु हियएँ विसूरइ खणेँ जेँ खणेँ । 'सय-खण्ड-खण्डु वरि हूउ रणेँ ॥८॥

घत्ता

वरि पहरिउ वरि किउ तवचरणु वरि विसु हालाहलु वरि मरणु ।
वरि अच्छिउ गम्पिणु गुहिल-वणेँ णवि णिविसु वि णिवसिउ अबुहयणेँ' ॥९॥

[१५]

तो तिण्णि वि एम चवन्ताइँ । उम्माहउ जणहोँ जणन्ताइँ ॥१॥
दिण-पच्छिम-पहरेँ विणिग्गयाइँ । कुञ्जर इव विउल-वणहोँ गयाइँ ॥२॥
विच्छिण्णु रण्णु पइसन्ति जाव । णग्गोहु महादुमु दिट्ठु ताव ॥३॥
गुरु-वेसु करेँ वि सुन्दर-सराइँ । णं विहय पढावइ अक्खराइँ ॥४॥
कुक्कुड-किसलय क-का रवन्ति । वायसि-विहङ्ग कि-की भणन्ति ॥५॥

मन वह द्विज वहाँ आया। "मरो मरो निकलो निकलो," यह कहता हुआ, आगकी तरह धक-धक करता हुआ; भयसे भयंकर शनिश्चरकी तरह कठोर अत्यधिक विषवाले उदासीन विषधरकी तरह। क्या कृतान्तमित्र कालका वरण कर लिया है? क्या सिंहको उसकी अयालसे पकड़ लिया है, यमके मुख रूपी कुहरसे कौन निकल सका है? किसने हमारे घरमें प्रवेश किया है ॥१-९॥

[१४] वह वचन सुनकर, युद्धभारका निर्वाहक लक्ष्मण क्रुद्ध हो उठा, मानो स्थिर-स्थूल सूँडवाला गज दौड़ा और द्विजवरको वृक्षकी तरह उखाड़ा, उठाकर आकाशमें घुमाकर फिर वापस उसे धरती तलपर पटके, कि इतनेमें रामने उसका हाथ पकड़ लिया—"छोड़ो-छोड़ो अकारण इसे मत मारो। ब्राह्मण, बालक, गाय, पशु, तपस्वी और स्त्री इन छहको मानकिया छोड़कर बचा देना चाहिए।" यह सुनकर लक्ष्मणने द्विजवरको उसी प्रकार छोड़ दिया, जिस प्रकार लक्षणके द्वारा अलक्षण छोड़ा जाता है। वह वीर पीछे मुख करके हट गया। मानो अंकुशसे निरुद्ध मत्तगज हो। वह अपने मनमें क्षण-क्षण खेद करता है 'युद्धमें सौ टुकड़े हो जाना अच्छा, प्रहार करना अच्छा, तपश्चरण करना अच्छा; हलाहल विष अच्छा, मर जाना अच्छा; गहन वनमें चला जाना अच्छा परन्तु अपण्डितों-के मध्य एक पल भी निवास करना ठीक नहीं ॥१-९॥

[१५] वे तीनों इस प्रकार बातें करते हुए और लोगोंमें उन्माद पैदा करते हुए, दिनके अन्तिम प्रहरमें निकलकर हाथियोंके समान विशाल वनकी ओर चल दिये। जैसे ही वे विस्तृत अरण्यमें प्रवेश करते हैं, कि उन्हें वटका महावृक्ष दीख पड़ा, जो मानो गुरु (उपाध्याय) का रूप धारण कर पक्षियोंको सुन्दर स्वर अक्षर पढ़ा रहा हो। कौआ और किसलय क का

वण-कुक्कुड कु-क्कु आयरन्ति । अण्णु वि कलावि के-क्काइ चवन्ति ॥६॥
पियमाहवियउ को-क्कउ लवन्ति । कं-का वप्पीह समुल्लवन्ति ॥७॥
सो तरुवरु गुरु-गणहर-समाणु । फल-पत्त-वन्तु अक्खर-णिहाणु ॥८॥

घत्ता

पइसन्तेंहिँ असुर-विमद्दणेंहिँ सिरु णामेंवि राम-जणद्दणेंहिँ ।
परिअञ्चेंवि दुमु दसरह-सुएँहिँ अहिणन्दिउ मुणि व स इं भुएँहिँ ॥९॥

●

अट्ठावीसमो संधि

सीय स-लक्खणु दासरहि तरुवर-मूलें परिट्ठिय जावेंहिँ ।
पसरइ सु-कइहें कव्वु जिह मेह-जालु गयणङ्गणें तावेंहिँ ॥

[१]

पसरइ मेह-विन्दु गयणङ्गणें । पसरइ जेम सेण्णु समरङ्गणें ॥१॥
पसरइ जेम तिमिरु अण्णाणहों । पसरइ जेम बुद्धि बहु-जाणहों ॥२॥
पसरइ जेम पाउ पाविट्ठहों । पसरइ जेम धम्मु धम्मिट्ठहों ॥३॥
पसरइ जेम जोण्ह मयवाहहों । पसरइ जेम कित्ति जगणाहहों ॥४॥
पसरइ जेम चिन्त धण-हीणहों । पसरइ जेम कित्ति सुकुलीणहों ॥५॥
पसरइ जेम सद्दु सुर-तूरहों । पसरइ जेम रासि णहें सूरहों ॥६॥
पसरइ जेम दवग्गि वणन्तरें । पसरइ मेह-जालु तिह अम्बरें ॥७॥
तडि तडयडइ पडइ घणु गज्जइ । जाणइ रामहों सरणु पवज्जइ ॥८॥

घत्ता

अमर-महाधणु-गहिय-करु मेह-गइन्दें चडेवि जस-लुद्धउ ।
उप्परि गिम्भ-णराहिवहों पाउस-राउ णाइँ सण्णद्धउ ॥९॥

उच्चारण करते हैं, वाचली विहंग कि की कहते हैं। वनमुर्गी कुकू का उच्चारण करते हैं; और भी मयूर केकै कहता है। (प्रिय माधविका (कोयल) को को पुकारती है; चातक कं का उच्चारण करते हैं। वह वृक्ष गुरुगणधरके समान फल पत्रोंसे सहित और अक्षरोंका निधान था। असुरोंका विमर्दन करनेवाले दशरथ पुत्र राम और लक्ष्मणने उस वनमें प्रवेश करते हुए, सिरसे प्रणामकर प्रदक्षिणाकर अपनी भुजाओंसे मुनिके समान उस वृक्षका अभिनन्दन किया ॥१-९॥

●

अट्ठाईसवीं सन्धि

जैसे ही सीता-सहित राम और लक्ष्मण तरुवरके मूलमें बैठे, वैसे ही मेघजाल, सुकविके काव्यकी तरह आकाशमें फैलने लगता है।

[१] आकाशके आंगनमें मेघ-समूह वैसे ही फैलता है जैसे समरांगणमें सैन्य फैलता है। जिस प्रकार अज्ञानीमें अन्धकार फैलता है, जिस प्रकार बहुज्ञानीमें बुद्धिका प्रसार होता है, जिस प्रकार पापिष्ठमें पापका प्रसार होता है, जिस प्रकार धर्मिष्ठमें धर्मका प्रसार होता है, जिस प्रकार चन्द्रमाकी चाँदनीका प्रसार होता है, जिस प्रकार विश्वनाथकी कीर्तिका प्रसार होता है, जिस प्रकार धनहीनकी चिन्ताका प्रसार होता है, जिस प्रकार सुकुलीनकी कीर्तिका प्रसार होता है, जिस प्रकार देवतूर्यके शब्दका प्रसार होता है, जिस प्रकार आकाश-में सूर्यकी राशिका प्रसार होता है, जिस प्रकार वनमें दावानल-का प्रसार होता है, उसी प्रकार आकाशमें मेघजालका प्रसार होता है। बिजली तड़तड़ गिरती है, मेघ गरजता है, और जानकी रामकी शरणमें जाती है। जिसने इन्द्रधनुष अपने हाथमें ले लिया है ऐसा यशका लोभी पावसरूपी राजा मेघरूपी

[२]

जं पाउस-णरिन्दु गलगज्जिउ । धूली-रउ गिम्भेण विसज्जिउ ॥१॥
गम्पिणु मेह-विन्दें आलग्गउ । तडि-करवाल-पहारेंहिँ भग्गउ ॥२॥
जं विवरम्मुहु चलिउ विसालउ । उट्ठिउ 'हणु' भणन्तु उण्हालउ ॥३॥
धगधगधगधगन्तु उद्धाइउ । हसहसहसहसन्तु संपाइउ ॥४॥
जलजलजलजलजल पचलन्तउ । जालावलि-फुलिङ्ग मेल्लन्तउ ॥५॥
धूमावलि-धयदण्डुब्भेप्पिणु । वर-वाउलि-खग्गु कड्ढेप्पिणु ॥६॥
झडझडझडझडन्तु पहरन्तउ । तरुवर-रिउ-भड-थड भज्जन्तउ ॥७॥
मेह-महागय-घड विहडन्तउ । जं उण्हालउ दिट्ठु भिडन्तउ ॥८॥

घत्ता

धणु अप्फालिउ पाउसेंण तडि-टङ्कार-फार दरिसन्तें ।
चोऍवि जलहर-हत्थि-हड णीर-सरासणि मुक्क तुरन्तें ॥९॥

[३]

जल-बाणासणि-घायहिँ घाइउ । गिम्भ-णराहिउ रणें विणिवाइउ ॥१॥
दद्दुर रडेंवि लग्ग णं सज्जण । णं णच्चन्ति मोर खल दुज्जण ॥२॥
णं पूरन्ति सरिउ अक्कन्दें । णं कइ किलकिलन्ति आणन्दें ॥३॥
णं परहुय विमुक्क उग्घोसें । णं वरहिण लवन्ति परिओसें ॥४॥
णं सरवर बहु-अंसु-जलोल्लिय । णं गिरिवर हरिसें गञ्जोल्लिय ॥५॥
णं उण्हविअ दवग्गि विओएं । णं णच्चिय महि विविह-विणोएं ॥६॥
णं अत्थमिउ दिवायरु दुक्खें । णं पइसरइ रयणि सइँ सुक्खें ॥७॥
रत्त-पत्त तरु पवणाकम्पिय । 'केण वि वहिउ गिम्भु' णं जम्पिय ॥८॥

महागजपर चढ़कर मानो ग्रीष्म नराधिपके ऊपर (आक्रमणके लिए) सन्नद्ध हो ॥१-९॥

[२] जब पावस राजा गरजा तो ग्रीष्मके द्वारा मुक्त धूलि-समूह जाकर मेघसमूहसे जा लगा। उसे बिजलीरूपी तलवारोंके प्रहारोंसे नष्ट कर दिया गया। यह विशाल धूलि-समूह जब उलटा मुँह कर चला, तो उष्णकाल, 'मारो' कहता हुआ उठा। धक-धक-धक करता हुआ वह दौड़ा। हस-हस-हस करता हुआ पहुँचा। जल-जल-जल करते हुए चलता हुआ, ज्वालावलियाँ और चिनगारियाँ छोड़ता हुआ, धूम्रावलिके ध्वजदण्डको उठाकर श्रेष्ठ वातोलिकी तलवारको निकालकर, झड़-झड़-झड़ करते हुए प्रहार कर तरुवररूपी भट समूहको भग्न करते हुए मेघरूपी महागजकी घटाको विघटित करते हुए, उष्णकालको जब लड़ते हुए देखा तो बिजलीकी टंकारका विस्तार दिखाते हुए पावसने अपना धनुष चढ़ा लिया। मेघरूपी गजघटाको प्रेरित कर उसने तुरन्त जलरूपी तीरपंक्ति छोड़ी ॥१-९॥

[३] जलके बाणवर्षोंके आघातोंसे घायल होकर ग्रीष्मरूपी नरेश्वर युद्धमें धराशायी हो गया। उसके पतनसे मेंढक मानो सज्जनोंकी भाँति टर्र-टर्र करने लगा। मयूर नाचने लगे मानो दुष्ट दुर्जन हों। आनन्दसे नदियाँ भर उठीं मानो कवि आनन्दसे किलकिला रहे हों। मानो कोयल उद्घोषसे मुक्त हो गयी, मानो मयूर परितोषसे बोल रहे हैं, मानो सरोवर वधुओंके अश्रुजलोंसे आर्द्र हो उठे हैं, मानो गिरिवर हर्षसे पुलकित हो उठे। मानो वियोगसे दावानल शान्त हो गया। मानो धरती विविध विनोदोंसे नाच उठी। मानो दिवाकर दुःखसे अस्त हो गया। मानो रात्रि सुखसे प्रवेश कर रही हो। पेड़ लाल पत्तोंवाले हो गये और हवासे प्रकम्पित हो उठे

घत्ता

तेहएँ कालेँ भयाउरएँ वेण्णि मि वासुएव-बलएव ।
तरुवर-मूलेँ स-सीय थिय जोगु लएविणु मुणिवर जेम ॥९॥

[४]

हरि-बल रुक्ख-मूलेँ थिय जावेँहिँ । गयमुहु जक्खु पणासेँवि तावेँहिँ ॥१॥
गउ णिय-णिवहोँ पासु वेवन्तउ । 'देव देव परित्ताहि' भणन्तउ ॥२॥
'णउ जाणहुँ किं सुरवर किं णर । किं विज्जाहर-गण किं किण्णर ॥३॥
धणुधर धीर चडावउ ढुक्केँवि । सुत्त महारउ णिलउ णिरुम्भेँवि' ॥४॥
तं णिसुणेविणु वयणु महाइउ । पूयणु भम्भीसन्तु पधाइउ ॥५॥
विउल-महीहर-सिहरहोँ आइउ । लक्खणँ तं उद्देसु पराइउ ॥६॥
राम णिहालिय वेण्णि वि दुद्धर । सायर-वज्जावत्त-धणुद्धर ॥७॥
अवही-णाणु पउञ्जइ जावेँहिँ । लक्खण-राम मुणिय मणेँ तावेँहिँ ॥८॥

घत्ता

पेक्खेँवि हरि-बल वे वि जण पूयण-जक्खेँ जय-जस-लुद्धेँ ।
मणि-कञ्चण-धण-जण-पउरु पट्टणु किउ णिमिसद्धहोँ अद्धेँ ॥९॥

[५]

पुणु रामउरि पदोसिय लोएँ । णं णारिहेँ अणुहरिय णिओएँ ॥१॥
दीहर-पन्थ-पसारिय-चलणी । कुसुम-णियत्थ-वत्थ-साहरणी ॥२॥
खाइय-तिवलि-तरङ्ग-विहूसिय । गोउर-थणहर-सिहर-पदीसिय ॥३॥
विउलाराम-रोम-रोमञ्चिय । इन्दगोव-सय-कुङ्कुम-अञ्चिय ॥४॥
गिरिवर-सरिय-पसारिय-बाही । जल-फेणावलि-वलय-सणाही ॥५॥
सरवर-णयण-घणञ्जण-अञ्जिय । सुरधणु-भउह-पदीसिय-पञ्जिय ॥६॥

मानो वे कह रहे थे कि किसीने भीष्मका वध कर दिया। भयातुर उस कालमें वासुदेव और बलदेव दोनों, तरुवरके मूलमें सीताके साथ, मुनिवरके समान योग लेकर स्थित हो गये ॥१-९॥

[४] जब राम और लक्ष्मण वृक्षके नीचे बैठे थे तब गजमुख यक्ष भागकर अपने स्वामीके पास काँपता हुआ 'हे देव, रक्षा कीजिए' यह कहता हुआ गया। "मैं नहीं जानता कि वे सुरवर हैं या कि मनुष्य। क्या विद्याधर गण हैं या कि किन्नर। दो भीर धनुर्धर ऊपर चढ़ आये हैं और हमारे घरको अवरुद्ध कर सो गये हैं।" यह वचन सुनकर आदरणीय पूतन यक्ष 'अभय वचन' देता हुआ दौड़ा। विन्ध्यमहीधरके शिखरसे आया और तत्काल उस लक्ष्यस्थानपर पहुँच गया। वहाँ उसने समुद्रावर्त और वज्रावर्त धनुषोंको धारण करनेवाले उन दोनों धुरन्धरोंको देखा। जैसे ही वह अवधिज्ञानका प्रयोग करता है वैसे ही जान लेता है कि ये राम और लक्ष्मण हैं। राम और लक्ष्मण दोनोंको देखकर जय और यशके लोभी पूतन यक्षने मणि, स्वर्ण, धन और जनसे प्रचुर नगर आधे पलमें निर्मित कर दिया ॥१-९॥

[५] फिर, लोगोंने उसे रामपुरी घोषित किया। रचनामें वह नारीकी तरह प्रतीत होती थी। जो लम्बे रास्तोंरूपी फैले हुए पैरोंवाली थी, जो कुसुमके पहने गये वस्त्रोंसे संवृत थी, जो खाईरूपी त्रिवलि तरंगोंसे विभूषित थी, जो गोपुरके स्तनरूपी शिखरोंको दिखानेवाली थी, जो विपुल उद्यानरूपी रोमोंसे पुलकित थी, इन्द्रगोपरूपी सैकड़ों केशरोंसे अंचित थी, जो गिरिवरकी नदियाँरूपी बाँहें प्रसारित किये हुए थी, जो जलकी फेनावलीरूपी वलयनाभिसे युक्त थी, जिसके सरोवर-रूपी नेत्र घनरूपी अंजनसे अंचित थे, जिसकी इन्द्रधनुषरूपी

देउल-णयण-कमलु दरिसेप्पिणु । वर-मयलञ्छण-तिलउ छुहेप्पिणु ॥७॥
णाइँ णिहालइ दिणयर-दप्पणु । एम विणिम्मिउ सयलु वि पट्टणु ॥८॥
वइसेँ वि मज्झेँ पासेँ वीसत्थउ । आलावइ आलावणि-हत्थउ ॥९॥

घत्ता

एक्कवीस-वर-मुच्छणउ सत्त वि सर ति-गाम दरिसन्तउ ।
'वुज्झि भडारा दासरहि सुप्पहाउ तउ' एम भणन्तउ ॥१०॥

[६]

सुप्पहाउ उच्चारिउ जावँहिँ । रामेँ वलेँ वि पलोइउ तावँहिँ ॥१॥
दिट्ठु णयरु जं जक्ख-समारिउ । णाइँ णहङ्गणु सूर-विहूसिउ ॥२॥
स-धणु स-कुम्भु स-सवणु स-सङ्कउ । स-बुद्धु स-तारउ स-गुरु स-सङ्कउ ॥३॥
पुणु वि पडीवउ णयरु णिहालिउ । णाइँ महावणु कुसुमोमालिउ ॥४॥
णाइँ सुकइहेँ कव्वु पयइत्थिउ । णाइँ णरिन्द-चित्तु बहु-चित्तउ ॥५॥
णाइँ सेण्णु रहवरहँ अमुक्कउ । णाइँ विवाह-गेहु स-चउक्कउ ॥६॥
णाइँ सुरउ चच्चरि-परियालउ । णावइ डिम्भउ अहिय-छुआलउ ॥७॥
अह किं वण्णिएण खणेँ जे खणेँ । तिहुअणेँ णत्थि जं पि तं पट्टणेँ ॥८॥

घत्ता

तं पेक्खेप्पिणु रामउरि भुअण-सहास-विणिग्गय-णामहोँ ।
सम्भुद्धु उज्झाउरि-णयरु जाय महन्त भन्ति मणेँ रामहोँ ॥९॥

भौंहोंसे प्रकृष्ट अंजनको दिखा रही थी ? देवकुलरूपी मुख-कमलोंको दिखाकर, श्रेष्ठ चन्द्ररूपी तिलक लगाकर, जो दिनकर-रूपी दर्पण देख रही थी। इस प्रकार इस यक्षने समूचा नगर बनाया। रामके निकट बैठकर जिसके हाथमें वीणा है, ऐसा वह यक्ष विश्वस्त होकर आलाप करता है—इक्कीस श्रेष्ठ मूर्च्छनाएँ, सात स्वर और तीन ग्रामोंका प्रदर्शन करता हुआ, 'हे आदरणीय राम ! यह तुम्हारा प्रभात समझो' यह कहता हुआ ॥१-१०॥

[६] जैसे ही उसने सुप्रभातका उच्चारण किया, वैसे ही रामने मुड़कर देखा। यक्ष द्वारा निर्मित वह नगर दिखाई दिया जो आकाशरूपी आँगनके समान सूर्यसे विभूषित था। (आकाशकी तरह) वह सधन (धनुष और धनसे सहित), सकुम्भ (कुम्भ राशि और घड़ासे सहित); ससवणु (श्रवण नक्षत्र, श्रमण मुनिसे सहित); ससंक (चन्द्रमा, मृगसे सहित) सुबुध (नक्षत्र और पण्डितसे सहित); सतार (तारे, तारक सहित), सगुरु (गुरु नक्षत्र, उपाध्याय और चन्द्रमासे सहित) था। उन्होंने दुबारा लौटकर नगर देखा जैसे कुसुमोंसे व्याप्त महावन हो; जैसे सुकविका पयइत्तिउ (पद, प्रजासे युक्त) काव्य हो। जैसे बहुचित्त (नाना प्रकारके चित्र, अनेक चित्तों-वाला) राजाका चित्त हो। जैसे रथवरोंसे अमुक्त सैन्य हो, जैसे चौक सहित विवाहका घर हो, जो सम्भोगके समान चच्चरीचरियालउ (हाथीकी ताली और चेष्टा, गीत विशेष और मार्गोंसे सहित था) मञ्चेकी तरह जो अधिक छुआलउ (अत्यधिक भूखा, चूनेसे पुता हुआ) हो। अथवा क्षण-क्षणमें उसके वर्णनसे क्या ? जो उस नगरमें था, वह त्रिभुवनमें भी नहीं था। उस रामपुरीको देखकर हजारों भुवनोंमें प्रसिद्ध नाम रामके मनमें भ्रम हो गया कि शायद यह अयोध्यापुरी

[७]

जं किउ विम्भउ सासय-लच्छें । तुट्ठु णवेप्पिणु पुअण-जक्खें ॥१॥
'तुम्हारउ वण-वसणु णिएप्पिणु । किउ मइँ पट्टणु माउ धरेप्पिणु' ॥२॥
एम भणेवि सुविसय-णामहों । दिण्ण सुघोस वीण तें रामहों ॥३॥
दिण्णु मउडु साहरणु विलेवणु । मणि-कुण्डल कडिसुत्तउ कङ्कणु ॥४॥
पुणु वि पजम्पिउ जक्ख-पहाणउ । 'हउँ तउ भिच्चु देव तुहुँ राणउ' ॥५॥
एव बोल्लु णिम्माइय जावेंहिं । कविलें णयरु णिहालिउ तावेंहिं ॥६॥
जण-मणहरु सुर-सग्ग-समागउ । वासवपुरहों वि खण्डइ माणउ ॥७॥
तं पेक्खेंवि आसङ्किउ बम्भणु । 'कहिँ वित्थिण्णु रण्णु कहिँ पट्टणु' ॥८॥

घत्ता

थहरन्तु भय-मारुएँण समिहउ घिवेंवि पणासइ जावेंहिं ।
मम्भीसन्ति मियङ्कमुहि पुरउ स-माय जक्खि थिय तावेंहिं ॥९॥

[८]

'हे दियवर चउवेय-पहाणा । किण्ण सुणहि रामउरि अयाणा ॥१॥
जण-मण-वल्लहु राहव-राणउ । मत्तगइन्दु व पगलिय-दाणउ ॥२॥
तक्कुव-भमर-सएहिँ ण मुच्चइ । देइ असेसु वि जं जसु रुच्चइ ॥३॥
जोयइ (?) जिणवर-णामु लएइ । तहो कड्ढेप्पिणु पाणइँ देइ ॥४॥
एउ जं वासव-दिसएँ विसालउ । दीसइ तिहुअण-तिलउ-जिणालउ ॥५॥
तहिँ जो गम्पि करइ जयकारु । पट्टणें णवरि तासु पइसारु' ॥६॥
तं णिसुणेप्पिणु दियवरु धाइउ । णिविसें जिणवर-भवणु पराइउ ॥७॥
तें चारित्तसूरु मुणि वन्देंवि । विणउ करेंवि अप्पाणउ णिन्देंवि ॥८॥

घत्ता

पुच्छिउ मुणिवरु दियवरेंण 'दाणहों कारणें विणु सम्मत्तें ।
धम्में लइएं कवणु फलु एउ देव महु अक्खि पयत्तें ॥९॥

नगरी हो ॥१-९॥

[७] जब शाश्वत लक्ष्यवाले रामने विस्मय किया तो पूतन यक्षने नमस्कार कर कहा—"तुम्हारा वनवास जानकर भाव धारण कर मैंने नगरकी रचना की" यह कहकर उस यक्षने सुविस्तृतनाम रामको सुघोष नामकी वीणा दी। आभरण सहित मुकुट विलेपन, मणिकुण्डल, कटिसूत्र और कंकण दिये। वह यक्ष प्रमुख फिर कहता है—"हे देव, मैं आपका अनुचर हूँ और आप राजा ।" इस प्रकार जबतक उसने ये शब्द कहे तबतक कपिलको वह नगर दिखाई दिया कि जो जनोंके लिए सुन्दर और देवस्वर्गके समान था। वह इन्द्रपुरीका भी मान खण्डित करता था। उसे देखकर ब्राह्मण शंकामें पड़ गया कि कहाँ विस्तीर्ण वन और कहाँ नगर! भयरूपी हवासे थर-थर काँपता हुआ जबतक वह समिधा (सूखी लकड़ियाँ) लेकर भागता है, तबतक 'डरो मत' यह कहती हुई चन्द्रमुखी ममतामयी यक्षिणी सामने आकर स्थित हो गयी ॥१-९॥

[८] "हे चारों वेदोंमें प्रधान अज्ञानी द्विजवर, क्या तुम रामपुरीको नहीं जानते? जन मनके प्रिय राघव राजा हैं जो मतवाले हाथीकी तरह प्रगलितदान (मदजल झरनेवाला, दान देनेवाला) हैं, जो याचकरूपी सैकड़ों भ्रमरोंसे नहीं छोड़े जाते, जिसके लिए जो अच्छा लगता है, वह उसे सब कुछ दे देते हैं। जो जिनवरका नाम लेता है, उनके दर्शन करता है, उसे वे अपने प्राण तक निकालकर दे देते हैं। यह जो पूर्व दिशामें विशाल त्रिभुवनतिलक जिनमन्दिर दिखाई देता है, वहाँ जाकर जो जयकार करता है, नगरमें केवल उसीको प्रवेश दिया जाता है।" यह सुनकर द्विजवर दौड़ा और एक पलमें जिनवर-भवन पहुँचा। वहाँ चारित्रसूरि मुनिकी वन्दना-विनय कर और अपनी निन्दा कर द्विजवरने मुनिवरसे पूछा कि

[९]

मुणिवरु कहेँ वि लग्गु 'चिउलाइँ । किं जणेँ ण णियहि धम्मफलाइँ ॥१॥
धम्में गइ-घड हय गय सन्दण । पावें मरण-विओयक्कन्दण ॥२॥
धम्में सग्गु भोग्गु सोहग्गु । पावें रोग्गु सोग्गु दोहग्गु ॥३॥
धम्में रिद्धि विद्धि सिय संपय । पावें अत्थ-हीण णर विहय ॥४॥
धम्में कडय-मउड कडिसुत्ता । पावें णर दालिद्देँ भुत्ता ॥५॥
धम्में रज्जु करन्ति णिरुत्ता । पावें पर-पेसण-संजुत्ता ॥६॥
धम्में वर-पल्लङ्कें सुत्ता । पावें तिण-संथारेँ विभुत्ता ॥७॥
धम्में णर देवत्तणु पत्ता । पावें णरय-घोरेँ संकन्ता ॥८॥
धम्में णर रमन्ति वर-विलयउ । पावें दूहविउ दुह-णिलयउ ॥९॥
धम्में सुन्दरु अङ्गु णिबद्धउ । पावें पङ्गुलउ वि बहिरन्धउ ॥१०॥

घत्ता

धम्म-पाव-कप्परुहुमहुँ आयइँ जस-अवजस-बहुलाइँ ।
वेण्णि मि असुह-सुहङ्करइँ जाइँ णियइँ लइ ताइँ फलाइँ' ॥११॥

[१०]

मुणिवर-वयणेँहिँ दियवरु वासिउ । लइउ धम्मु जो जिणवरेँ भासिउ ॥१॥
पञ्चाणुव्वय लेवि पधाइउ । णिय-मन्दिरु णिविसेण पराइउ ॥२॥
गम्पिणु पुणु सोम्महेँ वज्जरियउ । 'अज्जु महन्तु दिट्ठु अच्छरियउ ॥३॥
कहिँ वणु कहिँ पट्टणु कहिँ राणउ । कहिँ मुणि दिट्ठु अणेयहँ जाणउ ॥४॥
कहिँ मइ कहिँ लद्धइँ जिण-वयणइँ । वहिरेँ कण्णऽन्धेण व णयणइँ' ॥५॥

"बिना सम्यक्त्वके केवल दानके लिए धर्म ग्रहण करनेका क्या फल है, प्रयत्नपूर्वक यह मुझे बताइये" ॥१-७॥

[९] मुनिवरने कहना शुरू किया—"क्या तुम लोगोंमें विपुल धर्मफल नहीं देखते। धर्मसे भटसमूह, अश्व, गज और रथ होते हैं, पापसे मरण, वियोग और आक्रन्दन। धर्मसे स्वर्गभोग और सौभाग्य मिलता है, पापसे रोग, शोक और दुर्भाग्य। धर्मसे ऋद्धि, वृद्धि, श्री और सम्पत्ति होती है, पापसे मनुष्य अर्थहीन और क्रूर। धर्मसे कटक, मुकुट और कटिसूत्र होते हैं, पापसे मनुष्य दारिद्र्यका भोग करता है। धर्मसे निश्चय ही राज्य करते हैं और पापसे दूसरोंकी सेवासे संयुक्त होना पड़ता है। धर्मसे उत्तम पलंगपर सोते हैं, पापसे तिनकोंकी सेजको भोगना पड़ता है। धर्मसे मनुष्य देवत्व प्राप्त करते हैं, पापसे घोर नरकमें संक्रमण होता है। धर्मसे नर उत्तम घरोंमें रमण करते हैं, पापसे दुर्भग, दुर्निलयोंमें जाना पड़ता है। धर्मसे शरीरकी रचना सुगठित होती है, पापसे लँगड़ा, बहिरा और अन्धा होता है। धर्म और पापरूपी कल्पवृक्षोंके इन यश और अपयशसे बहुल, दोनों प्रकारके शुभ-अशुभ करनेवाले जितने प्रिय फल हैं, उन्हें ग्रहण करो" ॥१-११॥

[१०] मुनिवरके वचनोंसे द्विजवर सन्तुष्ट हो गया, और जो जिनवरके द्वारा भाषित धर्म था, उसने वह ग्रहण कर लिया। पाँच अणुव्रत लेकर वह दौड़ा, और एक पलमें अपने घर पहुँचा। जाकर उसने फिर सोमासे कहा कि "आज मैंने महान् आश्चर्य देखा। कहाँ वन, कहाँ नगर और कहाँ राना? और कहाँ अनेकोंके ज्ञाता मुनिको देखा? कहाँ मैं, और कहाँ मैंने बहिरेके कान एवं अन्धेके नेत्रोंकी तरह, जिनवचन प्राप्त किये।" यह सुनकर सोमा पुलकित हो उठी। "हे स्वामी!

तं णिसुणेवि सोम्म णक्खोलिय । 'अम्हहुँ णाहु तहिँ' एम पबोल्लिय ॥६॥
पुणु संचल्लइँ बे वि तुरन्तइँ । तिहुयण-तिलउ जिणालउ पत्तइँ ॥७॥
साहु णवेप्पिणु पासेँ णिविट्ठइँ । धम्मु सुणेप्पिणु णयरेँ पइट्ठइँ ॥८॥

घत्ता

दिट्ठु णरिन्दत्थाणु णहु जाणइ-मन्दाइणि-परिचड्डिउ ।
णर-णक्खत्तहिँ परियरिउ हरि-बल-चन्द-दिवायर-मण्डिउ ॥९॥

[११]

हरि अत्थाण-मग्गेँ जं दिट्ठउ । दियवरु पाण लएवि पणट्ठउ ॥१॥
णट्ठु कुरङ्गु व वारणवारहोँ । णट्ठु जिणिन्दु व भव-संसारहोँ ॥२॥
णट्ठु मियङ्कु व अवमपिसायहोँ । णट्ठु हुवग्गि व णीर-णिहायहोँ ॥३॥
णट्ठु भुअङ्गु व गरुड-विहङ्गहोँ । णट्ठु खरो व्व मत्त-मायङ्गहोँ ॥४॥
णट्ठु अणङ्गु व सासय-गमणहोँ । णट्ठु महाघणो व्व खर-पवणहोँ ॥५॥
णट्ठु महीहरो व्व सुर-कुलिसहोँ । णट्ठु तुरङ्गमो व्व जम-महिसहोँ ॥६॥
तिह णासन्तु पदीसिउ दियवरु । सम्भीसन्तु पधाइउ सिरिहरु ॥७॥
मण्डु धरेवि करेण करग्गएँ । गम्पि थित्तु बलएवहोँ अग्गएँ ॥८॥
दुक्खु दुक्खु अप्पाणउ धीरेँ वि । सयलु महब्भउ मणेँ अवहेरेँ वि ॥९॥
दुद्दम-दाणविन्द-बल-मद्दहोँ । पुणु आसीस दिण्ण बलहद्दहोँ ॥१०॥

घत्ता

'जेम समुद्दु महाजलेँण जेम जिणेसरु सुकिय-कम्में ।
चन्द-कुन्द-जस-णिम्मलेँण तिह तुहुँ वड्ढु णराहिव धम्में' ॥११॥

[१२]

ता एत्थन्तरेँ पर-बल-मद्दणु । कहकह-सद्दें हसिउ जणद्दणु ॥१॥
भवणेँ पइट्ठ तुहारएँ जइयहुँ । पइँ अवगण्णेँ वि घल्लिय तइयहुँ ॥२॥
एत्थु कालेँ पुणु दियवरु कीसा । विणउ करेँ वि पुणु दिण्ण असीसा ॥३॥

वहाँ जाओ !" वह इस प्रकार बोली। फिर वे तुरन्त वहाँ चले। वे त्रिभुवनतिलक जिनालयपर पहुँचे। मुनिको प्रणाम कर पास बैठ गये। धर्म सुनकर उन्होंने नगरमें प्रवेश किया। उन्होंने जानकीरूपी गंगासे युक्त राजाका आस्थानरूपी आकाश देखा, नररूपी नक्षत्रोंसे घिरा हुआ तथा राम और लक्ष्मणरूपी सूर्य-चन्द्रमासे मण्डित ॥१-९॥

[११] जैसे ही आस्थानमार्गमें लक्ष्मण दिखाई दिया, वैसे ही द्विजवर अपने प्राण लेकर भागा। जैसे सिंहके आक्रमणसे हरिण भागता है, जैसे भवसंसारसे जिनेन्द्र भागते हैं, बादल-रूपी पिशाचसे चन्द्रमा नष्ट होता है, जैसे नीर समूहसे अग्नि नष्ट हो जाती है, जैसे गरुड़ पक्षीसे सर्प नष्ट होता है, जैसे गधा मत्त मातंगसे नष्ट हो जाता है, जैसे काम मोक्षगमनसे नष्ट हो जाता है, जैसे महामेघ खरपवनसे नष्ट हो जाता है, जैसे पहाड़ देववज्रसे नष्ट हो जाता है, जैसे यम-महिषसे तुरंगम नष्ट हो जाता है उसी प्रकार द्विजवर पलायन करता हुआ दिखाई दिया। लक्ष्मण उसे अभय वचन देते हुए दौड़े। हाथके अग्रभागमें बलपूर्वक पकड़कर ले जाकर उसे बलदेवके सामने डाल दिया। बड़ी कठिनाईसे अपनेको धीरज बँधाकर मनमें समस्त महाभयकी उपेक्षा कर उसने पुनः दुर्दमनीय दानवेन्द्रोंके बलका मर्दन करनेवाले रामको आशीर्वाद दिया। जिस प्रकार महाजलसे समुद्र, जिस प्रकार पुण्य कर्मसे जिनेश्वर, उसी प्रकार हे राजन्! तुम भी चन्द्रकुन्दके समान यशसे निर्मल धर्मसे बढ़ो ॥१-११॥

[१२] तब इसी बीच शत्रुबलका मर्दन करनेवाला लक्ष्मण ठहाका लगाकर हँसा कि "जब हम तुम्हारे घरमें घुसे थे तो तुमने अवहेलना करके निकाल दिया था। इस समय हे द्विजवर, किस प्रकार तुमने प्रणाम करके आशीर्वाद दिया ?"

तं णिसुणेवि भणइ वेयायरु । अत्थहों को ण वि करइ सहायउ ॥४॥
जिह आणन्दु जणइ सीयालएँ । एत्थु ण हरिसु विसाउ करेवउ ॥५॥
काल-वसेण कालु वि सहेवउ । एत्थु ण हरिसु विसाउ करेवउ ॥६॥
अत्थु विलासिणि-जण-मण-वल्लहु । अत्थ-विहूणउ धुवइ वल्लहु ॥७॥
अत्थु वियड्ढु अत्थु गुणवन्तउ । अत्थ-विहूणु भमइ मग्गन्तउ ॥८॥
अत्थु अणङ्गु अत्थु जगें सूहउ । अत्थ-विहूणु दीणु णरु दूहउ ॥९॥
अत्थु सइच्छिउ भुञ्जइ रज्जु । अत्थ विहूणें किं पि ण कज्जु' ॥१०॥

घत्ता

'साहु' भणन्तें राहवेंण इन्दणील-मणि-कञ्चण-खण्डेंहिं ।
कडय-मउड-कडिसुत्तयहिँ पुज्जिउ कविलु स इं भुव-दण्डेहिँ ॥११॥

●

एगुणतीसमो संधि

सुरडामर-रिउ-डमरकर कोवण्ड-धर सहुँ सीयएँ चलिय महाइय ।
बल-णारायण बे वि जण परितुट्ठ-मण जीवन्त-णयरु संपाइय ॥

[१]

पट्टणु तिहि मि तेहिँ आवज्जिउ । दिणयर-बिम्बु व दोस-विवज्जिउ ॥१॥
णवर होइ जइ कम्पु भयस्सु । हउ तुरयस्सु अणच्छु सुरयस्सु ॥२॥
घाउ मुरवेसु । भङ्गु चिहुरेसु ॥३॥
जड णट्टेसु । मलिणु चन्देसु ॥४॥
खलु खेत्तेसु । दण्डु छत्तेसु ॥५॥
(बहु-) कर गहणेसु । पहरु दिवसेसु ॥६॥
मउ दाणेसु । चिन्त झाणेसु ॥७॥
सुर सग्गेसु । सीहु रण्णेसु ॥८॥

यह सुनकर वेदोंका आदर करनेवाला वह ब्राह्मण कहता है कि संसारमें धनका सम्मान कौन नहीं करता। जिस प्रकार लक्ष्मीके घरमें आनन्द होता है, अर्थ वैसा आनन्द देता है। इसमें हर्ष विषाद नहीं करना चाहिए। कालके अधीन कालको भी सहन करना पड़ता है इसमें हर्ष-विषाद नहीं करना चाहिए। अर्थ विलासिनियोंके समूहको प्रिय होता है। अर्थ-रहित मनुष्य छोड़ दिया जाता है। अर्थ पण्डित है, अर्थ गुण-वान् है, अर्थसे रहित व्यक्ति माँगता हुआ घूमता है। अर्थ कामदेव है, अर्थ विश्वमें सुभग है। अर्थरहित मनुष्य दीन और दुर्भग होता है। अर्थ अपनी इच्छाके अनुसार राज्यका भोग करता है। अर्थसे रहित व्यक्तिके लिए कोई काम नहीं है। तब साधु कहकर रामने इन्द्रनील मणि और स्वर्णखण्डों, कटकमुकुट और कटिसूत्रोंके द्वारा कपिलकी अपने हाथोंसे पूजा की ॥१-११॥

●

उनतीसवीं सन्धि

देवोंके लिए भयंकर और शत्रुका नाश करनेवाले धनुर्धारी और सन्तुष्ट मन आदरणीय राम और लक्ष्मण दोनों ही सीताके साथ चले और जीवंत नगर पहुँच गये।

[१] वहाँ भी उन्होंने उस नगरको देखा जो सूर्यबिम्बकी तरह दोष-विवर्जित (दोष और रात्रिसे रहित) था। जहाँ केवल कम्प ध्वजोंमें, घाव घोड़ोंमें, युद्ध सुरतियोंमें, जड (जटा—मूर्खता) रुद्रोंमें, मलिनता चन्दनमें, खल खेतोंमें, दण्ड छत्रोंमें, अनेक फरोंको ग्रहण करनेवाले दिवसोंमें पहर (प्रहर—प्रहार); धन दानोंमें, चिन्ता ध्यानोंमें, सुर (सुरा—सुर) स्वर्गोंमें,

कण्हु गएसु अङ्कु कव्वेसु ॥९॥
वरु वसहेसु वेलु गयणेसु ॥१०॥
खगु रुक्खेसु झाणु मुक्खेसु ॥११॥
अहवइ किंचिउ णिव वण्णिज्जइ । अइ पर तं जि तासु उवमिज्जइ ॥१२॥

घत्ता

तहोँ णयरहोँ अब्भन्तरेँण कोसल्लरेँण उववणु णामेण पसत्थउ ।
णाइँ कुमारहोँ पुण्णाहोँ पइसन्ताहोँ थिउ णव-कुसुमञ्जलि-हत्थउ ॥१३॥

[२]

तहिँ उववणेँ थिय हरि-बल जावेँहिँ । भरहहोँ लेहु विसज्जिउ तावेँहिँ ॥१॥
अवराएँ चित्तु णरेण णरिन्दहोँ । भविउ व चलणेँहिँ पडिउ जिणिन्दहोँ ॥२॥
लइउ महीहरेण सइँ हत्थेँ । जिणवर-धम्मु व मुणिवर-सत्थेँ ॥३॥
वारि-णिबन्धहोँ मुक्कु गइन्दु व । दिट्ठु अङ्कु तहिँ णहयलेँ चन्दु व ॥४॥
'रज्जु मुएवि बे वि रिउ-मद्दण । गय वण-वासहोँ राम-जणद्दण ॥५॥
को जाणइ हरि कहिँ उ आवइ । तहोँ वणमाल देज्ज जसु भावइ' ॥६॥
लेहु विवेप्पिणु णरवइ महिहरु । णाइँ दवेण दड्ढु थिउ महिहरु ॥७॥
णाइँ मियङ्को कमिउ विडप्पेँ । तिह महिहरु णरिन्दु माहप्पेँ ॥८॥

घत्ता

जाव चिन्त मणेँ दुद्धरहोँ धरणीधरहोँ सिहि-गल-तमाल-घण-वण्णहोँ ।
'लक्खणु लक्खण-लक्ख-धरु तेँ मुएँ वि वरु मइँ दिण्ण कण्ण किं अण्णहोँ'

[३]

तो एत्थन्तरेँ णयण-विसालएँ । एह वत्त जं सुय वणमालएँ ॥१॥
आउलिहूय हियएण विसूरइ । दुक्खं मइँगइ कम आऊरइ ॥२॥
सिरेँ पासेउ चडइ गुरु सूसइ । कर विहुणइ पुणु दइवहोँ रूसइ ॥३॥

फलइ गजोंमें, अंक काव्योंमें, डर वृषभेश्वरमें, वातूल आकाश-में, वन (वेत—व्रण) वृक्षोंमें और ध्यान मुक्त मनुष्योंमें था। अन्यत्र ये चीजें नहीं थीं। अथवा हे राजन्! क्या वर्णन किया जाये यदि वैसा दूसरा हो तो उसकी उपमा उससे दी जाये। उस नगरके उत्तरमें एक कोशकी दूरीपर प्रशस्तनामका उपवन था जो मानो आते हुए और प्रवेश करते हुए कुमारोंके लिए नवकुसुमांजलि हाथमें लिये हुए स्थित था ॥१-१३॥

[२] राम और लक्ष्मण जब उस उपवनमें ठहरे थे, तभी भरतने लेखपत्र भेजा। मनुष्य (दूत) ने उसे राजाके सम्मुख डाल दिया। वह लेखपत्र जिनेन्द्रके चरणोंमें भक्तकी तरह पड़ा हुआ था। राजाने स्वयं उसे अपने हाथसे ले लिया, उसी प्रकार, जिस प्रकार मुनिवर समूहके द्वारा जिनवरका धर्म ले लिया जाता है, द्वारनिबन्धनसे मुक्त गजेन्द्रकी तरह, उसमें आकाशमें चन्द्रमाके समान अंक (अक्षर) देखे, 'शत्रुका मर्दन करनेवाले राम और लक्ष्मण राज्य छोड़कर वनवासके लिए चले गये हैं। कौन जानता है लक्ष्मण कब लौटें। इसलिए वनमाला उसे दे दो जिसे तुम ठीक समझो।" लेख ग्रहण कर महीधर राजा ऐसे स्थित हो गया जैसे दावानलसे दग्ध मही-धर (पर्वत) हो। जैसे चन्द्रमा राहुके द्वारा अतिक्रान्त हो जाता है, उसी प्रकार राजा महीधर। मयूरकण्ठ तमाल और मेघके समान रंगवाले उस राजाके मनमें चिन्ता हो गयी कि लक्ष्मण लाखों लक्षणोंको धारण करनेवाला है, उस वरको छोड़कर क्या किसी दूसरेको कन्या दूँ ॥१-९॥

[३] तब इसी बीच विशाल नेत्रोंवाली वनमालाने जब यह बात सुनी, तो एकदम व्याकुल हो गयी। वह हृदयसे दुःख करती है। दुःखसे वह महानदीकी तरह भर उठी। उसके सिरमें पसीना चढ़ने लगता है, मुख सूखने लगता है, हाथ

मणु घुगघुगइ देहु परितप्पइ। वम्महो णं करवत्तें कप्पइ ॥४॥
ताव णहङ्गणेण घणु गज्जिउ। णाइँ कुमारें दूउ विसज्जिउ ॥५॥
धीरी होहि माएँ णं भासिउ। 'एहु लक्खणु कन्तएँ आवासिउ' ॥६॥
गरहिउ मेहु तो वि तणु-अङ्गिएँ। दोस वि गुण हवन्ति संसग्गिएँ ॥७॥
'तुहुँ किर जण-मण णयणाणन्दणु। महु पुणु जलहर णाइँ हुआसणु ॥८॥

घत्ता

तुज्झु ण दोसु दोसु कुलहों हय-सुह-कुक्कहों जलें जलणें पवणें जं जायउ।
तं पासेउ दाहु करहु णीसासु महु सिविणे वि दक्खवणहों आयउ ॥९॥

[४]

दोच्छिउ मेहु पणट्ठु णहङ्गणें। पुणु वणमालएँ चिन्तिउ णिय-मणें ॥१॥
'किं पइसरमि वलन्तें हुआसणें। किं समुद्दें किं रण्णें सु-भीसणें ॥२॥
किं विसु भुञ्जमि किं अहि चप्पमि। किं अप्पउ करवत्तें कप्पमि ॥३॥
किं करिवर-दन्तहिं उर भिन्दमि। किं करवालेंहिं तिलु तिलु छिन्दमि ॥४॥
किं दिस लङ्घमि किं पव्वज्जमि। कहों अक्खमि कहों सरणु पवज्जमि ॥५॥
अहवइ एण काइँ गमु सज्जमि। तरुवर-डालएँ पाण विसज्जमि' ॥६॥
एम भणेप्पिणु चल्लिय तुरन्ती। कङ्केल्ली-धउ उग्घोसन्ती ॥७॥
गन्ध-धूव-बलि-पुप्फ-विहत्थी। लीलएँ चिक्कमन्ति वीसत्थी ॥८॥

घत्ता

चउविह-सेण्णें परियरिय धण णीसरिय 'को विहिं आलिङ्गणु देसइ'।
एम चवन्ति पइट्ठ वणें रवि-अत्थवणें 'कहिं लक्खणु' णाइँ गवेसइ ॥९॥

धुनती है, भाग्यको कोसती है। मन धक-धक करता है। देह सन्तप्त होती है। मानो कामदेव करपत्रसे काटता है। इतनेमें आकाशके आँगनसे घन गरजा, जैसे कुमारने अपना दूत भेजा हो, मानो वह कह रहा हो, हे आदरणीये! धैर्य धारण करो, वह लक्ष्मण उपवनमें ठहरा हुआ है। तब उस तन्वंगीने मेघ-को बुरा-भला कहा। संगतिसे दोष भी गुण हो जाते हैं, तुम (मेघ) जनोंके मन और नेत्रोंके लिए आनन्ददायक हो परन्तु हे मेघ, मेरे लिए आगके समान हो। तुम्हारा दोष नहीं है। दोष तुम्हारे इस दुःखकुलका है। तुम जल, आग और पवनसे उत्पन्न हुए हो इसीलिए तुम प्रस्वेद, जलन और निःश्वास ये तीनों मुझे दिखानेके लिए लगे हो? ॥१-९॥

[४] उसने मेघकी भर्त्सना की, वह आकाशके आँगनमें नष्ट हो गया। वसन्तमाला फिर अपने मनमें सोचने लगी कि क्या मैं जलती हुई आगमें प्रवेश कर जाऊँ, क्या समुद्रमें, क्या भीषण जंगलमें चली जाऊँ? क्या विष खा लूँ या साँपको चाँप लूँ? क्या अपनेको करपत्रसे चिरवा लूँ, क्या गजवरके दाँतोंसे हृदय विदीर्ण करवा लूँ? क्या तलवारोंसे तिल-तिल छेद लूँ? क्या दिशा लाँघ जाऊँ, क्या संन्यास ग्रहण कर लूँ? किससे कहूँ? किसकी शरणमें जाऊँ? अथवा इससे किसके पास जाऊँ? अथवा, इससे क्या बनेगा? मैं वृक्षकी डालसे प्राणोंका विस-र्जन करती हूँ।" यह कहकर वह अशोकवनकी घोषणा करती हुई तुरन्त चल दी। जिसके हाथमें गन्ध, धूप, बलि और पुष्प हैं ऐसी वह लीलापूर्वक विश्वस्त रूपसे चलती हुई, चतुर्विध सेनासे घिरी हुई वह धन्या निकली। भाग्यसे कौन आलिंगन देगा, इस प्रकार बोलती हुई वह अशोकवनमें प्रविष्ट हुई। सूर्यास्त होनेपर 'लक्ष्मण कहाँ' जैसे वह यह खोज कर रही हो? ॥१-९॥

[५]

दिट्ठु असोयवच्छु परिअञ्चिउ। जिणवरो व्व सब्भावें अञ्चिउ ॥१॥
पुणु परियायणु कियउ असोयहोँ। 'अप्पणु ण इह-लोयहोँ पर-लोयहोँ ॥२॥
जम्में जम्में सुअ-सुअइँ स-लक्खणु। पिय-भत्तारु होज्ज महु लक्खणु' ॥३॥
पुणु पुणु एम णमंसइ जावेंहिँ। रयणिहेँ वे पहरा हुय तावेंहिँ ॥४॥
सयलु वि साहणु णिद्दोणल्लउ। णावइ मोहण-जालें पेल्लिउ ॥५॥
णिग्गय पुणु वणमाल तुरन्ती। हार-डोर णेउरेंहिँ खलन्ती ॥६॥
हरि-विरहग्गि-पूरें उब्भन्ती। तुण्ण-कुरङ्गि व चित्तुब्भन्ती ॥७॥
णिविसद्धें णग्गोहें वलग्गी। रमण-थवक णं गोह वलग्गी ॥८॥

घत्ता

रेहइ दुमें वणमाल किह घणें विज्जु जिह पइवन्ती लक्खण-कङ्खिणि।
किलिकिलन्ति जोण्हाकिर [illegible] ॥९॥

[६]

तहिँ वालएँ कलुणु पकन्दियउ। वण-डिम्भउ णं परिअन्दियउ ॥१॥
'आयण्णहोँ वयणु वणस्सइहोँ। गङ्गाणइ-जउण-सरस्सइहोँ ॥२॥
गह-भूय-पिसायहोँ किन्नरहोँ। वण-जक्खहोँ रक्खहोँ खेयरहोँ ॥३॥
मय-वग्घहोँ सिङ्घहोँ सम्वरहोँ। रयणायर-गिरिवर-जलयरहोँ ॥४॥
गण-गन्धव्वहोँ विज्जाहरहोँ। सुर-सिद्ध-महोरग-किण्णरहोँ ॥५॥
जम-खन्द-कुबेर-पुरन्दरहोँ। बुह-भेसइ-सुक्क-सणिच्छरहोँ ॥६॥
हरिणङ्कहोँ अक्कहोँ जोइसहोँ। वेयाल-डुडुम्बहोँ रक्खसहोँ ॥७॥
वइसाणर-वरुण-पहञ्जणहोँ। सहोँ एम कहिज्जहोँ लक्खणहोँ ॥८॥

घत्ता

तुवइ धीय महीहरहोँ दीहर-करहोँ वणमाल-णाम भय-वज्जिय।
लक्खण-पइ सुमरन्तियएँ कन्दन्तियएँ वड-पायवें पाण विसज्जिय' ॥९॥

[५] जिनवरके समान सद्भावसे अंचित अशोक वृक्ष उसे दिखा। वह उससे लिपट गयी। फिर उसने अशोक वृक्षसे प्रतिवादन किया, "जन्म-जन्ममें बार-बार लक्षणों सहित लक्ष्मण मेरा प्रिय पति होगा।" बार-बार जब वह इस प्रकार नमस्कार करती, तब तक रात्रिके दो प्रहर बीत गये। समस्त सेना नींदमें इस प्रकार मग्न हो गयी, जैसे सम्मोहनके जालसे प्रेरित हो। तुरन्त वनमाला निकल पड़ी, हार, डोर और नूपुरोंसे स्खलित होती हुई। लक्ष्मणके विरहजलमें व्याकुल होती हुई खिन्न हरिणीकी तरह चित्तमें उद्भ्रान्त होती हुई वह आधे पलमें वटवृक्षसे ऐसे जा लगी, मानो रमणके लिए चंचल कोई यार से जा लगी हो। लक्ष्मणकी आकांक्षा रखनेवाली वनमाला वृक्षपर इस प्रकार शोभित हो रही थी कि जैसे मेघोंमें चमकती हुई बिजली हो, या जैसे किलकारियाँ भरती हुई ओल्लावणिय ?? भीषण प्रत्यक्ष वह यक्षिणी हो ॥१-९॥

[६] वहाँ उस बालाने इस प्रकार आक्रन्दन शुरू कर दिया मानो वन-गजशिशुने आक्रन्दन शुरू कर दिया हो—"हे वनस्पतियो, गंगानदी-यमुना और सरस्वती नदियो, ग्रह-भूत-पिशाचो, व्यंतरो, वनयक्षो, राक्षसो, खेचरो, गजव्याघो, सिंहो, सांभरो, रत्नाकर गिरिवर जलचरो, गण गन्धर्वो, विद्याधरो, सुरसिद्ध महासाँप किन्नरो, यम स्कन्द कुबेर और पुरन्दरो, बुध-बृहस्पति-शुक्र-शनिश्चरो, चन्द्र-सूर्य-ज्योतिषो, वेताल-दैत्य और राक्षसो, वैश्वानर-प्रभंजनो, मेरे वचन सुनो और उस लक्ष्मणसे इस प्रकार कहो कि, "लम्बे बाँहोंवाले महीधर राजाकी भयसे रहित वनमाला नामकी बेटी कहती है कि लक्ष्मणपतिका स्मरण करती हुई तथा आक्रन्दन करती हुई उसने वटवृक्षपर अपने प्राण विसर्जित कर दिये" ॥१-९॥

[७]

एम भणेप्पिणु णयण-विसालएँ । अंसुअ-धारउ किउ वणमालएँ ॥१॥
सो जें णाहँ सइँ मम्भीसावइ । णाइँ विवाह-लील दरिसावइ ॥२॥
जं दिवसइ थाणहोँ हक्कारिउ । णाइँ कुमारें हत्थु पसारिउ ॥३॥
गलेँ लाएँ वि हक्लावइ जावेँ हिँ । कण्ठेँ धरियालिङ्गें वि तावेँ हिँ ॥४॥
एम पयक्खिउ मम्भीसन्तउ । 'हउँ सो लक्खणु लक्खणवन्तउ ॥५॥
दसरह-तणउ सुमित्तिएँ जायउ । रामें सहुँ वणवासहोँ आयउ' ॥६॥
तं णिसुणें वि विब्भाविय णिय-मणेँ । 'कहिँ लक्खणु कहिँ अच्छिउ उववणेँ' ॥७॥
ताम हलाउहु कोक्कइ लग्गउ । 'भो भो लक्खण आउ कहिँ गउ' ॥८॥

घत्ता

तं णिसुणें वि महिहर-सुअएँ पुलइय-भुअएँ णइ जिह णच्चाविउ णिय-मणु ।
'सहल मणोरह अज्जु महु परिहूउ सुहु (?) भत्तारु लद्धु जं लक्खणु' ॥९॥

[८]

तो एत्थन्तरेँ भुवणाणन्दें । दिट्ठु जणद्दणु राहवचन्दें ॥१॥
णावइ तमु दीवय-सिह-सहियउ । णावइ जलहरु विज्जु-परिग्गहियउ ॥२॥
णावइ करि करिणिहिँ आसत्तउ । चवलें हिँ पडिउ वलहोँ स-कलत्तउ ॥३॥
'चारु चारु भो णयणाणन्दण । कहिँ पइँ कण्ण लद्ध रिउमद्दण' ॥४॥
तुसु कुमारें 'किह व सगुणिय । भरणीधरहोँ धीय किं ण सुणिय ॥५॥
जा महु पुव्वयणि-उवदिट्ठी । सा वणमाल एह वणेँ दिट्ठी' ॥६॥
हरि अप्फालइ जाव कहाणउ । ताम रवि गय विमलु विहाणउ ॥७॥
सुहड विउद्ध कुद्ध पस-लुद्धा । 'केण वि हरिय कण्ण' सण्णद्धा ॥८॥

चत्ता

ताव णिहालिय दुअएँ हिँ पुणु रह-गएँ हिँ चाउदिसु चवल-तुरङ्गें हिँ ।
वेढिय रणउहेँ वे वि जण वल-महुमहण पञ्चाणण जेम कुरङ्गें हिँ ॥९॥

[७] यह कहकर, नेत्रोंसे विशाल वनमालाने कपड़ेका फन्दा बनाया। वही जैसे उसे अभय वचन देता है, जैसे उसकी विवाह लीला दिखाता है, मानो उसने जिनवरको दानके लिए पुकारा हो, जैसे कुमारने अपना हाथ फैलाया हो। वह (वनमाला) गलेमें फन्देको लगाकर जैसे ही हिलाती है वैसे ही कुमारने आलिंगन करके उसे कण्ठमें पकड़ लिया और अभय वचन देते हुए यह कहा कि "मैं वही लक्षणोंवाला लक्ष्मण हूँ, सुमित्रासे उत्पन्न, दशरथका पुत्र। रामके साथ वनवासके लिए आया हुआ हूँ।" यह सुनकर वधू अपने मनमें विस्मित हुई। इतनेमें हलायुध (राम) पुकारने लगते हैं—लक्ष्मण कहाँ है, उपवनमें कहाँ है? ओ लक्ष्मण कहाँ गये हो, आओ। यह सुनकर, जिसकी बाँहें पुलकित हैं ऐसी महीधरकी कन्याने नटकी तरह अपने मनको नचाया कि मेरा शुभ मनोरथ आज सफल हुआ कि जो मैंने पति लक्ष्मण पा लिया ॥१-९॥

[८] तब इसी बीच राघवचन्द्रने लक्ष्मणको देखा। वह, अपनी पत्नीके साथ रामके चरणोंमें इस प्रकार गिर पड़ा जैसे दीपशिखाके साथ तम हो, जैसे बिजलीसे गृहीत बादल हो, मानो हथिनीमें आसक्त हाथी हो। रामने कहा—"हे नयनानन्दन शत्रुमर्दन लक्ष्मण, सुन्दर-सुन्दर! यह कन्या तुमने कहाँ प्राप्त की।" कुमार बोला—"विद्याके समान गुणवती, महीधर राजाकी इस कन्याको क्या नहीं जानते? जो मुझे पूर्वजन्ममें कही गयी थी, उस वनमालाको मैंने वनमें देखा।" लक्ष्मण इस प्रकार जबतक कथानक कहता है, तबतक रात चली गयी और विमल सवेरा हो गया। सुभट जाग गये और यशके लोभी वे क्रुद्ध हो गये कि 'कन्या कौन ले गया'। वे तैयार हो गये। तब तक दुर्जेय उन्होंने पुनः रथगजों और चपल अश्वोंसे चारों दिशाओंमें देखा, और रणमुखमें उन दोनों राम-लक्ष्मणको

[९]

अब्भिट्टु सेण्णु कलयलु करन्तु । 'जिह लइय कण्ण तिह हणु' भणन्तु ॥१॥
तं-वयणु सुणेप्पिणु हरि पलित्तु । उद्धाइउ सिहि णं घिएँण सित्तु ॥२॥
एक्कल्लउ लक्खणु बलु अणन्तु । आलग्गु तो वि तिण-समु गणन्तु ॥३॥
परिसक्कइ थक्कइ मलइ वलइ । तरुवर उम्मूलेंवि सेण्णु दलइ ॥४॥
उप्फलइ भिडइ पाडइ तुरङ्ग । मद्दि कमइ भमइ भामइ रहङ्ग ॥५॥
अवगाहइ साहइ धरइ जोह । दलवट्टइ लोट्टइ गयवरोह ॥६॥
विणिवाइय भाइय सुहड-थट्ट । कडुआविय णिवरामुह पयट्ट ॥७॥
णासन्ति के वि जे समरें मुक्क । कायर-णर-कर-पहरणइँ मुक्क ॥८॥

घत्ता

गम्पिणु कहिउ महीहरहों 'एक्कहों णरहों आवट्टु सेण्णु भुव-दण्डऍं ।
जिम णासहि जिम भिडु समरें विहिँ एक्कु करें वणमाल लइय बलिमण्डऍं' ॥९॥

[१०]

तं वयणु सुणेप्पिणु थरहरन्तु । धरणीधरु धाइउ विप्फुरन्तु ॥१॥
आरूढु महारहेँ दिण्णु सङ्खु । सण्णद्धु कुद्धु जय-लच्छि-कङ्खु ॥२॥
तो दुज्जय दुद्धर दुण्णिवार । 'हणु हणु' भणन्त णिग्गय कुमार ॥३॥
वणमालि-कुसुम-कल्लाणमाल । जयमाल-सुमाल-सुवण्णमाल ॥४॥
गोपाल-पाल इय अट्ठ भाइ । सहुँ राएं णव गह कुइय णाइँ ॥५॥
एत्थन्तरें रणें बहु-मच्छरेण । हक्कारिउ लक्खणु महिहरेण ॥६॥
'वलु वलु समरङ्गणें देहि जुज्झु । णिय-णासु गोत्तु कहेँ कवणु तुज्झु' ॥७॥

उसी प्रकार घेर लिया जिस प्रकार हरिणोंके द्वारा सिंह घेर लिया गया हो ॥१-९॥

[९] कलकल करती हुई तथा जिस प्रकार कन्या ली, उस प्रकार प्रहार करो कहती हुई सेना भिड़ गयी। यह वचन सुनकर लक्ष्मण आगबबूला हो उठा। वह दौड़ा जैसे घीसे सींची गयी आग हो। अकेला लक्ष्मण था सेना अनन्त थी। तब भी वह तिनकेके बराबर समझता हुआ उससे भिड़ गया। वह चलता है, ठहरता है। मुड़ता है, वृक्ष उखाड़कर सेनाको चूर-चूर करता है। उछलता है, भिड़ता है, अश्वोंको गिराता है। धरतीका उल्लंघन करता है घूमता है, और चक्रको घुमाता है। अवगाहन करता है, संकुचित होता है, योद्धाओंको पकड़ता है। गजसमूहको चूर-चूर कर लोटपोट कर देता है। सुभट-समूहको उसने आघात कर गिरा दिया। वह क्रुद्ध हो उठी और विपरीत मुख होकर चली गयी। जो युद्धमें चूक गये वे भाग गये। कायर लोगोंके हाथसे अस्त्र छूट गये। किसीने जाकर महीधरसे कहा, "एक आदमीके बाहुदण्डसे सेना नष्ट हो गयी। युद्धमें इस प्रकार लड़िए कि उसे नष्ट कर सकें, दैवयोगसे वह एक हाथमें बलपूर्वक वनमालाको लिये हुए है" ॥१-९॥

[१०] यह वचन सुनकर थर-थर काँपता हुआ राजा महीधर तमतमाता हुआ दौड़ा। वह महारथपर बैठा और शंख बजा दिया। विजयलक्ष्मीका आकांक्षी वह क्रुद्ध होकर तैयार होने लगा। तब दुर्जय, दुर्धर, दुर्निवार कुमार 'मारो-मारो' कहते हुए निकले। वनमाल, कुसुममाल, कल्याणमाल, जयमाल, सुमाल सुवर्णमाल, गोपाल और पाल, ये आठ भाई राजाके साथ ऐसे जान पड़ते थे मानो नौ ही ग्रह कुपित हो उठे हों। इस बीच अत्यन्त मत्सरसे भरे हुए महीधरने युद्धमें लक्ष्मणको ललकारा कि मुड़ो-मुड़ो, युद्ध-प्रांगणमें मुझे युद्ध दो। अपना

तं णिसुणेंवि बोल्लिउ लच्छि-गेहु । 'कुल-णामहों अवसरु कवणु एहु ॥८॥

घत्ता

पहरु पइरु जं पइँ पुच्छिउ किण्ण वि सुणिउ एत्थु माए महुकेरउ रासु ।
रहुकुल-णन्दणु लच्छि-हरु तउ जीवहरु णरवइ महु लक्खणु णासु' ॥९॥

[११]

कुलु णामु कहिउ जं सिरिहरेण । थणु घत्तेंवि महिहें महीहरेण ॥१॥
सुरकरि-कर-सम-भुअ-पञ्जरेण । अवरुण्डिउ णेहु-महाभरेण ॥२॥
हवि सक्खिकरेंवि अपराधणासु । सहुँ दिण्ण कण्ण णारायणासु ॥३॥
आरूढु महीहरु पक्ख-रहें । अट्ठ वि कुमार अण्णेक्क-रहें ॥४॥
वणमाल स-लक्खण एक्क-रहें । थिय स-बल सीय अण्णेक्क-रहें ॥५॥
पडु-पडह-सङ्ख-वद्धावणेहिं । णच्चन्तेंहिं सुमय-वामणेहिं ॥६॥
उच्छाहेंहिं धवलेंहिं मङ्गलेहिं । कंसालेंहिं तालेंहिं मद्दलेहिं ॥७॥
आणन्दें णयरें पइट्ठाइँ । लीलएँ अत्थाणें वइट्ठाइँ ॥८॥

घत्ता

सहुँ वणमालएँ महुमहणु परितुट्ठ-मणु जं वेइहें जन्तु पदीसिउ ।
कोएँहिं मङ्गलु गन्धएँहिं णच्चन्तएँहिं जिणु जम्मणें जिह सइँ भूसिउ ॥९॥

●

तीसमो संधि

तहिँ अवसरें आणन्द-भरें उच्छाह-करें जयकारहों कारणें णिग्गिउ ।
भरहहों उप्परि पज्जलिउ रहसुच्छलिउ णरु णन्दावत्त-णराहिउ ॥

नाम-गोत्र बताओ कि तुम कौन हो? यह सुनकर लक्ष्मीका वर लक्ष्मण बोला कि कुल और नाम (पूछनेका) का यह कौन-सा अवसर है? जैसा तुमने सोचा है प्रहार करो, प्रहार करो, क्या तुमने यह विचार नहीं किया कि जिसका बड़ा भाई राम है। रघुकुलका पुत्र लक्ष्मीका धारण करनेवाला और तुम्हारे जीवनका हरण करनेवाला, हे राजन्! मेरा नाम लक्ष्मण है ॥१-९॥

[११] जब श्रीधर (लक्ष्मण) ने अपने कुलका नाम लिया तो महीधरने धरतीपर धनुष फेंककर ऐरावतकी सूँड़के समान स्नेहपूर्ण बाहुपंजरसे उसका आलिंगन कर लिया। अग्निको साक्ष्य बनाकर उसने अपराजित लक्ष्मणको कन्या दे दी। महीधर एक रथपर आरूढ़ हुआ। दूसरे रथपर आठों कुमार बैठे। लक्ष्मण सहित वनमाला एक रथपर बैठी। और राम सहित सीता एक और रथपर स्थित थी। पटु-पटह-शंख और बधावनों, नाचते हुए कुब्जक वामनों, उत्साह-धवल और मंगल गीतों, कंसाल-ताल और मृदंगोंके साथ वे आनन्दपूर्वक नगरमें प्रविष्ट हुए, और लीलापूर्वक दरबारमें बैठे। सन्तुष्ट मन लक्ष्मण वनमालाके साथ वेदीपर जाते हुए ऐसा दिखाई दिया, जैसे मंगल गाते हुए और नाचते हुए लोगोंने जिस प्रकार जन्मके अवसर पर जिनको स्वयं भूषित किया हो" ॥१-९॥

•

तीसवीं सन्धि

आनन्दसे भरे हुए तथा उत्साहवर्धक उस अवसरपर विजयके लिए वेगसे उछलता हुआ नन्दावर्तका निर्दय राजा (अनन्तवीर्य) भरतके ऊपर आक्रमण करता है।

[१]

जो भरहहों दूउ विसज्जियउ । आइउ सम्माण-विवज्जियउ ॥१॥
कहइ णन्दावत्त-णराहिवहों । वज्जरिउ अणन्तवीर-णिवहों ॥२॥
'हउँ पेक्खु केम विच्छारियउ । सिरु मुण्डेंवि कह वि ण मारियउ ॥३॥
सो भरहु ण इच्छइ सन्धि रणें । जं जाणहों तं चिन्तवहों मणें ॥४॥
अण्णु वि उक्कण्ठें आइयउ । सहुँ सेण्णें विञ्झु पराइयउ ॥५॥
तहिँ णरवइ वालिखिल्लु वलिउ । सीहोयरु वज्जयण्णु मिलिउ ॥६॥
तहिँ रुद्दभुत्ति सिरिवच्छ-धरु । मरुभुत्ति सुभुत्ति विभुत्ति-करु ॥७॥
अवरेहि मि समउ समावडिउ । पेक्खेसहि कल्लएँ अब्भिडिउ' ॥८॥

घत्ता

ताम अणन्तवीरु कुद्धिउ पइजारूढिउ 'जइ कल्लएँ भरहु ण मारमि ।
तो अरहन्त-भडाराहों सुर-साराहों णउ चलण-जुवलु जयकारमि' ॥९॥

[२]

पइजारूढु णराहिउ जावेंहिँ । साहणु मिलिउ असेसु वि तावेंहिँ ॥१॥
केहु लिहेप्पिणु जग-विक्खायहों । तुरिउ विसज्जिउ महिहर-रायहों ॥२॥
अग्गएँ थिउ वइदु लम्पिक्कु व । इ विणक्खरहिँ लोणु णण्डिक्कु व ॥३॥
सुन्दरु पत्तवन्तु वर-साहु व । णाव-वहुल्लु सरि-गङ्ग-पवाहु व ॥४॥
दिट्ठु राय तहिँ आय अणन्त वि । सल्ल-विसल्ल-सीहविक्कन्त वि ॥५॥
दुज्जय-अजय-विजय-जय-जयमुह । परसद्दूल-विउल-गय-गयमुह ॥६॥
रुद्दवच्छ-महिवच्छ-महद्धय । चन्दण-चन्दोयर-गरुडद्धय ॥७॥
केसरि-मारिचण्ड-जमघण्टा । कोङ्कण-मलय-पण्डियाणट्टा ॥८॥
गुज्जर-गङ्ग-वङ्ग-मङ्गाला । पइव्विय-पारियत्त-पञ्चाला ॥९॥
सिन्धव-कामरूव-गम्भीरा । तज्जिय-पारसीय-परतीरा ॥१०॥

[१] जो दूत भरतके लिए भेजा गया था, सम्मानहीन होकर वह चला आया। शीघ्र उसने नन्दावर्तके नराधिप अनन्तवीर्य नृपसे कहा—"देखिए मैं कैसा अपमानित किया गया हूँ, सिर मूँड़कर किसी प्रकार मारा-भर नहीं गया। वह भरत युद्धमें सन्धि नहीं चाहता। जो ठीक समझो उसका अपने मनमें विचार करो। एक ओर आपका वैरी सेना सहित विन्ध्याचल तक आ पहुँचा है। वहाँ नरपति बालिखिल्य मुड़ गया है (बदल गया है), सिंहोदर और वज्रकर्ण मिल गये हैं। यहाँ रुद्रभूति, श्रीवत्सधर, मरुभूति, सुमुक्ति और विमुक्तिकर आदि दूसरे राजा भी हैं। दूसरोंके साथ आकर, तुम देखोगे कि वह कल लड़ेगा।" तब अनन्तवीर्य क्षुब्ध हो गया। उसने प्रतिज्ञा की कि यदि कल मैं भरतको नहीं मारता तो सुरश्रेष्ठ आदरणीय अरहन्तके चरणकमलका जयकार नहीं करूँगा ॥१-९॥

[२] जैसे ही राजाने प्रतिज्ञा की, वैसे ही अशेष सेना आ मिली। लेख लिखकर शीघ्र ही विश्वविख्यात महीधर राजाके लिए भेजा गया। चोरकी तरह बँधा हुआ वह पत्र आगे डाल दिया गया। वह (पत्र) व्याधकी तरह हरिणक्खरों (हरि—सिंहके नखों, चित्र-विचित्र अक्षरों) से व्याप्त था। श्रेष्ठ साधुकी तरह सुन्दर पत्तवन्त (पत्र—पात्रसे युक्त) था। गंगा नदीके प्रवाहके समान, णावबहुल (नावों—नामोंसे प्रचुर) था। राजा वहाँ आये और अनन्तवीर्यसे मिले। शल्य, विशल्य, सिंहविक्रान्त, दुर्जय, अजय, विजय, जय, जयमुख, नरशार्दूल, विपुलगज, गजमुख, रुद्रवत्स, महीवत्स, महध्वज, चन्दन, चन्द्रोदर, गरुडध्वज, केशरी, मारिचण्ड, यमघण्ट, कोंकण, मलय, पाण्ड्य, आनर्त, गुर्जर, गंग, वंग, मंगल (मंगोल), पहविय, पारियात्र, पांचाल, सैन्धव, कामरूप

मरु-कण्णाड-लाड-जालन्धर । टक्काहीर-कीर-खस-बब्बर ॥११॥
अवर वि जे एक्केक्क-पहाणा । केण गणेप्पिणु सक्किय राणा ॥१२॥

घत्ता

ताम णराहिउ कसण-तणु थिउ विमण-मणु णं पडिउ सिरत्थलें वज्जु ।
'किह सामिय-सम्माण-भरु विसहिउ दुद्धरु किह भरहहों पहरिउ अज्जु' ॥१३॥

[३]

जं णरवइ मणें चिन्तावियउ । हलहरु एक्कन्त-पएसें थियउ ॥१॥
अट्ठ वि कुमार कोक्किय खणेंण । सहुं देहि आय सहुं लक्खणेंण ॥२॥
मेल्लेप्पिणु मन्तिउ मन्तणउ । बलु भणइ 'म दरिसहों अप्पणउ ॥३॥
रह-तुरय-महागय परिहरेंवि । तिय-चारण-गायण-वेसु करेंवि ॥४॥
तं रिउ-अत्थाणु पईसरहों । णच्चन्त अणन्तवीरु धरहों' ॥५॥
तं वयणु सुणेंवि परितुट्ठ-मण । थिय कामिणि-वेस किया हरिण ॥६॥
बलएवें जोइउ पिय-वयणु । किं होइ ण होइ वेस-गहणु ॥७॥
'लइ सुन्दरि ताव तिट्ठ णयरें । अम्हें हिं पुणु जुज्झेवउ समरें' ॥८॥

घत्ता

लग्ग कडच्छएं जणय-सुय कण्टइय-भुय 'लहु णरवर-णाह ण एसहि ।
महँ मेल्लेंवि मासुरएं रण-सासुरएं मा कित्ति-वहुअ परिणेसहि' ॥९॥

[४]

खेड्डु करेंवि संचल्ल महाइय । णिविसें णन्दावत्तु पराइय ॥१॥
दिट्ठु जिणालउ सणें परिअञ्चेंवि । अब्भाएं गाएं वि वाएं वि णच्चेंवि ॥२॥
सीय ठवेंवि पइट्ठ पुर-सरवरें । रहवर-तुरय-महागय-जलयरें ॥३॥
देउल-वहल-धवल-कमलायरें । पवरुज्जाण-घण-तीर-लयाहरें ॥४॥
चारु-विलासिणि-णलिणि-करम्बिएं । छप्पणणय-छप्पय-परिचुम्बिएं ॥५॥

गम्भीर, वजिक ? पारसीक, परतीर, मरु, कण्णाड, लाट, जालन्धर, टक्क, आभीर, कीरखस और बब्बर तथा दूसरे भी जो एक-एक प्रधान राजा थे। कौन उन राजाओंकी गणना कर सकता था। तब श्याम शरीर राजा महीधर विमन मन हो गया मानो उसके सिरपर वज्र पड़ा हो। (वह सोचने लगा) स्वामी (अनन्तवीर्य) के सम्मानभारको तथा भरतके दुर्धर प्रहारको आज मैं किस प्रकार सहन करूँ ? ॥१-१३॥

[३] जब राजा महीधर अपने मनमें विचार करने लगा तो राम एकान्त पक्षमें स्थित हो गये। एक क्षणमें उन्होंने आठों कुमारोंको बुला लिया। लक्ष्मणके साथ सीता भी आयी। मन्त्रियों और मन्त्रणाओंको छोड़कर रामने कहा—"अपनेको प्रकट मत करो। रथ, घोड़ों और महागजोंको छोड़कर स्त्री, चारण और गायकका रूप बनाकर शत्रुके उस दरबारमें प्रवेश करो और नृत्य करते-करते उस अनन्तवीर्यको पकड़ लो।" यह वचन सुनकर वे सन्तुष्ट मन हो गये। वे स्त्रीके वेष बनाकर और आभरण पहनकर स्थित हो गये। 'हे सुन्दरी लो तबतक तुम नगरमें रहो हम लोग फिर युद्धमें लड़ेंगे।' पुलकित बाहु-वाली सीता कटाक्षसे कहती है—"हे नरनाथ, तुम जल्दी नहीं आओगे। मुझे छोड़कर तुम भारवर युद्धरूपी ससुरालमें कीर्तिरूपी वधूसे विवाह मत कर लेना" ॥१-९॥

[४] वे आदरणीय खेल करते हुए चले और पल-भरमें नन्दावर्त पहुँच गये। उन्हें जिनालय दिखाई दिया, एक क्षण उसकी प्रदक्षिणा कर तथा आगे गा-बजा-नाचकर, वहाँ सीता-को स्थापित कर वे उस नगररूपी सरोवरमें प्रविष्ट हुए, जिसमें रथवर, तुरग और महागजरूपी जलचर थे, देवकुल-रूपी धवल कमलोंका समूह था, नन्दनवनरूपी सघन तीर लतागृह थे। सुन्दर विलासिनीरूपी कमलिनियोंसे जो कुंचित

सज्जण-णिम्मल-सलिलालङ्किऍ । पिसुण-वयण-घण-पङ्कपङ्किऍ ॥६॥
कामिणि-चल-मण-मच्छुत्थल्लिऍ । णरवर-हंस-सएहिँ अमेल्लिऍ ॥७॥
तहिँ तेहऍ पुर-सरवरें दुज्जय । कीलऍ णाइँ पइट्ठ दिसागय ॥८॥

घत्ता

कामिणि-वेस कियाहरण विहसियमुह-वयण गय पत्त तेत्थु पडिहारु ।
सुणइ 'आयइँ चारणाइँ भरहहों तणइँ जिव कहेँ जिव देइ पइसारु' ॥९॥

[५]

तं वयणु सुणेंवि पडिहारु गउ । विण्णत्तु णराहिउ रणें अजउ ॥१॥
'पहु एत्तइँ गायण आयाइँ । फुडु माणुस-भेसेंण जायाइँ ॥२॥
णउ जाणहुँ किं विज्जाहरइँ । किं गन्धव्वइँ किं किण्णरइँ ॥३॥
अइ-सुसरइँ जण-मण-मोहणइँ । मुणिवरहु मि मण-संखोहणइँ ॥४॥
तं वयणु सुणेवि णराहिवेंण । 'दे दे पइसारु' वुत्तु णिवेंण ॥५॥
पडिहारु पधाइउ तुट्ठ-मणु । 'पइसरहों' भणन्तु कण्टइय-तणु ॥६॥
तं वयणु सुणेवि समुच्छलिय । णं हंस दिसि-वह एक्कहिँ मिलिय ॥७॥

घत्ता

पइठ णरिन्दत्थाण-वणें रिउ-हत्थ-घणें सिंहासण-गिरिवर-मण्डिऍ ।
पोढ-विलासिणि-लय-गहणें वर-वेल्लहलें अइ-धीर-सीह-परिचड्डिऍ ॥८॥

[६]

तहिँ तेहऍ रिउ-अत्थाण-वणें । पञ्चाणण जेम पइट्ठ खणें ॥१॥
णन्दियवद्ध-णराहिउ दिट्ठु किह । णक्खत्तहँ मज्झें मियङ्कु जिह ॥२॥
आरम्भिउ अग्गऍ पेक्खणउ । सुकलत्तु व सयलु सलक्खणउ ॥३॥
सुरयं पिव बन्ध-करण-पवरु । कव्वं पिव छन्द-सद्द-गहिरु ॥४॥

था, जो विटरूपी भ्रमरोंसे परिचुम्बित था, सज्जनरूपी निर्मल जलसे अलंकृत था, दुष्ट वचनरूपी सघन कीचड़से पंकिल था जिसमें कामिनियोंके चंचल मनरूपी मत्स्य उछल रहे थे, जो नरवररूपी सैकड़ों हंसोंसे अपरित्यक्त था, ऐसे उस नगररूपी सरोवरमें वे अजेय, दिशागजकी तरह लीलापूर्वक घुसे। कामिनी रूपधारी आभूषण पहने हुए और हँसमुख वे गये और वहाँ पहुँचे जहाँ प्रतिहार था। वे कहते हैं—'हम भरतके चारण हैं इस प्रकार कहो कि जिससे वह प्रवेश दे दे' ॥१-९॥

[५] यह वचन सुनकर प्रतिहार चला गया। उसने युद्धमें अजेय राजासे निवेदन किया, "हे स्वामी! ये गानेवाले आये हुए हैं, स्पष्ट रूपसे मनुष्य रूपमें हैं, मैं नहीं जानता कि ये क्या विद्याधर हैं? क्या गन्धर्व हैं कि या किन्नर हैं? अत्यन्त सुन्दर स्वरवाले जनमनको मोहन करनेवाले और मुनिवरोंके भी मनोंको क्षुब्ध करनेवाले।" यह वचन सुनकर राजाने कहा—'उन्हें प्रवेश दो'। प्रतिहार सन्तुष्ट होकर दौड़ा, पुलकित शरीर यह कहता हुआ कि प्रवेश करिए। यह शब्द सुनकर वे लोग इस प्रकार चले मानो दसों दिशापथ एक जगह मिल गये हों। जो शत्रुरूपी वृक्षोंसे सघन था, सिंहासनरूपी गिरिवरसे मण्डित था, जो प्रौढ़ विलासिनीरूपी लताओंसे प्रचुर था, वररूपी बेलफलसे युक्त था तथा अति वीर्यरूपी सिंहसे मर्दित था ऐसे उस राजाके दरबाररूपी वनमें उन्होंने प्रवेश किया ॥१-८॥

[६] उस वैसे शत्रु-दरबाररूपी वनमें सिंहकी तरह वे एक क्षणमें घुस गये। नन्द्यावर्तके राजाको उन्होंने इस प्रकार देखा जैसे नक्षत्रोंके बीच चन्द्रमा हो। अग्रजने नृत्य प्रारम्भ कर दिया, जो सुकलत्रकी तरह सबल (मोड़—राम सहित), और सलक्षण (लक्षण—लक्ष्मण सहित) था। सुरतके समान बन्ध और

रण्णं पिव वंस-ताल-सच्छिउ । जुज्झं पिव सय-सेय-सहिउ ॥५॥
जिह जिह उव्वेल्लइ हल-वहणु । तिह तिह अप्पाणु णवेइ जणु ॥६॥
मयरद्धय - सर - संखोहियउ । मिग-णिवहु व गेएं मोहियउ ॥७॥
वलु पढइ अणन्तवीरु सुणइ । 'को सीहें समउ कोलि कुणइ ॥८॥

घत्ता

जाम ण रणमुहें उत्थरइ पहरणु धरइ पइँ जीवगाहु सहुँ राएँहिँ ।
ताम अयाण मुएवि छलु परिहरेँ वि वलु पडु भरह-णरिन्दहों पाएँहिँ' ॥९॥

[७]

राहवचन्दु मणेण ण कम्पिउ । पुणु पुणरुत्तेंहिँ एव पजम्पिउ ॥१॥
'भो भो णरवइ भरहु णमन्तहुँ । कवणु पराहउ किर अणुणन्तहुँ ॥२॥
जो पर-वल-समुद्दें महणायइ । जो पर-वल-मियङ्कें गहणायइ ॥३॥
जो पर-वल-गयणेँहिँ चन्दायइ । जो पर-वल-गइन्दें सीहायइ ॥४॥
जो पर-वल-रयणिहिँ हंसायइ । जो पर-वल-सुरङ्गें महिसायइ ॥५॥
जो पर-वल-भुयङ्गें गरुडायइ । जो पर-वल-वणोहें जलणायइ ॥६॥
जो पर-वल-घणोहें पवणायइ । जो पर-वल-पवणोहें भरायइ ॥७॥
। जो पर-वल-धरोहें वज्जायइ' ॥८॥

घत्ता

तं णिसुणेवि विरुद्धएँण मणेँ कुद्धएँण अइवीरेँ अहर-फुरन्तें ।
रत्तुप्पल-दल-लोयणेंण जग-भीयणेंण णं किउ अवलोउ कियन्तें ॥९॥

करण क्रियाओंसे प्रवर था, काव्यकी तरह छन्द और शब्दसे गम्भीर था। अरण्यके समान वंश और तालसे भरपूर था, युद्धके समान राग और स्वेदसे सहित था। राम ज्यों-ज्यों उद्वेलित होते लोग वैसे-वैसे अपनेको झुकाते जाते। कामदेवके तीरोंसे क्षुब्ध वह उसी प्रकार मुग्ध हो गया, जिस प्रकार गेयसे मृगसमूह मुग्ध हो जाता है। राम पढ़ते हैं लक्ष्मण सुनता है कि कौन सिंहके साथ क्रीड़ा करता है। जबतक रणमुखमें हथियार नहीं उछलता और जबतक अन्य राजाओंके साथ, जीवनके लिए ग्राह वह तुम्हें नहीं पकड़ता, तबतक हे मूर्ख! छल छोड़कर, बलका परित्याग कर, भरत राजाके चरणोंमें गिर जा ॥१-९॥

[५] रामचन्द्र जरा भी प्रकम्पित नहीं हुए, बारम्बार पुनरुक्तियोंके द्वारा इस प्रकार कहा—"हे राजन्, भरतको नमस्कार करने और अनुनय करनेमें कौन-सा पराभव? जो शत्रुरूपी समुद्रका मन्थन करता है, जो शत्रुरूपी चन्द्रको ग्रहणकी तरह लगता है, जो शत्रुरूपी आकाशमें चन्द्रमाकी तरह आचरण करता है, जो शत्रुरूपी गजपर सिंहकी तरह आचरण करता है, जो शत्रुरूपी रात्रिके लिए सूर्यके समान आचरण करता है; जो शत्रुरूपी घोड़ेके लिए महिषका आचरण करता है, जो शत्रुरूपी साँपके लिए गरुड़का आचरण करता है, जो शत्रु-रूपी वनसमूहके लिए दावानलका काम करता है, जो शत्रुरूपी मेघसमूहमें पवनका काम करता है, जो शत्रुरूपी पवनके लिए पर्वतका आचरण करता है, जो शत्रुरूपी पर्वतके लिए वज्रका काम करता है। यह सुनकर मनमें विरुद्ध होकर क्रुद्ध तथा जिसके ओठ फड़क रहे हैं, जिसकी आँखें रक्त-कमलके समान लाल हैं, ऐसे राजा अनन्तवीर्यने इस प्रकार देखा मानो विश्व है भोजन जिसका ऐसे यमने देखा हो ॥१-९॥

[८]

भय-भीसणु अमरिस-कुइय-देहु । गज्जन्तु समुट्ठिउ जेम मेहु ॥१॥
करेँ असिवरु लेइ ण लेइ जाम । णहेँ उड्डेँवि रामेँ धरिउ ताम ॥२॥
सिरेँ पाउ देवि चोरु व णिबद्धु । णं वारणु वारि-णिबन्धेँ रुद्धु ॥३॥
रिउ चप्पेँवि पर-बल-मड्डवट्टु । जिण-भवणहों सम्मुहु वलु पयट्टु ॥४॥
एत्थन्तरेँ महुमहणेण वुत्तु । 'जो ढुक्कइ तं मारमि णिरुत्तु' ॥५॥
तं सुणेँवि परोप्परु रिउ चवन्ति । 'किं एय परक्कम तियहँ होन्ति' ॥६॥
एत्तडिय बोल्ल पडिवक्खेँ जाम । णर दस वि जिणालउ पत्त ताम ॥७॥
जे णिलिय आसि पुर-रक्खसेण । णं मुक्क पडीवा भय-वसेण ॥८॥

घत्ता

तावन्तेउरु विमण-मणु गय-गइ-गमणु बहु-हार-दोर-खुप्पन्तउ ।
आयउ पासु जिणिन्दहों तहों ल[illegible] [illegible] भमन्तउ ॥८॥

[९]

जं एव वुत्तु वणियायणेण । पहु पभणिउ दसरह-णन्दणेण ॥१॥
'जइ भरहहों होहि सुभिच्चु अज्जु । तो अज्जु वि लइ अप्पणउ रज्जु' ॥२॥
तं वयणु सुणेँवि परलोय-भीरु । विहसेप्पिणु भणइ अणन्तवीरु ॥३॥
'पाडेवउ जो चलणेहिँ णिच्चु । तहों केम पडीवउ होमि भिच्चु ॥४॥
वलिमण्डएँ तव-चरणेण जो वि । पाडेवउ पायहिँ भरहु सो वि' ॥५॥
तं वयणु सुणेप्पिणु तुट्ठु रामु । 'सच्चउ जेँ तुज्झु अणन्तवीरु णामु ॥६॥
पुणरुत्तेँहिँ घुट्ठइ 'साहु साहु' । हक्कारिउ तहों सुउ सहसवाहु ॥७॥
सो णिय संताणहों रइउ राउ । अण्णु वि भरहहों पाइक्कु जाउ ॥८॥

घत्ता

रिउ मेल्लेप्पिणु दस वि जण गय तुट्ठ-मण णिय-णयरु पराइय आवेँहिँ ।
णन्दावत्त-पराहिवइ जिणेँ करेँवि मइ दिक्खहेँ समुट्ठिउ तावेँहिँ ॥९॥

[८] भयसे भयंकर, अमर्षसे क्रुद्ध शरीर वह मेघकी तरह गरजता हुआ उठा, और जबतक वह हाथमें असिवर ले या न ले, तबतक रामने आकाशमें उड़कर उसे पकड़ लिया। उसके सिरपर पैर रखकर चोरकी तरह उसे बाँध लिया, मानो महागज आलान स्तम्भमें क्षुब्ध हो। शत्रुसेनाको चकनाचूर करनेवाले राम शत्रुको चाँपकर जिनमन्दिरके सामने लौटे। इसी बीच लक्ष्मणने कहा—"जो आता है उसे मैं निश्चित रूपसे मारूँगा।" यह सुनकर शत्रु आपसमें कहते हैं क्या इस प्रकारका पराक्रम स्त्रियोंमें होता है? जबतक प्रतिपक्षने इतने बोल कहे थे कि वे दसों आदमी जिनालय पहुँच गये, मानो जो नगररूपी राक्षसके द्वारा निगल लिये गये थे, वे भयके कारण फिर छोड़ दिये गये। तब गजपति विमन-मन, बहुत-से हार-डोरको निमग्न करता हुआ अन्तःपुर, युद्धोंके विजेता उन रामके पास आया "पतिकी भीख दो" यह माँगता हुआ ॥१-९॥

[९] जब वनिताजनने इस प्रकार कहा, तो दशरथके पुत्र रामने राजा अनन्तवीर्यसे कहा, "यदि तुम आज भी भरतके सच्चे सेवक होते हो तो तुम आज भी अपना राज्य ले सकते हो।" यह सुनकर परलोक भीरु अनन्तवीर्य हँसकर कहता है—"मैं नित्य जिसे अपने पैरोंपर डाले रहा हूँ, उलटा उसका मैं अनुचर कैसे बनूँ? तो भी मैं तपश्चरणके द्वारा बलपूर्वक भरतको अपने पैरोंपर डालूँगा।" यह वचन सुनकर राम सन्तुष्ट हुए (और बोले) तुम्हारा नाम अतिवीर्य सच ही है। पुनरुक्तियोंमें उन्होंने कहा 'ठीक ठीक'। उन्होंने उसके पुत्र सहस्रबाहुको बुलाया। वह राज्यपरम्पराका राजा बना दिया गया। एक और भरतका सेवक हो गया। शत्रुको छोड़कर वे दसों लोग चले गये और सन्तुष्ट मन जब अपने नगर पहुँचे तबतक नन्दा-

[१०]

एत्थन्तरेँ पुर-परमेसराहँ । दिक्खाएँ समुट्ठिउ सउ णराहँ ॥१॥
सद्दूल-विउल-वरवीरभद्द । मुणिभद्द-सुभद्द-समन्तभद्द ॥२॥
गरुडद्धय-मयरद्धय-पचण्ड । चन्दण-चन्दोयर-मारिचण्ड ॥३॥
जयवन्त-महद्धय-चन्द-सूर । जय विजय-अजय-दुज्जय-कुकूर ॥४॥
इय एत्तिय पहु पव्वइय तेत्थु । णाहण-पव्वएँ जय-णन्दि जेत्थु ॥५॥
थिय पञ्च मुट्ठि सिरेँ लोउ देवि । सहुँ वाहहिँ आहरणइँ मुएवि ॥६॥
णीसंग वि थिय रिसि-सङ्घ-सहिय । संसार वि भव-संसार-रहिय ॥७॥
णिम्माण वि जीव-सयहुँ समाण । णिग्गन्थ वि गन्थ-पयत्थ-जाण ॥८॥

घत्ता

इय एक्केक्क-पहाण रिसि भव-तिमिर-ससि तव-सूर महावय-धारा ।
छट्ठट्ठम-दस-बारसेँहिँ बहु-उववसेँहिँ अप्पाणु खवन्ति भडारा ॥९॥

[११]

तव-चरणेँ परिट्ठिउ जं जि राउ । तहोँ णन्दण-हत्थिएँ भरहु आउ ॥१॥
तें दिट्ठु भडारउ सेय-पिण्डु । जो मोह-महीहरेँ वज्ज-दण्डु ॥२॥
जो कोह-हुवासणेँ जल-णिहाउ । जो मयण-महावणेँ पलय-वाउ ॥३॥
जो दप्प-गइन्देँ महा-मइन्दु । जो माण-भुअङ्गमेँ वर-खगिन्दु ॥४॥
सो मुणिवरु दसरह-णन्दणेण । वन्दिउ णिय-गरहण-णिन्दणेण ॥५॥
सो साहु साहु गम्भीर धीर । पइँ पूरिय पइज्जाउ णत्तवीर ॥६॥
जं पाडिउ हउँ चलणेहिँ देव । तं तिहुअणु काराविउ सेव ॥७॥
गउ एम पसंसेँ वि भरहु राउ । णिय-णयरु पत्तु साहण-सहाउ ॥८॥

भरतका राजा अनन्तवीर्य जिनेन्द्रमें अपनी मति कर दीक्षाके लिए उठ खड़ा हुआ ॥१-९॥

[१०] इसी बीच दीक्षाके लिए नगरके परमेश्वर सौ आदमी उठ खड़े हुए। शार्दूल, विपुल, वर-वीरभद्र, मुनिभद्र, सुभद्र, समन्तभद्र, गरुड़ध्वज, मकरध्वज, प्रचण्ड, चन्दन, चन्दोदर, मारिचण्ड, जयघण्ट, मह्ध्वज, चन्द्र, सूर्य, जय, विजय, अजय, दुर्जय और कुक्रूर, ये इतने राजा वहाँ प्रव्रजित हुए कि जहाँ लाञ्छन पर्वतपर जयनन्दी थे। सिरमें पाँच मुट्ठी केश लौंचकर, वाहनोंके साथ आभूषणोंको छोड़कर, वह स्थित हो गये। अनासंग होते हुए भी वे मुनिसंघके साथ थे। संसारमें रहते हुए भी भव-संसारसे रहित थे। मानरहित होकर भी सैकड़ों जीवोंके समान थे। निर्ग्रन्थ होकर भी ग्रन्थोंके पद—अर्थोंके ज्ञाता थे। इस प्रकार एकसे एक प्रधान ऋषि, भवरूपी अन्धकारके लिए चन्द्र, तप, सूर्य और महाव्रतोंके धारक थे। छह आठ और दस दिनोंवाले उपवासोंसे वे आदरणीय अपना क्षय करने लगे ॥१-९॥

[११] जब राजा अनन्तवीर्य तपमें स्थित हो गया तो भरत राजा उसकी वन्दनाभक्तिके लिए आया। उसने तेजपिण्ड भट्टारकको देखा जो मोहरूपी महीधरके लिए वज्रदण्ड थे। जो कोपरूपी आगके लिए जलसमूह थे। जो कामरूपी मेघके लिए प्रलय पवन थे। जो दर्परूपी महागजके लिए महामृगेन्द्र थे, जो मानरूपी सर्पराजके लिए श्रेष्ठ गरुड़ थे। दशरथके पुत्र भरतने अपनी गर्हा और निन्दाके साथ उन मुनिवरकी वन्दना की—"हे गम्भीर धीर! बहुत ठीक, बहुत ठीक। हे अनन्तवीर्य! तुमने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की, हे देव, जो तुमने मुझे भी अपने चरणोंमें गिरा लिया और उस त्रिभुवनसे भी सेवा करवायी।" भरत इस प्रकार प्रशंसा करके चला गया; सेना है सहायक

घत्ता

हरि-बल पइट्ठ जयन्तपुरें धण-कण-पउरें जय-मङ्गल-तूर-वमालेंहिँ ।
लक्खणु लक्खणवन्तियएँ णिय-पत्तियएँ अवगूढु स इं भु व-डालेंहिँ ॥१५॥

●

एक्कवीसमो संधि

धण-धण्ण-समिद्धहों पुहइ-पसिद्धहों जण-मण-णयणाणन्दणहों ।
वण-वासहों जन्तेंहिँ रामाणन्तेंहिँ किउ उम्माहउ पट्टणहों ॥

[१]

छुडु-छुडु उवय समागम-लुद्धइँ । रिसि-कुलइँ व परमागम-लुद्धइँ ॥१॥
छुडु छुडु अवरोप्पर अणुरत्तइँ । सञ्झ-दिवायरइँ व अणुरत्तइँ ॥२॥
छुडु छुडु अहिणव-बहु-परइत्तइँ । सोम-पहा इव सुन्दर-चित्तइँ ॥३॥
छुडु छुडु चुम्बिय-सामरसाइँ । फुल्लन्धुय इव छुद्ध-रसाइँ ॥४॥
ताम कुमारें णयण-विसाला । जन्तें आउच्छिय वणमाला ॥५॥
'हे मालूर-पवर-पीवर-थणें । कुवलय-दल-णवकुविलय-लोअणें ॥६॥
हंस-गमणें गय-लील-विलासिणि । चन्द-वयणें णिय-णाम-पगासिणि ॥७॥
जामि कन्तें हउँ दाहिण-देसहों । गिरि-किक्किन्ध-णयर-उद्देसहों' ॥८॥

घत्ता

सुरवर-थरहरें धव-थरइत्तें जं आउच्छिय णियय धण ।
ओहुल्लिय-वयणी पगलिय-णयणी थिय हेट्ठामुह विमण-मण ॥९॥

जिसकी ऐसा वह, अपने नगर चला गया। राम और लक्ष्मणने जयमंगल तूर्योंके कोलाहलोंके साथ धन-कणसे प्रचुर जयन्तपुर नगरमें प्रवेश किया। लक्ष्मण, लक्षणवती अपनी पत्नीके द्वारा स्वयं बाहुरूपी डालोंसे आलिंगित किया गया ॥१-९॥

●

इक्कतीसवीं सन्धि

राम लक्ष्मणने धन-धान्यसे समृद्ध पृथ्वीमें प्रसिद्ध जनोंके मन और नेत्रोंको आनन्द देनेवाले उस नगरका वनवासको जाते हुए त्याग कर दिया।

[१] उस समय दोनों (वनमाला और लक्ष्मण) समागमके लोभी थे। ऋषिकुलकी तरह वे परमागम (परम आगम—एक दूसरेका आगमन) के लोभी थे। शीघ्र वे एक दूसरेसे अनुरक्त हो उठे। वे सन्ध्या और दिवाकरकी तरह अनुरक्त थे। वे दोनों अभिनव वधूवर सोम और प्रभाके समान सुन्दर चित्त थे। जिन्होंने रक्त-कमल (मुख कमल) का चुम्बन किया है, ऐसे भ्रमरोंके समान दोनों शीघ्र लुब्धरस थे। इतनेमें प्रस्थान करते हुए कुमारने विशाल नेत्रवाली वनमालासे पूछा "हे बेलफलकी तरह पीवर स्तनोंवाली, कुवलय दलके समान खिले हुए नेत्रोंवाली, हंसगामिनी, गजगतिकी लीलासे विलसित, अपना नाम स्वयं प्रकाशित करनेवाली चन्द्रमुखी वनमाले, मैं किष्किन्धा पर्वतको लक्ष्य बनाकर दक्षिण देशके लिए जाता हूँ। सुरवरसे वर प्राप्त करनेवाले नव-वरने जब अपनी पत्नीसे पूछा तब गलितनयन, मुरझाये हुए चेहरेवाली विमन मन वह अपना मुख नीचा करके रह गयी ॥१-९॥

[१]

कज्जल-बहलुप्पील-सणाहेँ । महि पक्खालिय अंसु-पवाहेँ ॥१॥
'एत्तिउ णिरवउ माणुस-लोउ । जं जर-जम्मण-मरण-विओउ' ॥२॥
धीरिय लक्खणेण एत्थन्तरेँ । 'रामहोँ णिलउ करेमि वणन्तरेँ ॥३॥
कइहि मि दिणेँहिँ पडीवउ आवमि । सयल स-सायर महि भुञ्जावमि ॥४॥
अह पुणु कहवि तुलग्गेँ णायउ । हउँ ण होमि सोमित्तिएँ जायउ ॥५॥
अण्णु वि रयणिहेँ जो भुञ्जन्तउ । मंस-भक्खि महु मज्जु पियन्तउ ॥६॥
जीव वहन्तउ अलिउ चवन्तउ । पर-धणेँ पर-कलत्तेँ अणुरत्तउ ॥७॥
[illegible] गाएँहिँ [illegible]हिँ हुअउ । हउँ [illegible] तेण संजुत्तउ ॥८॥

घत्ता

अह एम वि णावमि चलणु ण दावमि तो णिब्भुक्क-महाहवहोँ ।
णव-कमल-सुकोमल णह-पह-उज्जल छिवमि पाय मइँ राहवहोँ' ॥९॥

[२]

वणमाल णियत्तेँवि भग्गमाण । गय लक्खण-राम सुपुज्जमाण ॥१॥
थोवन्तरेँ मच्छुत्थल्ल देन्ति । गोला-णइ दिट्ठ समुव्वहन्ति ॥२॥
सुंसुअर-घोर-घुरुघुरुहुरन्ति । करि-मयरड्डोहिय-डुहुडुहन्ति ॥३॥
डिण्डीर-सण्ड-मण्डलिउ देन्ति । दद्दुरय-रडिय-दुरदुरदुरन्ति ॥४॥
कल्लोलुल्लोलेँहिँ उव्वहन्ति । उग्घोस-घोस-घवघवघवन्ति ॥५॥
पडिखलण-वलण-खलखलखलन्ति । खलखलिय-खलक्क-झडक्क देन्ति ॥६॥
ससि-सङ्ख-कुन्द-धवलोज्झरेण । कारण्डुड्डाविय-डम्बरेण ॥७॥

घत्ता

फेणावलि-वङ्किय वलयालङ्किय णं महि-कुलवहुअहेँ तणिय ।
जलणिहि-भत्तारहोँ मोत्तिय-हारहोँ वाह पसारिय दाहिणिय ॥८॥

[२] काजल और बाष्पके उत्पीड़नसे युक्त आँसुओंके प्रवाहसे उसने धरतीको प्लावित कर दिया। मनुष्य-लोकमें यही बुरी बात है कि जो उसमें जरा, जन्म, मरण और वियोग हैं। इसी बीच लक्ष्मणने उसे धीरज बँधाया कि वनान्तरमें रामका घर बनाकर कुछ ही दिनोंमें मैं वापस आ जाऊँगा, और तुम्हें समुद्र सहित समूची धरतीका उपभोग कराऊँगा। यदि मैं कहकर भी तुलालग्नमें नहीं आऊँ तो मैं सुमित्रासे पैदा हुआ नहीं। और भी, रात्रिमें भोजन करते हुए मांस भक्षण, मधु और मद्य पीते हुए, जीवोंका वध करते हुए, झूठ बोलते हुए, दूसरेके धन और स्त्रीमें अनुरक्त होते हुए, मनुष्य इन व्यसनोंसे जो पाप भोगता है, उस पापसे मैं संलग्न होऊँ। यदि मैं इस प्रकार भी नहीं आता और तुम्हें मुख नहीं दिखाता तो, जिन्होंने महायुद्धोंका निर्वाह किया है, ऐसे राघवके नवकमलोंके समान कोमल तथा नखप्रभासे उज्ज्वल चरणोंको मैं छूता हूँ ॥१-९॥

[३] इस प्रकार भग्न होती हुई वनमालाको नियन्त्रित कर पूज्यमान राम लक्ष्मण चले गये। थोड़ी दूरपर उन्हें मत्स्योंसे उछाल देती हुई और बहती हुई गोदावरी दिखाई दी। शिशुमारोंके घोर घुर-घुर शब्दसे घुरघुराती हुई, गज और मगरोंसे आलोड़ित डुह-डुह करती हुई, फेनसमूहका मण्डल देती हुई, मेंढकोंकी रटन्नसे दुर-दुर करती हुई, लहरोंके उल्लोलसे बहती हुई, उद्घोषके घोषसे घव-घव करती हुई; प्रतिस्खलन और मुड़नेसे खल-खल करती हुई, जिसने हंसोंको उड़ानेका आडम्बर किया है, ऐसे चन्द्र, शंख और कुन्द पुष्पके समान धवल निर्झरसे स्खलित चट्टानोंको झटका देती हुई, जिसके पास मोतीका हार है, ऐसे समुद्ररूपी पतिके लिए प्रसारित फेनावलिसे वक्र तथा वलयसे अंकित जो मानो धरतीरूपी कुलवधूकी दायीं बाँह

[४]

थोवन्तरेँ बल-णारायणेहिँ । खेमञ्जलि-पट्टणु दिट्ठु तेहिँ ॥१॥
अरिदमणु णराहिउ वसइ जेत्थु । अइचण्डु पयण्डु ण को वि तेत्थु ॥२॥
रक्खेसरु जो सव्वहँ वरिट्ठु । सो पट्टु पडिवाइ मि मुक्कें दिट्ठु ॥३॥
णह-भासुरु जो लङ्गूल-दीहु । सो मायङ्गेहिँ मि कइउ सीहु ॥४॥
जो दुद्दम-दाणव-तिमिर-सूरु । सो तिय-मुहपङ्कयहोँ तसइ सूरु ॥५॥
णं रायहँ तं छत्तइ मि छित्तु । जं सुहडहँ तं कुडुइ मि चित्तु ॥६॥
तहोँ णयरहोँ थिउ अवरुत्तरेण । उज्जाणु अद्ध-कोसन्तरेण ॥७॥
सुरसेहरु णामें जगेँ पयासु । णं अवय-विहडप्फड थिउ मकासु ॥८॥

घत्ता

तहिँ तेहएँ उववणेँ णव-तरुवर-घणेँ जहिँ अमरिन्दु रइ करइ ।
महिँ णिलउ करेप्पिणु बे वि थवेप्पिणु लक्खणु णयरेँ पईसरइ ॥९॥

[५]

पइसन्तें पुर-बाहिरेँ करालु । मड-मडय-पुञ्जु दीसइ विसालु ॥१॥
ससि-सङ्ख-कुन्द-हिम-दुद्ध-धवलु । हरहार-हंस-सरयब्भ-विमलु ॥२॥
तं पेक्खेँवि लहु हरिसिय-मणेण । गोवालु पपुच्छिउ लक्खणेण ॥३॥
'इह दीसइ काइँ महा-पयण्डु । णं णिम्मलु हिमगिरि-सिहर-खण्डु' ॥४॥
तं णिसुणेँवि गोवहिँ वुत्तु एम । 'किं एउ वत्त पइँ ण सुअ देव ॥५॥
अरिदमण-धीय जियपउम-णाम । भड-भड-संघारणि जिह दुगाम ॥६॥
सा अज्ज वि अच्छइ वर-कुमारि । पच्चक्ख णाइँ आहूय कु-मारि ॥७॥
तहेँ कारणेँ जो जो मरइ जोहु । सो घिप्पइ तं हड्डहरि एहु ॥८॥

घत्ता

जो घइँ अब्भगणेँ वि तिण-समु मण्णेँ वि पञ्च वि सत्तिउ धरइ णरु ।
पडिपक्ख-वियद्दणु णयणाणन्दणु सो पर होसइ ताहेँ वरु' ॥९॥

हो ॥१-८॥

[४] थोड़ी दूर जानेपर राम और लक्ष्मणने वहाँ क्षेमांजलि नगर देखा। जहाँ अरिदमन नामका अत्यन्त चण्ड और प्रचण्ड राजा रहता था, वहाँ वैसा दूसरा कोई नहीं था। वह राज्येश्वर सबमें वरिष्ठ था, वह राजा पथिकोंके मूलमें भी देख लेता था। नखोंसे भास्वर, और लांगूल (पूँछ अस्त्रविशेष) से दीर्घ वह मातंगोंके द्वारा (गजों—गुण्डों) सिंहकी तरह ग्रहण किया जाता था। जो दुर्दम दानवोंके शिविरको चूर-चूर करनेवाला था, वह सूर (सूर्य) स्त्रियोंके मुखरूपी चन्द्रको अस्त करनेवाला था। उस नगरके अपर—उत्तर (वायव्य) कोणमें आधे कोशकी दूरीपर उद्यान था। सुरशेखर नामका विश्वमें प्रसिद्ध जो उद्यान मानो रामके लिए हाथमें अर्घ लेकर स्थित था। नववृक्षोंसे सघन उस वैसे उद्यानमें कि जहाँ अमरेन्द्र रतिक्रीड़ा करता है, घर बनाकर राम और सीता, दोनोंको वहाँ रखकर लक्ष्मण नगरमें प्रवेश करता है ॥१-९॥

[५] प्रवेश करते ही उसे नगरके बाहर भटशवोंका भयंकर और विशाल समूह दिखाई देता है, जो शशि, शंख, कुन्द, हिम, दूध के समान धवल था। शिवके हार, हंस और शारदीय मेघके समान विमल था। उसे देखकर हर्षित मन लक्ष्मणने शीघ्र एक गोपालसे पूछा—"यह महाप्रचण्ड क्या दिखाई देता है, मानो निर्मल हिमगिरि-शिखर खण्ड हो।" यह सुनकर गोपालने कहा—"हे देव, क्या यह बात आपने नहीं सुनी। अरिदमनकी जितपद्मा नामकी पुत्री है। दुर्नामकी तरह वह भटसमूहका संहार करनेवाली है। वह आज भी वर-कुमारी है। जैसे वह प्रत्यक्ष कु-मारि ही आयी हो। उसके कारण जो योद्धा मरता है वह यहाँ डाल दिया जाता है; यह वही हड्डियोंका पहाड़ है। जो नर अपनी अवहेलना कर और तिनकेके बराबर समझते हुए

[६]

तं वयणु सुणेप्पिणु दुण्णिवारु । रोमञ्चिउ खणेँ लक्खण-कुमारु ॥१॥
णियड-प्पय-छोहेँहिँ पुणु पयट्टु । णं केसरि मयगल-मडूय-भट्टु ॥२॥
कत्थइ कप्पद्दुम दिट्ठ तेण । णं पन्थिय थिय णयरासएण ॥३॥
कत्थइ मालइ कुसुमइँ खिवन्ति । सीस व सुकइहेँ जसु विक्खिरन्ति ॥४॥
कत्थइ लक्खइ सरवर विचित्त । अवगाहिय सीयल जिह सुमित्त ॥५॥
कत्थइ गोरसु सव्वहँ रसाहुँ । णं णिग्गउ माणु हरेवि ताहुँ ॥६॥
कत्थइ आवाह उज्झन्ति केम । दुज्जण-दुव्वयणेंहिँ सुयण जेम ॥७॥
कत्थइ कत्थइ णच्चन्ति मोर । [illegible] जेम ॥८॥
णं खउ हक्कारइ 'एहि एहि । भो लक्खण लहु जियपउम केहि' ॥९॥

घत्ता

णाइकमल-वयणें दीहिय-णयणें देवल-दाढा-भासुरेंण ।
णं गिलिउ जणद्दणु असुर-विमद्दणु एन्तउ णयर-णिसायरेंण ॥१०॥

[७]

पायार-भुएँहिँ पुरणाहेँ तेण । अवरुण्डिउ लक्खणु णाइँ तेण ॥१॥
कत्थइ कुम्भा सहु णाडएहिँ । णं णड णाणाविह णाडएहिँ ॥२॥
कत्थइ संसारि ससुद्ध-वंस । णाइव सु-कुलीण विसुद्ध-वंस ॥३॥
कत्थइ धय-वड णच्चन्ति एम । वरि अम्हि सुरालय सग्गेँ जेम ॥४॥
कत्थइ लोहारेंहिँ लोहखण्डु । पिट्टिज्जइ णरएँ व पावपिण्डु ॥५॥
तं हट्टमग्गु मेल्लेंवि कुमारु । णिविसेण पराइउ रायबारु ॥६॥
पडिहारु वुत्तु 'कहिँ गम्पि एम । वरु वुच्चइ आइउ एक्कु देव ॥७॥

पाँचों शक्तियोंको धारण करता है, प्रतिपक्षका मर्दन करनेवाला नेत्रोंके लिए आनन्ददायक वह उसका वर होगा" ॥१-९॥

[६] यह वचन सुनकर दुर्निवार कुमार लक्ष्मण एक पलमें पुलकित हो उठा। वह विकट पद क्षोभोंके साथ पुनः चला, मानो मैगल महागजका नाश करनेवाला सिंह हो। कहीं उसने कल्पवृक्ष देखे, मानो नगरकी आशासे पथिक ही वहाँ ठहर गये हों। कहींपर मालतीके पुष्प बिखरे हुए थे जैसे शिष्य सुकविका यश बिखरा रहे थे। कहींपर विचित्र सरोवर दिखाई दे रहे थे, सुमित्रसे शीतल उसमें उसने अवगाहन किया। कहींपर सब रसोंका गोरस था मानो वह उनका मान हरणके लिए ही निकल आया हो। कहींपर ईखके खेत इस प्रकार जलाये जा रहे थे जैसे दुर्जनोंके दुर्वचनोंसे सज्जनोंको जलाया जा रहा हो। कहींपर रहटें इस प्रकार घूम रही थीं कि जिस प्रकार संसारी संसारमें घूमते हैं। मानो, उसकी (नगरकी) ध्वजा बुला रही थी कि लक्ष्मण आओ-आओ, शीघ्र जितपद्माको लो लो। जिसका द्वाररूपी उद्भट मुख है, जो देवकुलरूपी दाढ़ोंसे भास्वर है, बावड़ियाँ जिसके नेत्र हैं, ऐसे नगररूपी निशाचरने आते हुए असुर संहारक जनार्दनको निगल लिया ॥१-१०॥

[७] उस नगरने अपनी प्राकाररूपी भुजाओंसे जैसे लक्ष्मणका आलिंगन कर लिया। कहींपर रसियोंके साथ घड़े थे; मानो नाटकोंके साथ नाना नट हों। कहींपर उत्तम वंशके महागज थे, जैसे सुकुलीन और विशुद्ध वंशके मनुष्य हों, कहींपर ध्वजपट इस प्रकार नृत्य कर रहे थे, जैसे स्वर्गमें सुरसमूहके समान हर्म्य श्रेष्ठ हों। कहींपर लुहारोंके द्वारा लोहखण्ड, नरकमें पापपिण्डकी तरह पीटे जा रहे थे। उस बाजार मार्गको छोड़कर कुमार एक पलमें राजद्वारपर पहुँच गया। वह प्रतिहारसे कहता है, "जाकर यह कहो कि नर कहता है कि एक

जियपउमहें माण-मरट्ट-दलणु । पर-बल-मसक्कु दरियारि-दमणु ॥८॥
रिउ-संघायहों संघाय-करणु । सहुँ सत्तिहिँ तुज्झु वि सत्ति-हरणु ॥९॥

घत्ता

(अह) किं बहुएं जम्पिएं णिप्फल-पवियप्पें एम भणहि तं अरिदमणु ।
दस-वीस ण पुच्छइ सउ वि पडिच्छइ पञ्चहँ सत्तिहिं को गहणु' ॥१०॥

[८]

तं णिसुणेंवि गउ पडिहारु तेत्थु । सह-मण्डवें सो अरिदमणु जेत्थु ॥१॥
पणवेप्पिणु वुच्चइ तेण राउ । 'परमेसर विण्णत्तिएँ पसाउ ॥२॥
मइँ कालें चोइउ आउ एक्कु । ण मुणहुँ किं अक्कु मियङ्कु सक्कु ॥३॥
किं कुसुमाउहु अतुलिय-पयाउ । पर पञ्च वाण णउ एक्कु चाउ ॥४॥
तहों णरहों णवल्ली भङ्गि का वि । फिट्टइ ण दिट्ठि अङ्गहों कयावि ॥५॥
सो चवइ एम जियपउम लेमि । किं पञ्चहिँ दस सत्तिउ धरेमि ॥६॥
तं णिसुणेंवि पभणइ सत्तुदमणु । 'पेक्खमि कोक्कहि वरइत्तु कवणु' ॥७॥
पडिहारें सहिउ आउ कण्हु । जयलच्छि-पसाहिउ जुज्झ-तण्हु ॥८॥

घत्ता

अब्भुब्भड-वयणेंहिँ दीहर-णयणेंहिँ णरवइ-चिन्दहिँ वुज्झएहिँ ।
लक्खिज्जइ लक्खणु एन्तु स-लक्खणु जेम मइन्दु महागएँहिँ ॥९॥

[९]

लक्खणु पासु पराइउ जं जे । वुत्तु णिवेण हसेप्पिणु तं जे ॥१॥
'को जियपउम लएवि समत्थु । केण हुवासणें ढोइउ हत्थु ॥२॥
केण सिरेण पडिच्छिउ वज्जु । केण कियन्तु वि घाइउ अज्जु ॥३॥
केण णहङ्गणु छित्तु करग्गें । केण सुरिन्दु परज्जिउ भोग्गें ॥४॥
केण वसुन्धरि दारिय पाएं । केण पलोट्टिउ दिग्गउ घाएं ॥५॥

देख आया है जितपद्माके मान-अहंकारको चूर-चूर करनेवाला, परबलका घातक, गर्वित शत्रुका दमन करनेवाला, शत्रु-समूहका संहार करनेवाला, और शक्तियोंके साथ तुम्हारी भी शक्तियों-का हरण करनेवाला। बहुत कहने और निष्फल कहनेसे क्या, उस अरिदमन राजासे कहना कि वह दस-बीसकी नहीं पूछता है, सौ शक्तियोंकी इच्छा रखता है। पाँच शक्तियोंके ग्रहणकी क्या बात ?" ॥१–१०॥

[८] यह सुनकर प्रतिहार वहाँ गया कि सभामण्डपमें जहाँ अरिदमन था। उसने प्रणाम कर राजासे पूछा—"परमेश्वर, निवेदनके लिए आज्ञा ? कालसे प्रेरित एक सुभट आया हुआ है। मैं नहीं जानता कि वह सूर्य-चन्द्र या शक्र क्या है। क्या वह अतुलित प्रताप कामदेव है। परन्तु उसके पास एक धनुप और पाँच बाण नहीं हैं। उस मनुष्यकी कोई नयी भंगिमा है। उसके शरीरसे शोभा कभी भी नहीं हटती। वह इस प्रकार कहता है कि मैं जितपद्मा लूँगा। पाँच क्या, मैं दस शक्तियाँ ग्रहण करूँगा ?" यह सुनकर अरिदमन कहता है—"देखता हूँ। बुलाओ कौन वर है ?" प्रतिहारके द्वारा बुलाया गया लक्ष्मण आया, विजयलक्ष्मीको प्रसाधित करनेवाला और विजयका आकांक्षी। अत्यन्त उत्कट मुखवाले, दीर्घ नेत्रोंवाले, अजेय नरपतिवृन्दों द्वारा लक्षणोंसे सहित लक्ष्मण इस प्रकार देखा गया, मानो गजराजों द्वारा सिंह देखा गया हो" ॥१–९॥

[९] जब लक्ष्मण पास आया तो राजाने उससे हँसकर कहा—"जितपद्माको लेनेमें कौन समर्थ है। किसने आगमें हाथ डाला है। किसने सिरसे वज्रकी प्रतीक्षा की है। किसने आज कृतान्तको घायल किया है। किसने हाथके अग्रभागसे आकाश-को छुआ है। किसने भोगसे इन्द्रको पराजित किया है। किसने धरतीको पैरसे विदीर्ण किया है, किसने घातसे दिग्गजको

केण सुरेहहों मग्गु विसाणु। केण तलप्पएँ पाडिउ भाणु ॥६॥
लङ्घिउ केण समुद्दु असेसु। कें फण-मण्डवेँ चूरिउ सेसु ॥७॥
केण पहञ्जणु बद्धु पवेण। मेरु-महागिरि टालिउ केण ॥८॥

घत्ता

जिह तुहुँ तिह अण्ण वि णीसावण्ण वि गरुयइँ गज्जिय बहुय णर।
महु सत्ति-पहारेँहिँ रणेँ दुव्वारेँहिँ किय सय-सक्कर दिट्ठ पर' ॥९॥

[१०]

अरिदमणेँ महु जं अहिक्खित्तु। महुमहु जेम दवग्गि पलित्तु ॥१॥
'हउँ जिणपउम रूपुवि समत्थु। मइँ जि हुआसणेँ ढोइउ हत्थु ॥२॥
मइँ जि सिरेण पडिच्छिउ वज्जु। मइँ जि कियन्तु वि घाइउ अज्जु ॥३॥
मइँ जि णहङ्गणु छित्तु करग्गेँ। मइँ जि सुरिन्दु परज्जिउ भोग्गेँ ॥४॥
मइँ जि वसुन्धरि दारिय पाएँ। मइँ जि पलोट्टिउ दिग्गउ घाएँ ॥५॥
मइँ जि सुरेहहों मग्गु विसाणु। मइँ जि तलप्पएँ पाडिउ भाणु ॥६॥
लङ्घिउ मइँ जि समुद्दु असेसु। मइँ फण-मण्डवेँ चूरिउ सेसु ॥७॥
मइँ जि पहञ्जणु बद्धु पवेण। मेरु महागिरि टालिउ जेण ॥८॥

घत्ता

हउँ तिहुअण-डामरु हउँ अजरामरु हउँ तेत्तीसहुँ रणेँ अजउ।
खेमञ्जलि-राणा अतुह अयाणा मेल्लि सत्ति जइ सत्ति तउ' ॥९॥

[११]

तं णिसुणेँवि खेमञ्जलि-राणउ। उट्ठिउ गज्जगज्जन्तु पहाणउ ॥१॥
सत्ति-विहत्थउ सत्ति-पगासणु। धगधगधगधगन्तु स-हु आसणु ॥२॥
अम्बरेँ तेय-पिण्डु णउ दिणयरु। णिय-मज्जाय-चत्तु णउ सायरु ॥३॥
दाणेँ अणवरय-दाणु णउ मयगलु। परमण्डल-विणासु णउ मण्डलु ॥४॥

लोट-पोट किया है। किसने ऐरावतका दाँत उखाड़ा है? किसने 'तलप्रहार'से सूर्यको गिराया है, किसने अशेष समुद्रका उल्लंघन किया? किसने फणमण्डपपर शेषनागको चूर-चूर किया? किसने कपड़ेसे हवाको बाँधा? मेरुरूपी महागिरि किसने टाला। जैसे तुम वैसे ही दूसरे भी सामान्य हैं। बहुत-से लोग खूब गरजे परन्तु रणमें दुर्वार मेरे शक्ति-प्रहारोंसे वे केवल सौ टुकड़े किये गये देखे गये" ॥१–९॥

[१०] अब अरिदमनने सुभटपर इस प्रकार आक्षेप किया तो लक्ष्मण दावानलकी तरह भड़क उठा—"मैं ही जितपद्मा लेनेमें समर्थ हूँ। मैंने ही आज यमपर आघात किया है। मैंने ही हाथके अग्रभागसे आकाशको छुआ है। मैंने ही आज सुरेन्द्रको भोगमें परास्त किया है। मैंने ही धरतीको पैरसे विदीर्ण किया है। मैंने ही आघातसे दिग्गजको लोट-पोट किया है। मैंने ही ऐरावतके दाँतको भग्न किया है। मैंने ही तल-प्रहारसे सूर्यको गिराया है। मैंने ही अशेष समुद्र लाँघा है। मैंने ही फणमण्डपपर शेषनागको चूर-चूर किया है। मैंने ही कपड़ेसे हवाको बाँधा है। और मैंने महागिरि मेरुको टाला है। त्रिभुवन भयंकर मैं ही अजर, अमर, और तैंतीस करोड़ देवताओंमें अजेय हूँ। हे अज्ञानी अपण्डित क्षेमंजलि राना शक्ति छोड़ो, यदि तुममें शक्ति हो" ॥१–९॥

[११] यह सुनकर प्रधान क्षेमंजलि राना गरजता हुआ उठा। जिसके हाथमें शक्ति है ऐसा शक्तिका प्रकाशन करनेवाला वह धक-धक करती हुई आग सहित ऐसा लगता था, मानो जैसे आकाशमें तेजपिण्ड सूर्य हो, जैसे अपनी मर्यादासे त्यक्त समुद्र हो, जैसे अनवरत मदजल झरनेवाला मैगल हो, जैसे शत्रुमण्डलका नाश करनेवाला माण्डलिक राजा हो,

रामायणहों मज्झें गउ रामणु । भीम-सरीरु ण भीसु भयावणु ॥५॥
तेण विमुक्क सत्ति गोविन्दहों । णं हिमवन्तें गङ्ग समुद्दहों ॥६॥
धाइय धगधगन्ति समरङ्गणें । णं तडि तडयडन्ति णह-अङ्गणें ॥७॥
सुरवर णहें बोल्लन्ति परोप्परु । 'एण पहारें जीवइ दुक्करु' ॥८॥

घत्ता

एत्थन्तरें कण्हें जय-जस-तण्हें धरिय सत्ति दाहिण-करेण ।
संकेयहों ढुक्की थाणहों चुक्की णावइ पर-तिय पर-णरेण ॥९॥

[१२]

धरिय सत्ति जं समरें समत्थें । मेल्लिउ कुसुम-वासु सुर-सत्थें ॥१॥
पुण्णिम-इन्दु-कुन्द-सुह-सोमहें । केण वि कहिउ गम्पि जियपोमहें ॥२॥
'सुन्दरि पेक्खु पेक्खु जुज्झन्तहों । णोक्खी का वि सत्ति धरन्तहों ॥३॥
जा रउ तापं सत्ति विसज्जिय । लग्ग हत्थें असइ व्व लज्जिय ॥४॥
णर-मच्छरेण पुण अकलङ्कउ । पर चुम्बेवउ तुहु मुह-पङ्कउ' ॥५॥
तं णिसुणेप्पिणु विहसिय-वयणएँ । णव-कुवलय-दल-दीहर-णयणएँ ॥६॥
आल-गवक्खएँ जो अन्तर-पट्टु । णाइँ सहत्थें फेडिउ मुह-वट्टु ॥७॥
लक्खणु णयण-कडक्खिउ कण्णएँ । णं जुज्झन्तु णिवारिउ सण्णएँ ॥८॥
ताम कुमारें दिट्ठु सुदंसणु । धवलहरग्गें मुह-मयलञ्छणु ॥९॥
सुह-णक्खत्तें सुजोगें सुहङ्करु । णयणामेलउ जाउ परोप्परु ॥१०॥

घत्ता

एत्थन्तरें तुट्ठें मुक्कारुट्ठें लहु अण्णेक सत्ति णरेंण ।
स वि धरिय सरग्गें वाम-करग्गें णावइ णव-वहु णव-वरेंण ॥११॥

जैसे रामायणके मध्यमें रावण हो, मानो भीम शरीर भयानक भीम हो। उसने लक्ष्मणके ऊपर शक्ति छोड़ी। मानो हिमालयने समुद्रपर गंगा छोड़ी हो, वह शक्ति धक-धक करती हुई समरांगणमें इस प्रकार दौड़ी मानो नभके आँगनमें तड़-तड़ करती हुई विद्युत् हो। आकाशमें देवता आपसमें बातें करते हैं—इसके प्रहारसे जीवित रहना मुश्किल है। इसी अन्तरालमें जय और यशके अभिलाषी लक्ष्मणने उस शक्तिको अपने दायें हाथपर धारण कर लिया। उसी प्रकार, जिस प्रकार संकेत स्थानसे चुकी हुई परस्त्री परपुरुषके द्वारा ग्रहण कर ली जाती है ॥१-९॥

[१२] युद्धमें समर्थ लक्ष्मणने शक्ति धारण कर ली तो सुर-समूहने पुष्पवर्षा की। किसीने जाकर पूर्णेन्द्रके समान सुन्दर मुख और कोमल जितपद्मासे कहा—"हे सुन्दरि, देखो देखो, युद्ध करते हुए यह भी कितनी अनोखी भंगिमा है? तुम्हारे पिताने जो शक्ति छोड़ी है वह लज्जाहीन असतीकी तरह उसके हाथसे जा लगी है। इस मनुष्यरूपी भ्रमरके द्वारा केवल तुम्हारा अकलंक मुख-रूपी कमल चूमा जायेगा।" यह सुनकर हँसते हुए मुख तथा नवकुवलय दलके समान दीर्घ नेत्रोंवाली उसने झरोखेमें जो अन्तरपट था, उसे जैसे अपने हाथसे मुखपटकी तरह हटा दिया। कन्याने लक्ष्मणको नेत्रोंसे इस प्रकार कटाक्षित किया मानो संकेतसे युद्ध करनेके लिए मना किया हो। तबतक कुमारने धवल गृहरूपी आकाशमें सुदर्शनीय मुख-रूपी चन्द्र देखा। शुभ नक्षत्र, शुभ योगमें उनका आपसमें शुभंकर नेत्र-मिलाप हो गया। इसी बीच उस दुष्टने क्रुद्ध होकर एक और शक्ति छोड़ी। उसे भी सर है अग्रभागमें जिसके ऐसे बाएँ हाथसे इस प्रकार उसने रोक लिया जैसे नव-वधूको नववरने रोक लिया हो ॥१-११॥

[१३]

अण्णेक मुक्क बहु-मच्छरेण । वज्जासणि णाइँ पुरन्दरेण ॥१॥
स हि दाहिण-कक्खहिँ छुद्ध तेण । अवरुण्डिय वेस व कामुएण ॥२॥
अण्णेक विसज्जिय धगधगन्ति । णं सिद्धि-सिह जाला-सय मुअन्ति ॥३॥
स वि धरिय पुणु णारायणेण । वामऍ गोरि व तिणयणेण ॥४॥
णं भग्गिहुक देवइणन्दणेण । पज्जलिय मुक्क बहु-मच्छरेण ॥५॥
पम्मुक्क पधाइय णरवरासु । णं कण्ण सुकन्तहों सुहयरासु ॥६॥
स विसाणेंहिँ पुन्ति णिरुद्ध केम । णव-सुरय-समागमेँ जुवइ जेम ॥७॥
एत्थन्तरेँ देवहिँ लक्खणासु । सिरेँ मुक्क पडीवउ कुसुम-वासु ॥८॥
अरिदमणु ण सोहइ सत्ति-हीणु । खल-कुपुरिसु व्व थिउ सत्ति-हीणु ॥९॥

घत्ता

हरि रोमञ्चिय-तणु सहइ स-पहरणु रण-मुहेँ परिसक्कन्तु किह ।
रत्तुप्पल-लोयणु रस-वस-सोसणु पच्चाउहु वेयालु जिह ॥१०॥

[१४]

समरङ्गणेँ असुर-परायणेण । अरिदमणु वुत्तु णारायणेण ॥१॥
'खल खुद्द पिसुण मच्छरिय राय । महुँ जेम पडिच्छिय पञ्च घाय ॥२॥
तिह तुहु मि पडिच्छहिँ एक्क सत्ति । जइ अत्थि का वि मणेँ मणुस-सत्ति' ॥३॥
किर एम भणेप्पिणु हणइ जाम । जियपउमएँ वलिय गाल ताम ॥४॥
'भो साहु साहु रणेँ दुण्णिरिक्ख । मं पहरु देव दइ जणण-भिक्ख ॥५॥
जं समरेँ परज्जिउ सत्तुदमणु । पइँ मुएँवि अण्णु वरइत्तु कवणु' ॥६॥

[१३] अत्यधिक ईर्ष्यासे भरे हुए उसने एक और शक्ति छोड़ी जैसे पुरन्दरने वज्राशनि छोड़ी हो। उसे उसने स्वामी काँखमें इस प्रकार चाँप लिया जैसे कामुकने वेश्याको आलिंगित किया हो। उसने एक और धक-धक करती शक्ति छोड़ी, मानो सैकड़ों ज्वालाएँ छोड़नेवाली आगकी ज्वाला हो। आती हुई उसे भी नारायणने उसी प्रकार धारण कर लिया, जिस प्रकार शिवजीके द्वारा वामार्धमें पार्वती धारण की जाती हैं। तब बहुमत्सरवाले देवकी पुत्र अरिदमनने पाँचवीं शक्ति फेंकी जो मानो महीधर हो। छोड़ी गयी वह, उस नरवरके पास इस प्रकार दौड़ी जैसे मानो कान्ता शुभंकर पतिके पास दौड़ी हो। किन्तु कुमारने अपने दाँतोंसे उसे उसी प्रकार रोक लिया जिस प्रकार नवसुरतागममें युवती रोक ली जाती है। इसी मध्य देवोंने लक्ष्मणके ऊपर फिरसे कुसुमवर्षा की। वह अरिदमन शक्तिहीन होकर नहीं सोह रहा था, वह दुष्ट पुरुषकी तरह शक्तिहीन होकर स्थित हो गया था। पुलकित शरीर, अस्त्र सहित, रणमुखमें चलता हुआ इस प्रकार शोभित था, जैसे जिसकी आँखें रक्त कमलके समान हैं, रस मज्जा जिसका भोजन है, ऐसा पाँच आयुधवाला वेताल हो ॥१-१०॥

[१४] समरांगणमें असुरोंको पराजित करनेवाले लक्ष्मणने अरिदमनसे कहा—"खल, क्षुद्र, दुष्ट, मत्सरसे भरे राजन्, जिस प्रकार मैंने पाँच आघातोंको सहन किया है, उसी प्रकार तुम भी एक शक्तिको झेलो यदि तुम्हारे मनमें थोड़ी भी मनुष्य शक्ति है।" यह कहकर जैसे ही वह प्रहार करता है कि जित-पद्माने उसके गलेमें माला डाल दी। और बोली—"रणमें दुर्दर्शनीय बहुत ठीक, बहुत ठीक, हे देव प्रहार मत करो, पिता-की भीख दो जो तुमने युद्धमें अरिदमनको पराजित कर दिया तो तुम्हें छोड़कर और कौन मेरा वर हो सकता है?"

तं वयणु सुणेप्पिणु लक्खणेण । आउच्छिउ विसल्लहें लक्खणेण ॥७॥
मुक्काउहु गउ अरिदमण-वासु । सहसक्खु व पणविउ जिणवरासु ॥८॥

घत्ता

'जं अमरिस-कुद्धें जय-जस-लुद्धें विप्पिउ किउ तुम्हेहिँ सहुँ ।
अण्णु वि रेंकारिउ कह वि ण मारिउ तं मरुसेज्जहि माम महु' ॥९॥

[१५]

खेमञ्जलिपुर-परमेसरेण । सोमित्ति वुत्तु रज्जेसरेण ॥१॥
'किं जम्पिएण बहु-अमरिसेण । कहे लद्धय कण्ण पइँ पउरिसेण ॥२॥
तहुँ दीसहि दणु-माहप्प-चप्पु । कहेँ कवणु गोत्तु को माय बप्पु' ॥३॥
महुमहणु पबोल्लिउ 'णिसुणि राय । महु दसरहु ताउ सुमित्ति माय ॥४॥
अण्णु वि पयडउ इक्खवकु वंसु । वड्डारउ जिह तरुवरहों वंसु ॥५॥
वे अम्हइँ लक्खण-राम भाय । वणवासहों रज्जु मुएवि आय ॥६॥
उज्जाणें सुहारऍ असुर-मद्दु । तहुँ सीयऍ अच्छइ राममद्दु' ॥७॥
वयणेण तेण कण्टइउ राउ । संचल्लु णवर साहण-सहाउ ॥८॥

घत्ता

जण-मण-परिओसें तूर-णिघोसें णरवइ कहि मि ण माइयउ ।
जहिँ रामु स-भज्जउ बाहु-सहेज्जउ तं उद्देसु पराइयउ ॥९॥

[१६]

एत्थन्तरें पर-बल-भड-णिसामु । उट्ठिउ जण-णिवहु णिएवि रामु ॥१॥
करेँ धणुहरु केइ ण केइ जाम । सकलत्तउ लक्खणु दिट्ठु ताम ॥२॥
सुरवइ व स-भज्जउ रहें णिविट्ठु । अण्णेक्कु पासें अरिदमणु दिट्ठु ॥३॥
सन्दणहों तरेप्पिणु दुण्णिवारु । रामहों चलणेंहिँ णिवडिउ कुमारु ॥४॥
जियपउम स-विब्भम पउम-णयण । पउमच्छि पफुल्लिय-पउम-वयण ॥५॥
पउमहों पय-पउमेंहिँ पडिय कण्ण । तेण वि सु-पसत्थासीस दिण्ण ॥६॥

लक्ष्मणने यह वचन सुनकर तत्काल आयुध डाल दिये। मुक्त शस्त्र वह अरिदमनके पास गया और उसी प्रकार प्रणाम किया, जिस प्रकार इन्द्र जिनवरको प्रणाम करता है। जो अमर्षसे क्रुद्ध जय, यशके लोभी मैंने तुम्हारे साथ बुरा बरताव किया और भी रे रे करके बोला, और किसी प्रकार मारा-भर नहीं है प्रभु, आप उसपर क्रोध मत करना? ॥१-९॥

[१५] क्षेमंजलीके परमेश्वर राज्येश्वरने लक्ष्मणसे कहा—"बहुत क्षमायुक्त प्रलापसे क्या, जो तुमने कन्या अपने पौरुषसे ली। तुम दानवोंके माहात्म्यको चाँपनेवाले दिखाई देते हो। कहो, कौन गोत्र हो, कौन पिता और माता है?" लक्ष्मण बोला—"हे राजन् सुनिए, दशरथ मेरे पिता हैं और सुमित्रा मेरी माँ है। और भी प्रसिद्ध इक्ष्वाकु वंश है। तरुवरके वंशके समान बड़ा वंश। हम दो भाई राम और लक्ष्मण राज्य छोड़कर वनवासके लिए आये हैं।" तुम्हारे उद्यानमें असुरोंका मर्दन करनेवाले रामभद्र विद्यमान हैं।" इन शब्दोंसे राजाको रोमांच हो आया। केवल सेनाके साथ वहाँ चल दिया। जनमनको परितोष देनेवाले तूर्यके घोषसे राजा कहीं भी नहीं समा सका। अपनी बाँहोंका भरोसा रखनेवाले राम जहाँ पत्नी सहित थे, वह वहाँ पहुँचा ॥१-९॥

[१६] इसी बीच शत्रु सेनाके योद्धाओंका नाश करनेवाले राम जनसमूह देखकर उठे। जबतक वह अपने हाथमें धनुष लें या न लें, तबतक उन्होंने लक्ष्मणको स्त्री सहित देखा। रथमें वह पत्नी सहित, इन्द्रकी तरह बैठा हुआ था। उसके पास एक ओर अरिदमन दिखाई दिया। दुर्निवार कुमार रथसे उतरकर रामके चरणोंमें गिर पड़ा। कमलनयनी, स्वच्छ खिले हुए कमलके समान मुखवाली विलास सहित जितपद्मा रामके चरणकमलोंपर गिर पड़ी। उसने

एत्थन्तरें मार्गे ण किउ खेउ । कणय-रहें चलाविउ रामएउ ॥७॥
पट्टु पडह पहय किय-कलयलेहिँ । उच्छाहेँहिं धवलेँहिं मङ्गलेहिँ ॥८॥

घत्ता

रहेँ एक्कें णिविट्ठइँ णयरें पइट्ठइँ सीय-बलइँ वलवन्ताइँ ।
णारायणु णारि वि थियइँ चयारि वि रज्जु सई भुञ्जन्तइँ ॥९॥

बत्तीसमो संधि

हलहर-चक्कहर परचक्क-हर जिणवर-सासणेँ अणुराइय ।
मुणि-उवसग्गु जहिँ विहरन्त तहिँ वंसत्थलु णयरु पराइय ॥

[१]

ताम विसण्ठुलु पाणकन्तउ । दिट्ठु असेसु वि जणु णासन्तउ ॥१॥
दुम्मणु दीण-वयणु विद्दाणउ । गउ विच्छाय व गलिय-विसाणउ ॥२॥
पण्णय-णिवहु व फणिमणि-तोडिउ । गिरि-णिवहु व वज्जासणि-फोडिउ ॥३॥
पङ्कय-सण्डु व हिम-पवणाहउ । उब्भड-वयणु समुब्भिय-बाहउ ॥४॥
जणवउ जं णासन्तु पदीसिउ । राहवचन्दें पुणु मम्भीसिउ ॥५॥
'थक्कहोँ मं भज्जहोँ मं भज्जहोँ । अभउ अभउ भउ सयलु विवज्जहोँ' ॥६॥
ताम दिट्ठु ओसण्णिय-माणउ । णासन्तउ वंसत्थल-राणउ ॥७॥
तेण वुत्तु 'मं णयरें पईसहोँ । तिण्णि मि पाण लएप्पिणु णासहोँ ॥८॥

घत्ता

एत्तिउ एत्थु पुरें गिरिवर-सिहरें जो उट्ठइ णाउ भयङ्करु ।
तेण महन्तु डरु णिवडन्ति तरु मन्दिरइँ जन्ति सय-सक्करु ॥९॥

भी सुप्रशस्त आशीर्वाद दिया। इसी बीच ससुरने खेद नहीं किया। रामदेवको स्वर्ण रथपर चढ़ाया। पटु-पटह बजा दिये गये। किया गया है कल-कल जिनमें ऐसे उत्साह धवल और मंगल गीतोंके साथ वे एक रथमें बैठे। बलवान् सीताराम नगर-में प्रविष्ट हुए। लक्ष्मण और जितपद्मा भी। चारों ही राज्यका स्वयं उपभोग करते हुए स्थित हो गए ॥१-९॥

●

बत्तीसवीं सन्धि

जिनवर शासनके अनुरागी एवं परचक्रका हरण करनेवाले राम और लक्ष्मण, जहाँ मुनिवरपर उपसर्ग हो रहा था, विहार करते हुए उस वंशस्थल नगर पहुँचे।

[१] इतनेमें अस्त-व्यस्त प्राणोंसे नष्ट होते हुए सभी लोग भागते हुए दिखाई दिये। वे अत्यन्त दुर्मन और दीनमुख थे। जिसके दाँत गिर चुके हैं ऐसे विक्षत हाथीके समान, जिसका फनमणि टूट चुका है, ऐसे नागसमूहके समान; वज्राशनिसे चूर-चूर हुए गिरिसमूहके समान, हिमपवनसे आहत कमल-समूहके समान, जनसमूह म्लानमुख था। जब रामने व्याकुल मुख और हाथ ऊपर किये हुए जनपदको भागते हुए देखा तो उन्होंने फिरसे अभय वचन दिया—"अभय, अभय, समस्त भय छोड़ दो' इतनेमें उन्होंने अखण्डित मानवाले वंशस्थलके राजाको भागते हुए देखा। उसने कहा—"आप लोग नगरमें प्रवेश न करें, तीनों अपने प्राण लेकर भाग जायें। यहाँ इस नगरमें गिरिवरके शिखरपर जो भयंकर नाद उठता है उससे बड़ा डर है, वृक्ष गिर पड़ते हैं, और मकानोंके सौ-सौ टुकड़े हो जाते हैं ॥१-९॥

[२]

एँउ दीसइ गिरिवर-सिहरु जेत्थु । उवसग्गु भयङ्करु होइ तेत्थु ॥१॥
वाओलि धूलि दुव्वाइ एइ । पाहण पडन्ति महि थरहरेइ ॥२॥
धर भमइ समुट्ठइ सीह-णाउ । वरसन्ति मेह णिवडइ णिहाउ ॥३॥
तेँ कज्जेँ णासइ सयलु लोउ । मं तुम्ह वि उहु उवसग्गु होउ' ॥४॥
तं णिसुणेवि सीय मणेँ कम्पिय । भीय-विसन्थुल एव पजम्पिय ॥५॥
'अम्हहुँ देसेँ देसु भमन्तहुँ । कवणु पराहउ किर णासन्तहुँ' ॥६॥
तं णिसुणेवि भणइ दामोयरु । 'बोल्लिउ काइँ माएँ पइँ कायरु ॥७॥
विहि मि जाम करेँ अतुल-पयावइँ । सायर-वज्जावत्तइँ चावइँ ॥८॥
जाम विहि मि जय-लच्छि परिट्ठिय । तोणीरहिँ णाराय अहिट्ठिय ॥९॥
ताम माएँ तुहुँ कहेँ आसंकहि । विहरु विसरु मा मुहु ओवङ्कहि ॥१०॥

घत्ता

धीरेँ वि जणय-सुय कोवण्ड-भुय संचल्ल बे वि बल-केसव ।
सग्गहोँ अवयरिय सइँ-परियरिय इन्द-पडिन्द-सुरेस व ॥११॥

[३]

पइन्तएँ भयङ्करो । असाल-छिण्ण-कक्करो ॥१॥
वको व्व सिङ्ग-दीहरो । णियच्छिओ महीहरो ॥२॥
कहिँ जेँ भीम-कन्दरो । झरन्त-णीर-णिज्झरो ॥३॥
कहिँ जि रत्तचन्दणो । तमाल-ताल-वन्दणो ॥४॥
कहिँ जि विट्ठ-छारया । कणन्त मत्त-मोरया ॥५॥
कहिँ जि सीह-णायवया । धुणन्त-पुच्छ-दुण्णया ॥६॥
कहिँ जि मत्त-णिब्भरा । गुलुगुलन्ति कुञ्जरा ॥७॥
कहिँ जि दाढ-भासुरा । घुरुग्घुरन्ति सूयरा ॥८॥
कहिँ जि पुच्छ-दीहरा । किलिकिलन्ति वाणरा ॥९॥
कहिँ जि थोर-कन्धरा । परिब्भमन्ति सम्बरा ॥१०॥

[२] जहाँ यह गिरिवरका शिखर दिखाई देता है, वहाँ भयंकर उपसर्ग हो रहा है। यहाँसे तूफान, धूल और दुर्वात आता है। पत्थर गिर पड़ते हैं, और धरती काँप उठती है। धरती घूमती है। सिंहनाद होता है। मेघ बरसते हैं। आघात पड़ता है। इसी कारण समस्त लोक भाग रहा है। तुमपर यह उपसर्ग न हो।" यह सुनकर सीता अपने मनमें काँप गयी। भयसे अस्त-व्यस्त होकर, वह इस प्रकार बोली, "एक देशसे दूसरे देश घूमते हुए और भागते हुए हम लोगोंका कौन-सा पराभव ?" यह सुनकर लक्ष्मणने कहा—"हे आदरणीये, आप कायर-जैसी बात क्यों करती हैं ? जबतक हम दोनोंके हाथोंमें अतुल प्रताप समुद्रावर्त और वज्रावर्त धनुष हैं, जबतक दोनों विजय लक्ष्मीसे प्रतिष्ठित हैं और जबतक तरकसोंमें तीर अधिष्ठित हैं, हे माँ, तबतक तुम्हें किससे आशंका है ? विहार करो, विहार करो। अपना मुँह टेढ़ा मत करो।" जनकसुताको धीरज देकर, धनुष जिनके हाथमें हैं ऐसे वे बलराम और केशव चले; जैसे स्वर्गसे अवतरित इन्द्राणीसे सहित इन्द्र, प्रतीन्द्र और सुरेश हों ॥१-११॥

[३] पथके भीतर उन्होंने भयंकर झसालोंसे छिन्न(?) और कठोर महीधर देखा जो बैलके समान शृंगों (सींग और शिखरों) से दीर्घ था, जो कहींपर भीमगुफाओंवाला, और कहींपर झरते हुए जलसे युक्त निर्झरवाला था, कहींपर रक्त चन्दन, तमाल, ताल और पीपलके वृक्ष थे, कहींपर भालू दिखाई दे रहे थे और कहींपर बोलते हुए मत्त मोर। कहींपर अपने पूँछरूपी दण्डोंको धुनते हुए सिंह और गैंडे थे। कहींपर मदसे निर्भर गज आवाज कर रहे थे। कहींपर दाढ़ोंसे भयंकर सुअर घुर-घुर कर रहे थे। कहींपर लम्बी पूँछवाले वानर किलकारियाँ भर रहे थे। कहींपर स्थूल कन्धोंवाले साम्भर घूम रहे थे।

कहिँ जि गुञ्ज-अङ्गया । हयारि-तिक्खसिङ्गया ॥११॥
कहिँ जि आणणुण्णया । कुरङ्ग तुण्ण-कण्णया ॥१२॥

घत्ता

एहिँ तेहएँ सइकेँ तरुवर-बहलेँ आरूढ बे वि हरि-हलहर ।
जाणइ-विज्जुलएँ धवलुज्जलएँ चिहूइय णाइँ णव जलहर ॥१३॥

[४]

पिहुल-णियम्ब-बिम्ब-रमणीयहेँ । राहउ दुम दरिसावइ सीयहेँ ॥१॥
एँहु सो धणेँ णग्गोह-पहाणु । जहिँ रिसहहोँ उप्पण्णउ णाणु ॥२॥
एँहु सो सत्तवण्णु किं ण मुणिउ । अजिउ स-णाण-देहु जहिँ पथुणिउ ॥३॥
एँहु सो इन्दवच्छु सुपसिद्धउ । जहिँ संभव-जिणु णाण-समिद्धउ ॥४॥
एँहु सो सरलु सरलु संभूअउ । अहिणन्दणु स-णाणु जहिँ हूअउ ॥५॥
एँहु पियङ्गु सीएँ सच्छायउ । सुमइ स-णाणपिण्डु जहिँ जायउ ॥६॥
एँहु सो सालु सीएँ णियच्छिउ । पउमप्पहु स-णाणु जहिँ अच्छिउ ॥७॥
एँहु सो सिरिसु महद्दुमु जाणइ । णाणु सुपासेँ धणेँ वि जगु जाणइ ॥८॥
एँहु सो णागरुक्खु चन्दप्पहेँ । णाणुप्पत्ति जेत्थु चन्दप्पहेँ ॥९॥
एँहु सो मालइरुक्खु पदीसिउ । पुप्फयन्तु जहिँ णाण-विहूसिउ ॥१०॥

घत्ता

एँहु सो पक्खरउ फल-फुल्ल-भरु तेन्दुइ-समाणु सुह-णासहुँ ।
जहिँ परिहूयाइँ संभूयाइँ सीयल-सेयंसहुँ ॥११॥

[५]

एँह सा पाडलि सुहल सुपत्ती । वासुपुज्जेँ जहिँ णाणुप्पत्ती ॥१॥
एँहु सो जम्बू एहु असत्थु । विमलाणन्तहुँ णाण-समत्थु ॥२॥
वहु दहिवण्ण-णन्दि सुपसिद्धा । धम्म-सन्ति जहिँ णाण-समिद्धा ॥३॥
वहु साहार-तिलय दीसन्ति । कुन्थु-अरहुँ जहिँ णाणुप्पत्ति ॥४॥

कहींपर विशाल शरीर और पैने सींगवाले महिष थे, और कहीं-पर मुखसे उन्नत और कहींपर भीतकर्ण हरिन थे। ऐसे तरुवरों-से प्रचुर उस शैलपर आरूढ़, तथा धवल उज्ज्वल जानकीरूपी बिजलीसे शोभित राम और लक्ष्मण नवजलधरके समान जान पड़ते थे ॥१–१३॥

[४] जो विशाल नितम्ब बिम्बोंसे रमणीय है ऐसी सीता देवीके लिए राघव वृक्ष दिखाते हैं—"हे धन्ये, यह विशाल पीपलका पेड़ है कि जहाँ ऋषभनाथको ज्ञान उत्पन्न हुआ था। क्या तुम नहीं जानती, यह वह सत्यवन्त वृक्ष है, जहाँ केवल-ज्ञान शरीरवाले अजितनाथकी खूब स्तुति की गयी थी। यह वह प्रसिद्ध इन्द्रवृक्ष है जहाँ सम्भवनाथ ज्ञानसे समृद्ध हुए थे। यह वह सफल सरल वृक्ष है, जहाँ अभिनन्दन ज्ञानसे युक्त हुए थे। हे सीता, सुन्दर छायावाला प्रियंगु वृक्ष है जहाँ सुमतिनाथ ज्ञानशरीरवाले हुए थे। हे सीता, यह वह सालवृक्ष देखो जहाँ केवलज्ञानसे युक्त पद्मप्रभु स्थित थे। हे जानकी, यह वह शिरीष वृक्ष है जहाँ सुपार्श्वने ज्ञानसे विचारकर जगको जाना था। हे चन्द्रमाके समान प्रभावाली, यह वह नाग वृक्ष है कि जहाँ चन्द्रप्रभको ज्ञानकी उत्पत्ति हुई थी। यह वह मालती वृक्ष दिखाई देता है, जहाँ पुष्पदन्त ज्ञानसे विभूषित हुए थे। यह वह फल-फूलोंसे भरा हुआ तेंदुकीके समान कल्प-वृक्ष है कि जहाँ दुःखका नाश करनेवाले शीतलनाथ और श्रेयांस-नाथको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था ॥१–११॥

[५] यह वह अच्छे फलों और पत्तोंवाला पाटली वृक्ष है जहाँ वासुपूज्यको ज्ञानकी उत्पत्ति हुई थी। यह वह जम्बू वृक्ष है, और यह वह अश्वत्थ वृक्ष है जहाँ विमल और अनन्तनाथ ज्ञानसे समृद्ध हुए थे। ये वे सुप्रसिद्ध दधिपर्ण और नन्दी वृक्ष हैं कि जहाँ कुन्थु और अरहनाथको ज्ञानकी उत्पत्ति हुई थी।

एँहु सो तरु कङ्केल्लि-पहाणु। मल्लिजिणहोँ जहिँ केवल-णाणु ॥५॥
एँहु सो चम्पउ किण्ण णियच्छिउ। मुणि सुव्वउ स-णाणु जहिँ अच्छिउ ॥६॥
इय थविर-सह इन्दु वि वन्दइ। जणु कज्जेण तेण अहिणन्दइ ॥७॥
एम चवन्त पत्त बल-लक्खण। जहिँ कुलभूसण-देसविहूसण ॥८॥
दिवस चयारि अणङ्ग-वियारा। पडिमा-जोगें थक्क भडारा ॥९॥

घत्ता

वेन्तर-घोणसेंहिँ आसीविसेंहिँ अहि-विच्छिय-वेल्लि-सहासेंहिँ।
वेढिय वे वि जण सुह-लुद्ध-मण पासण्डिय जिह पसु-पासेंहिँ ॥१०॥

[६]

जं दिट्ठु असेसु वि अहि-णिहाउ। बलएउ भयङ्करु गरुडु जाउ ॥१॥
तोणीर-पक्खु वइदेहि-चञ्चु। पक्खुज्जल-सर-रोमञ्च-कञ्चु ॥२॥
सोमित्ति-वियड-विप्फुरिय-वयणु। णाराय-तिक्ख-णिट्ठुरिय-णयणु ॥३॥
दोण्णि वि कोवण्डइँ कण्ण दोवि। थिउ राहउ भीसणु गरुडु होवि ॥४॥
तं णयण-कडक्खेंवि दुग्गमेहिँ। परिचिन्तिउ कज्जु भुअङ्गमेहिँ ॥५॥
'लहु णासहुँ किं णर-संगमेण। खज्जेसहुँ गरुड-विहङ्गमेण' ॥६॥
दुग्घन्तरेँ विहडिय अहि भयन्ध। गय खयहोँ णाइँ मुणि-कम्म-बन्ध ॥७॥
भय-भीय विसन्थुल भग्गेंण सट्ट। खर-पवण-पहय घण जिह पणट्ठ ॥८॥

घत्ता

वेल्ली-सङ्कुलहोँ वंसत्थलहोँ विसहर-फुक्कार-करालहोँ।
जाय पगास रिसि णाइँ सूर-ससि उम्मिल्ल णाइँ घण-जालहोँ ॥९॥

[७]

अहि-णियरु जं जेँ गउ ओसरेंवि। मुणि वन्दिय जोग-भत्ति करेंवि ॥१॥
जे भव-संसारहिँ उत्तरिय। सिव-सासय-गमणहोँ अइतुरिय ॥२॥

यह वह मुख्य अशोक वृक्ष है जहाँ मल्लिनाथको केवलज्ञानकी उत्पत्ति हुई थी। क्या इस चम्पक वृक्षको तुमने नहीं देखा कि जहाँ मुनि सुव्रत ज्ञान सहित स्थित थे। इन उत्तम वृक्षोंकी वन्दना इन्द्र भी करता है, इसी कारण लोक भी इनका अभिनन्दन करता है।" ऐसा कहते हुए राम और लक्ष्मण वहाँ पहुँच, जहाँपर कुलभूषण और देशभूषण मुनि थे, कामको नष्ट करनेवाले जो चार दिनसे वहाँ प्रतिमायोगमें स्थित थे। व्यन्तरों, आशीविष साँपों, बिच्छुओं और लताओंके द्वारा वे दोनों मुनि उसी प्रकार घिरे हुए थे, जिस प्रकार सुखके लोभी मन पाखण्डी-पशुपाशोंसे घिरे हुए हों ॥१-१०॥

[६] जब रामने समस्त सर्प-समूह देखा तो वह भयंकर गरुड़ बन गये। तूणीर जिनके पंख थे, जानकी चोंच थी, पुंखोंसे उजले तीर ही रोमांच-कंच था, लक्ष्मण ही विकट तमतमाता हुआ मुख था। तीरोंके तीखे डरावने नेत्र थे, और दोनों ही धनुष दो कान थे, इस प्रकार राम गरुड़ बनकर स्थित हो गये। उन्हें अपनी आँखोंसे देखकर उन दुर्गम साँपोंने अपना काम सोचा, कि शीघ्र भाग चलें, इस मनुष्य संगमसे क्या? गरुड़ पक्षीके द्वारा हम लोग क्या खा लिये जायेंगे। इसी बीच मदान्ध साँप विघटित हो गये। वे मुनियोंके कर्मबन्धकी तरह नाशको प्राप्त हुए। भयभीत अस्त-व्यस्त और मनसे सन्त्रस्त वे उसी प्रकार नष्ट हो गये, जिस प्रकार प्रबल पवनसे आहत मेघ नष्ट हो जाते हैं। लताओंसे व्याप्त, साँपोंकी फूत्कारोंसे भयंकर उस वंशस्थलमें मुनि उसी प्रकार प्रकाशित हुए जिस प्रकार आकाशके घनजालमें-से सूर्य-चन्द्रमा प्रकाशित होते हैं ? ॥१-९॥

[७] जब वह साँपसमूह हट गया तो उन्होंने योगभक्तिसे मुनिकी वन्दना की, "जो संसाररूपी गर्भसे डरे हुए हैं,

जिहिँ दोसहिँ जे ण परिग्गहिय । जिहिँ वज्जिय जिहिँ झाणहिँ सहिय ॥३॥
जिहिँ जाइ-जरा-मरणेँहिँ रहिय । दंसण-चारित्त-णाण-सहिय ॥४॥
जे चउगइ-चउकसाय-महण । चउ-मङ्गल-कर चउ-सरण-मण ॥५॥
जे पञ्च-महव्वय-दुद्धर-धर । पञ्चेन्दिय-दोस-विणासयर ॥६॥
छत्तीस-गुणड्ढि-गुणेँहिँ पवर । छज्जीव-णिकायहुँ खन्ति-कर ॥७॥
जिय जेहिँ सभय सत्त वि णरय । जे सत्त सिवङ्कर अणवरय ॥८॥
कम्मट्ठ-मयट्ठ-दुट्ठ-दमण । अट्ठविह-गुणड्ढी-लक्खण ॥९॥

घत्ता

एक्केक्कोत्तरिय इय गुण-भरिय पुणु वन्दिय बल-गोविन्देँहिँ ।
गिरि-मन्दिर-सिहरेँ वर-वेइहरेँ जिण-जुवलु व इन्द-पडिन्देँहिँ ॥१०॥

[८]

ताव तेहिँ मि जणेँहिँ धम्मज्जणु । किउ चन्दण-रसेण सम्मज्जणु ॥१॥
पुप्फच्चणिय कुसुम-समवसेँहिँ । पुणु आढत्तु गेउ मुणि-पासेँहिँ ॥२॥
रामु सुघोस वीण अप्फालइ । जा मुणिवरहु मि चित्तइँ चालइ ॥३॥
जा रामउरिहिँ आसि रवण्णी । तुट्ठेँ वि पूयण-जक्खेँ दिण्णी ॥४॥
लक्खणु गाइ सलक्खणु गेउ । सत्त वि सर ति-गाम-सर-भेउ ॥५॥
एक्कवीस वर-मुच्छण-ठाणइँ । एक्कुणपञ्चास वि सर-ताणइँ ॥६॥
ताल-विताल पणच्चइ जाणइ । णव रस अट्ठ भाव जा जाणइ ॥७॥
दस दिट्ठिउ बावीस लयाइँ । भरहेँ भरह-गविट्ठइँ जाइँ ॥८॥

जिन्हें शिवके शाश्वत् गमनकी जल्दी है, जो दोनों प्रकारके दोषोंके द्वारा ग्रहण नहीं किये जाते, जो दोनों प्रकारके दोषोंसे रहित हैं, दोनों ध्यानोंसे युक्त हैं, जन्म, बुढ़ापा और मृत्यु तीनोंसे रहित हैं, दर्शन, ज्ञान और चरित्रसे सहित हैं; जो चारों गतियाँ और चार कषायोंका नाश करनेवाले हैं, जो चार मंगलोंको करनेवाले तथा जिनका मन चार कल्याणोंकी शरणमें है। जो कठोर पाँच महाव्रतोंको धारण करनेवाले हैं, पाँच इन्द्रियोंके दोषोंको दूर करनेवाले हैं। जो छत्तीस गुण-ऋद्धिके गुणोंसे प्रवर हैं तथा छह प्रकारके जीव-निकायोंके प्रति शान्ति रखनेवाले हैं; जिन्होंने भयसे युक्त सातों नरकोंको जीत लिया है, जो अनवरत सात प्रकारके कल्याणोंको करनेवाले, दुष्ट आठ कर्मों और आठ मदोंका दमन करनेवाले हैं तथा आठ गुण और ऋद्धियोंसे परिपूर्ण हैं। इस प्रकार एकसे एक श्रेष्ठ और गुणोंसे परिपूर्ण उन मुनियोंकी राम और लक्ष्मणने फिरसे वन्दना की। उसी प्रकार, जिस प्रकार मन्दराचलके शिखरपर उत्तम वेदिका गृहमें इन्द्र-प्रतीन्द्रके द्वारा बाल की वन्दना की जाती है ॥१–१०॥

[८] उन तीनों लोगोंने धर्मार्जन किया। उन्होंने भावपूर्वक चन्दन-रससे उनका सम्मार्जन किया। शुद्ध कमलोंसे पुष्पार्चा की। और फिर उन मुनि-भक्तोंने गान प्रारम्भ किया। राम सुघोष नामकी वीणा बजाते हैं कि जो मुनिवरोंके चित्तोंको भी चलायमान कर देती है, जो रामपुरीमें पूतन यक्ष द्वारा सन्तुष्ट होकर उन्हें दी गयी थी। लक्ष्मण लक्षणोंसे युक्त गीत गाते हैं। सातों ही स्वर तीन ग्राम और स्वरभेदसे युक्त। इक्कीस वर-मूर्च्छनाओंके स्थान तथा उनचास स्वर तानें। ताल-त्रितालपर सीता नाचती हैं। वह नव रस और आठ भावों, दस दृष्टियों और बाईस लयोंको जानती हैं कि जो भरत मुनिके द्वारा भरत

घत्ता

भावें जणय-सुय चउसट्ठि सुय दरिसन्ति पणच्चइ जावेंहिं ।
दिणयर-अत्थवणें गिरि-गुहिल-वणें उवसग्गु समुट्ठिउ तावेंहिं ॥९॥

[९]

तो कोवग्गि-करम्बिय-गत्तइँ । दिट्ठइँ णहयलें असुर-सहासइँ ॥१॥
अण्णइँ विप्फुरियाहर-वयणइँ । अण्णइँ रत्तुम्मिल्लिय-णयणइँ ॥२॥
अण्णइँ पिङ्गइँ पिङ्गकेसइँ । अण्णइँ णिम्मंसइँ दुप्पेक्खइँ ॥३॥
अण्णइँ णाहें णच्चन्ति विहत्थइँ । अण्णइँ तहिँ चामुण्ड-विहत्थइँ ॥४॥
अण्णइँ कङ्कालइँ वेयालइँ । कत्तिय-मडय-करइँ विकरालइँ ॥५॥
अण्णइँ मसि-वण्णइँ अपसत्थइँ । णर-सिर-माल-कवाल-विहत्थइँ ॥६॥
अण्णइँ सोणिय-मइर पियन्तइँ । णच्चन्तइँ घुम्मन्त-घुलन्तइँ ॥७॥
अण्णइँ किलकिलन्ति चउ-पासेंहिँ । अण्णइँ कहकहन्ति उवहासेंहिँ ॥८॥

घत्ता

अण्णइँ भीसणइँ दुद्दरिसणइँ 'मरु मारि मारि' जम्पन्तइँ ।
देसविहूसणहँ कुलभूसणहँ आयइँ उवसग्गु करन्तइँ ॥९॥

[१०]

पुणु अण्णइँ अण्णण्ण-पयारेंहिँ । मुक्कइँ विसहर-फण-फुक्कारेंहिँ ॥१॥
अण्णइँ जम्बुव-सिव-फेक्कारेंहिँ । वसह-मडक्क-मुक्क-ढेक्कारेंहिँ ॥२॥
अण्णइँ करिवर-कर-सिक्कारेंहिँ । सर-सन्धिय-धणु-गुण-टङ्कारेंहिँ ॥३॥
अण्णइँ गद्दह-मण्डल-सद्देंहिँ । अण्णइँ बहुविह-भेसिय-णद्देंहिँ ॥४॥
अण्णइँ गिरिवर-तरुवर-घाएँहिँ । पाणिय-पाहण-पवणुप्पाएँहिँ ॥५॥
अण्णइँ अमरिस-रोस-फुरन्तइँ । णयणेंहिँ अग्गि-फुलिङ्ग मुअन्तइँ ॥६॥
अण्णइँ दीह-वयणइँ सय-वयणइँ । अण्णइँ सहस-मुहइँ बहु-णयणइँ ॥७॥
तहिँ तेहएँ वि कालें मइ-णिम्मलहुँ । तो वि ण चलिउ झाणु मुणि-धवलहुँ ॥८॥

नाट्य शास्त्रमें गवेषित हैं। जबतक सीता अपनी चौसठ भुजाओंका प्रदर्शन करती हुई भावपूर्वक नाचती है, तबतक दिन अस्त होनेपर गिरिके गहन वनमें उपसर्ग उठ खड़ा हुआ ॥१-८॥

[९] क्रोधाग्निसे युक्त हासवाले हजारों असुर आकाशतलमें दिखाई दिये। दूसरे फड़कते हुए अधरों और मुखवाले थे। दूसरे लाल-लाल खुली हुई आँखोंवाले थे। दूसरे-दूसरे पीले शरीर और आँखोंवाले थे। दूसरे-दूसरे मांसरहित अत्यन्त दुर्दर्शनीय थे। दूसरे-दूसरे धड़हीन होकर आकाशमें नाच रहे थे। दूसरे वहाँ हाथमें चामुण्ड लिये हुए थे। दूसरे कंकाल और वेताल थे, विकराल जो कटारी और शव हाथमें लिये हुए थे। दूसरे काले रंगके अत्यन्त अप्रशस्त थे, वे मनुष्योंकी मुण्डमाला और कपाल अपने हाथमें लिये हुए थे। दूसरे चारों ओर किल-किलाकर हँस रहे थे, दूसरे उपहासोंसे ठहाका लगा रहे थे। दूसरे अत्यन्त भयंकर 'मर-मारो-मारो' कह रहे थे। इस प्रकार वे देशभूषण और कुलभूषण मुनिपर उपसर्ग कर रहे थे ॥१-९॥

[१०] फिर, दूसरे-दूसरे, दूसरे प्रकारों तथा विषधर फनकी फूत्कारोंके साथ पहुँचे। दूसरे जम्बू और शृगालकी आवाजों, बैल-समूहके द्वारा छोड़ी गयी ढेक्का-ध्वनियों, दूसरे गजवरोंकी चीत्कार ध्वनियों, सर सन्धान और धनु-गुण-टंकारों, दूसरे गर्दभों और कुत्तोंके शब्दों, दूसरे तरह-तरहके डरानेवाले शब्दों, दूसरे गिरिवरों और तरुवरोंके आघातों, पानी-पत्थर और पवनके उत्पातोंके साथ पहुँचे। दूसरे अमर्ष और क्रोधसे स्फुरित होते हुए, दूसरे आँखोंसे आगकी चिनगारियाँ छोड़ते हुए, दूसरे दसमुख और सौ मुखवाले, दूसरे हजार मुखों और बहुत-से नेत्रोंवाले वहाँ आये। उस वैसे समय भी, बुद्धिसे निर्मल उन श्रेष्ठ मुनियोंका ध्यान विचलित नहीं हुआ।

घत्ता

वइरु सरन्ताहँ पहरन्ताहँ सब्बल-हुलि-हल-मुसलग्गेंहिँ ।
कालें अप्पणउ भीसावणउ दरिसाविउ णं बहु-मग्गेंहिँ ॥९॥

[११]

उवसग्गु णिएँवि हरिसिय-मणेंहिँ । णीसक्केंहिँ बल-णारायणेंहिँ ॥१॥
भग्गीसेंवि सीय महाबलेंहिँ । मुणि-चलण-धराविय करयलेंहिँ ॥२॥
धणुहरइँ विहि मि अप्फालियइँ । णं सुर-भवणइँ संचालियइँ ॥३॥
सुणणइँ भय-भीय-विसण्ठुलइँ । णं रसियइँ णहयल-महियलइँ ॥४॥
तं सद्दु सुणेंवि आसङ्कियइँ । रिउ-चित्तइँ माण-कलङ्कियइँ ॥५॥
धणुहर-टङ्कारेंहिँ बहिरियइँ । णट्ठइँ खल-खुद्दइँ वइरियइँ ॥६॥
णं अट्ठ वि कम्मइँ णिज्जियइँ । णं पञ्चेन्दियइँ पराजियइँ ॥७॥
णं णासेंवि गयइँ परीसहइँ । तिह असुर-सहासइँ दूसहइँ ॥८॥

घत्ता

थुरु थुरु णट्ठाइँ भय-तट्ठाइँ मेल्लेप्पिणु मच्छरु माणु ।
ताव भडाराहुँ वय-धाराहुँ उप्पण्णउ केवल-णाणु ॥९॥

[१२]

ताव मुणिन्दहुँ णाणुप्पत्तिएँ । आय सुरासुर-वन्दणहत्तिएँ ॥१॥
जेहिँ कित्ति तइलोक्कें पगासिय । जोइस वेन्तर भवण-णिवासिय ॥२॥
पहिलउ भावण सङ्ख-णिणाएँ । वेन्तर तूरयफालिय-सद्दें ॥३॥
जोइस-देव वि सीह-णिणाएँ । कप्पामर जयघण्ट-णिणाएँ ॥४॥
संचलिएँ चउ-देवणिकाएँ । छाइउ णहु णं घण-संघाएँ ॥५॥
वहइ विमाणु विमाणें चप्पिउ । वाहणु वाहण-णिवह-झडप्पिउ ॥६॥
तुरउ तुरङ्गमेण ओमालिउ । सन्दणु सन्दणेण संदालिउ ॥७॥
गयवरु गयवरेण पडिखलियउ । लग्गें वि मउडें मउडु उच्छलियउ ॥८॥

वे वैरका स्मरण करते हुए, सब्बल-हुलि-हल और मूसलके अग्र-भागसे इस प्रकार प्रहार कर रहे थे, मानो काल नाना भंगि-माओंसे अपना भयंकर भीषण रूप दिखा रहा था ॥१–९॥

[११] उपसर्ग देखकर हर्षित मन और शंका रहित राम और लक्ष्मणने सीता देवीको [illegible] किया, और मुनि-चरणोंको पकड़े हुए अपने हाथोंसे दोनों धनुषोंको आस्फालित किया। उससे मानो देवविमान चलायमान, खिन्न, भयभीत और अस्तव्यस्त हो गये—मानो आकाशतल और महीतल गूँज उठे। उस शब्दको सुनकर, मानसे कलंकित शत्रुओंके चित्त आशंकित हो उठे। धनुषकी टंकारसे बहरे, दुष्ट और क्षुद्र शत्रु भाग गये, मानो जैसे आठों कर्म जीत लिये गये हों, मानो जैसे पाँचों इन्द्रियाँ पराजित हो गयी हों, मानो परीषह भाग खड़े हुए हों उसी प्रकार वे असह्य हजारों असुर भाग खड़े हुए। वे मत्सर और मान छोड़कर तथा भयसे त्रस्त होकर भाग खड़े हुए। इतनेमें आदरणीय उन व्रतधारण करनेवालोंको केवलज्ञान उत्पन्न हो गया ॥१–९॥

[१२] उन मुनीन्द्रोंको ज्ञान उत्पन्न होनेपर, सुर-असुर वन्दना भक्तिके लिए आये। जिनके द्वारा उनकी कीर्ति त्रिलोकमें प्रकाशित हुई। ज्योतिष, व्यन्तर और भवनवासी (देव आये)। पहले भवनवासी देव शंखनिनादके साथ, व्यन्तर देव तूर्यों-के आस्फालन शब्दके साथ, ज्योतिष देव सिंहनिनादके साथ और कल्पवासी देव जयघण्ट शब्दके साथ चले। चारों देवनिकायोंके चलनेपर आकाश इस प्रकार आच्छादित हो गया मानो मेघसमूहसे आच्छादित हो गया हो। विमान विमानसे टकराकर चलता है। वाहन वाहन-समूहसे टकरा जाता है, अश्व अश्वसे झुक गया, रथ रथसे अवरुद्ध हो उठा, गजवर गजवरसे स्खलित हो गया, मुकुट मुकुटसे लगकर उछल

घत्ता

भावें पेक्खियउ भय-मेल्लियउ सुर-साहणु लीलएँ आवइ ।
लोयहुँ मूढाहुँ तमें छूढाहुँ णं धम्म-रिद्धि दरिसावइ ॥९॥

[१३]

ताव पुरन्दरेण अइरावउ । साहिउ जण-मण-णयण-सुहावउ ॥१॥
सोह दिन्तु चउसट्ठी-णयणेंहिँ । गुलगुलन्तु बत्तीसहिँ वयणेंहिँ ॥२॥
वयणें वयणें अट्ठट्ठ विसाणइँ । णाइँ सुवण्ण-णिबद्ध-णिहाणइँ ॥३॥
एक्कएँ विसाणें जण-मणहरु । एक्केक्कउ जें परिट्ठिउ सरवरु ॥४॥
सरें सरें सर-परिमाणुप्पण्णी । कमलिणि एक्क-एक्क णिप्पण्णी ॥५॥
एक्केक्कहेँ पउमिणिहेँ विसालइँ । पङ्कयाइँ बत्तीस स-णालइँ ॥६॥
कमलें कमलें बत्तीस जि पत्तइँ । पत्तें पत्तें णट्टाइँ मि तेत्तइँ ॥७॥
वड्ढिउ जम्बूदीव-पमाणें । पुणु जि परिट्ठिउ तेण जि माणें ॥८॥
तहिँ दुग्घोट्टें चडेंवि सुर-सुन्दरु । वन्दणहत्तिएँ आउ पुरन्दरु ॥९॥
पुरउ सुरिन्दहोँ णयणाणन्देंहिँ । गुरु पोमाइउ वन्दिण-वन्देंहिँ ॥१०॥

घत्ता

देवहोँ दाणवहोँ खल-माणवहोँ रिसि चलणेंहिँ केण ण लग्गहोँ ।
जेहिँ तवन्तएँहिँ अचलन्तएँहिँ इन्दु वि अवयारिउ सग्गहोँ ॥११॥

[१४]

जिणवर-चलण-कमल-दल-सेवहिँ । केवल-णाण-पुज्ज किय देवहिँ ॥१॥
भणइ पुरन्दरु 'अहोँ अहोँ लोयहोँ । जइ सक्किय जर-मरण-विओयहोँ ॥२॥
जइ णिव्विण्णा चउ-गइ-गमणहोँ । तो किं ण ढुक्कहो जिणवर-भवणहोँ ॥३॥
पुत्तु कलत्तु जाव मणें चिन्तहोँ । जिणवर-बिम्बु ताव किं ण चिन्तहोँ ॥४॥
चिन्तहोँ जाव मासु मयरासणु । किं ण चिन्तवहोँ ताव जिणसासणु ॥५॥
चिन्तहोँ जाव रिद्धि सिय सम्पय । किं ण चिन्तवहोँ ताव जिणवर-पय ॥६॥

पड़ा। भावोंसे प्रेरित, भयसे रहित सुरसेना लीलापूर्वक आती है, मानो वह मूर्ख लोगोंका अन्धकार दूर करनेके लिए धर्म-ऋद्धिका प्रदर्शन कर रही हो ॥१-९॥

[१३] इतनेमें इन्द्रने जनोंके मनों और नेत्रोंको अच्छा लगनेवाला ऐरावत सजाया। वह गज अपने चौंसठ नेत्रोंसे अत्यन्त शोभित हो रहा था, अपने बत्तीस दाँतोंसे गरज रहा था, उसके प्रत्येक मुखमें आठ-आठ दाँत थे—जैसे स्वर्णरचित निधान हों। एक-एक दाँतपर जनोंके लिए सुन्दर एक-एक सरोवर प्रतिष्ठित था। प्रत्येक सरोवरमें सरके प्रमाणकी एक कमलिनी उत्पन्न हुई थी। एक-एक कमलिनीपर विशाल और नाल सहित बत्तीस कमल थे। प्रत्येक कमलमें बत्तीस पत्ते थे। प्रत्येक पत्तेपर उतनी ही (अर्थात् बत्तीस) नर्तकियाँ थीं। वह जम्बूद्वीपके प्रमाणका था। फिर वह उस स्थानसे प्रस्थित हुआ। उसपर चढ़कर सुरसुन्दर इन्द्र उस गजसे वन्दना भक्तिके लिए आया। इन्द्रके सामने नेत्रोंके लिए आनन्ददायक चारण-समूहने गुरुकी प्रशंसा की। हे देवो, दानवो और दुष्ट मनुष्यो, तुम मुनिवरके चरणोंकी सेवा क्यों नहीं करते, अचल तप करते हुए जिनके लिए इन्द्र भी उतरकर आया ॥१-११॥

[१४] तब जिनवरके चरणकमलोंकी सेवा करनेवाले देवोंने उनके केवलज्ञानकी पूजा की। इन्द्र कहता है, "हे हे लोगो, यदि तुम जरा, मरण और वियोगसे आशंकित हो यदि चार गतियोंसे उदासीन हो तो तुम जिनवरके मन्दिरमें क्यों नहीं पहुँचते। जिस प्रकार तुम, पुत्र कलत्र और स्त्रीकी चिन्ता करते हो, उस प्रकार तुम जिनवरकी प्रतिमाका चिन्तन क्यों नहीं करते। जिस प्रकार मांस और कामकी चिन्ता करते हो उस प्रकार जिनवरके शासनकी चिन्ता क्यों नहीं करते। जिस प्रकार ऋद्धि, लक्ष्मी और सम्पत्तिकी चिन्ता करते हो उस प्रकार

चिन्तहोँ ताव रूउ धणु जोव्वणु । अण्णु सुवण्णु अण्णु घरु परियणु ॥७॥
चिन्तहोँ ताव वलिउ भुव-पञ्जरु । किं ण चिन्तवहोँ ताव परमक्खरु ॥८॥

घत्ता

पेक्खहु धम्म-फलु चउरङ्ग-बलु पयहिण ति वार देवाविउ ।
सइँ भुवणेसरहोँ परमेसरहोँ अत्थक्कएँ सेव कराविउ' ॥९॥

●

तेत्तीसमो संधि

उप्पसएँ णामेँ पुच्छइ रहु-णन्दणु ।
'कुलभूसण-देव किं उवसग्गु कउ' ॥

[१]

तं णिसुणेँवि पभणइ परम-गुरु । 'सुणु जक्खथाणु णामेण पुरु ॥१॥
तहिँ कासव-सुरव महाभविय । एयारह-गुणथाणब्भविय ॥२॥
एक्कोयर किङ्कर पुरवइहेँ । णं तुम्बुरु-णारय सुरवइहेँ ॥३॥
हम्मन्तु विहङ्गमु लुद्धएँहिँ । परिरक्खिउ तेहिँ पबुद्धएँहिँ ॥४॥
खगवइ पुणु बहुकालेण मुउ । विञ्झाचलेँ भिल्लाहिवइ हुउ ॥५॥
तो कासव-सुरव बे वि मरेँवि । थिय अमियसरहो घरेँ ओअरेँवि ॥६॥
उवओगादेविहेँ दोहलेँहिँ । उप्पण्णा वड्ढेँहिँ सोहलेँहिँ ॥७॥
वद्धावउ आयउ बन्धुजणु । किउ उइय-मुइय णामग्गहणु ॥८॥

घत्ता

णं अमर-कुमार छुडु सग्गहोँ पडिय ।
णाणङ्कुस-हत्थ जोव्वण-गएँ चडिय ॥९॥

जिनवरके चरणकमलोंकी चिन्ता क्यों नहीं करते। जिस प्रकार रूप, धन और यौवनकी चिन्ता करते हो, धान्य, सुवर्ण, अन्न, घर और परिजनोंकी चिन्ता करते हो, जिस प्रकार तुम्हें अपने बलिष्ठ बाहुपंजरकी चिन्ता है, उसी प्रकार परमाक्षरोंकी चिन्ता क्यों नहीं करते ?" स्वयम्भू कवि कहता है कि धर्मका फल देखो चतुरंग सेना तीन बार प्रदक्षिणा देती है, और भुवनेश्वर-परमेश्वरकी अथक सेवा करती है ॥१-९॥

●

तैंतीसवीं सन्धि

ज्ञान उत्पन्न होनेपर रघुपुत्र पूछते हैं—'हे कुलभूषण देव, किसने उपसर्ग किया ?

[१] यह सुनकर परम गुरु कहते हैं—सुनो यक्षःस्थान नामका एक नगर था। उसमें कश्यप और सुरब नामक महाभव्य, ग्यारह प्रतिमाओंके धारी थे। वे नगरके राजाके एकसे-एक बढ़कर अनुचर थे। मानो इन्द्रके तुम्बर और नारद हों। शिकारियोंके द्वारा मारे जाते हुए एक पक्षीका उन प्रबुद्धोंने रक्षा की। खगपतिका पुत्र बहुत समय बाद मरकर विन्ध्याचलमें भिल्लराजा हुआ। वे कश्यप और सुरब भी मरकर अमृतस्वरके घरमें अवतरित होकर स्थित हो गये। वे 'उपयोगा देवीसे बड़े दोहलों और सोहरोंके साथ उत्पन्न हुए। बन्धुजन बधाई देने आये। उनके नाम उदित-मुदित रखे गये। ज्ञानरूपी अंकुश जिनके हाथमें है, ऐसे वे यौवनरूपी गजपर आरूढ़ हो गये, मानो शीघ्र ही स्वर्गसे अमरकुमार आ पड़े हों ॥१-९॥

[२]

सो पउमिणिपुर-परमेसरहोँ । दरिसाविय विजय-महीहरहोँ ॥१॥
तेण वि णिय-सुअहोँ जयन्धरहोँ । किय किङ्कर वड्ढिय-रणभरहोँ ॥२॥
अच्छन्ति जाम भुञ्जन्ति सिय । तो ताम जणेरहोँ गमण-किय ॥३॥
पट्ठविउ णरिन्दें अमियसरु । अइभूमि-छेह-विच्छोलि-भरु ॥४॥
वसुभूइ सहेज्जउ तासु गउ । तें णवर पाण-विच्छोउ कउ ॥५॥
पच्छइ पच्छण्णिउ भणेँ वि । ते उहय-सुहय तिण-समु गणेँ वि ॥६॥
सो उवउवापुत्तिएँ सहुँ जियइ । अमिओवमु अहर-पाणु पियइ ॥७॥
परियाणेँ वि जेट्ठें दुच्चरिउ । वसुभूइहेँ जीविउ अवहरिउ ॥८॥

घत्ता

उप्पण्णउ मिच्छेँ होप्पिणु पल्लिवइ ।
पुव्वक्किउ कम्मु सव्वहोँ परिणवइ ॥९॥

[३]

जय सव्वय-पवरुज्जाणु जहिँ । रिसि-सङ्घु पराइउ ताव तहिँ ॥१॥
किउ रुक्खेँ रुक्खेँ आवास-किय । णं रुक्खेँ रुक्खेँ अवइण्ण सिय ॥२॥
संजायइँ अङ्गइँ कोमलइँ । अहियइँ पण्णइँ फुल्लइँ फलइँ ॥३॥
रिसि रुक्ख व अविचल होवि थिय । किसलऍ परिवेढावेढि किय ॥४॥
रिसि रुक्ख व तवण-ताव तविय । रिसि रुक्ख व मूल-गुणग्घविय ॥५॥
रिसि रुक्ख व आलवाल-रहिय । रिसि रुक्ख व मोक्ख-फलब्भहिय ॥६॥
गउ णन्दणवणिउ तुरन्तु तहिँ । सो विजय-महीहर-राउ जहिँ ॥७॥
"परमेसर केसरि-विक्कमेँहिँ । उज्जाणु लइउ मइ-पुङ्गवेँहिँ ॥८॥

घत्ता

वारन्तहोँ मज्झु उम्मग्गिम करेँ वि ।
रिसि-सीह-किसोर (व) थिय वणेँ पइसरेँ वि" ॥९॥

[२] वे पद्मनीपुरके परमेश्वर विजयपर्वतको दिखाये गये। उसने भी उन्हें जिसका युद्धभार बढ़ रहा है, ऐसे अपने पुत्र जयन्धरका अनुचर बना दिया। इस प्रकार वे जय लक्ष्मीका उपभोग करते हुए रह रहे थे, तो उनका पिता कहीं बाहर गया। राजाके द्वारा अतिभूमि-लेख पंक्तिको धारण करनेवाले अमृतस्वरको भेजा गया। उसके साथ वसुभूति ब्राह्मण गया। लेकिन उसने उसके प्राणोंका अन्त कर दिया। वह लौट आया। 'वह मर गया' यह कहकर उन उदित-मुदितको तृणके समान समझउपयोगा देवीके साथ रहने लगा। उसका अमृतोपम अधरपान करने लगा। बड़े भाई (उदित)ने यह दुश्चरित जानकर वसुभूतिके जीवनका अपहरण कर लिया। वह विन्ध्याचलमें भिल्लपति होकर जन्मा। सबका पूर्वकृत कर्म परिणमित होता है ॥१-९॥

[३] जहाँ जयपर्वत नामका उद्यान था, इतनेमें वहाँ ऋषिसंघ पहुँचा। उसने एक-एक वृक्षके नीचे आवास किया, मानो वृक्ष-वृक्षपर श्री अवतीर्ण हुई हो। उनके (वृक्षोंके) अंग कोमल हो गये। पत्ते, फूल और फल अधिक हो गये। मुनि भी वृक्षकी तरह अविचल होकर स्थित हो गये.......किसलयोंने उन्हें ढक लिया।........मुनि भी वृक्षके समान तपनके तापसे सन्तप्त थे। मुनि वृक्षकी तरह मूल गुणों (मुनियोंके मूलगुणों; जड़ों और तनोंसे) सहित थे। मुनि वृक्षकी तरह आलवाल (परिग्रह । क्यारी)से रहित थे। मुनि वृक्षकी तरह फल (मोक्षरूपी फल) से सहित थे। नन्दन वनका वनपाल शीघ्र वहाँ गया जहाँ विजय पर्वत राजा था, (और बोला) "हे परमेश्वर, सिंहके समान पराक्रमवाले यतिश्रेष्ठोंने उद्यान ले लिया है। मेरे मना करनेपर भी, मार्गका अतिक्रमण कर वे मुनि सिंहके किशोरकी भाँति वनमें प्रवेश कर स्थित हैं" ॥१-९॥

[४]

तं णिसुणेंवि णरवइ गयउ तहिँ । आवासिउ महरिसि-सत्थु जहिँ ॥१॥
बोल्लाविय अहों "अहों मुणिवरहों । अबुहहों अयाण-परमक्खरहों ॥२॥
परमप्पउ अप्पउ होवि थिउ । कज्जेण केण रिसि-वेसु किउ ॥३॥
अइदुल्लहु लहेँवि मणुअत्तणउ । कें कज्जें विणडहों अप्पणउ ॥४॥
कहों करेउ परम-मोक्ख-गमणु । वरि माणिउ मणहरु तरुणियणु ॥५॥
सच्छाइँ आयइँ अन्नाइँ । सोक्खइँ-आहरणइँ जोग्गाइँ ॥६॥
विविहाइँ आयइँ कडियलइँ । हय-गय-रह-वाहण-पवलइँ ॥७॥
लायण्णइँ रूवइँ जोव्वणइँ । णिप्फलइँ गयइँ तुम्हहँ तणइँ ॥८॥

घत्ता

सुपसिद्धु लोएँ एक्केवि [illegible] कउ ।
पुण्णाण विसेसु सयलु णिरत्थु गउ" ॥९॥

[५]

तो मोक्ख-रुक्ख-फल-बद्धणेण । महिपालु वुत्तु मइवद्धणेण ॥१॥
"पइँ अप्पउ काइँ विडम्बियउ । अच्छहि सुह-दुक्ख-करम्बियउ ॥२॥
कहों वरु कहो पुत्त-कलत्ताइँ । धय चिन्धइँ चामर-छत्ताइँ ॥३॥
स-विमाणइँ जाणइँ जोग्गाइँ । रह तुरय-महग्गय-दुग्गाइँ ॥४॥
धण-धण्णइँ थोविय-जोव्वणइँ । जल-कीलउ पाणइँ उववणइँ ॥५॥
महसणउ वसुन्धरि भल्लाइँ । णाउ कासु वि होन्ति सहेज्जाइँ ॥६॥
आयहिँ बहुयहिँ वेयारियइँ । वम्भाणइँ लक्खइँ मारियइँ ॥७॥
सुरवइहिँ सहासइँ पाडियइँ । चक्कवइ-सयइँ णिद्धाडियइँ ॥८॥

घत्ता

एय वि अवरे वि कालें कवलु किय ।
सिय कहों समाणु एक्कु वि पउ ण गय" ॥९॥

[४] यह सुनकर राजा वहाँ गया कि जहाँ वह महामुनि-संघ ठहरा हुआ था। उसने कहा—"अरे, मुनिवरो! अपण्डित, अज्ञान परमाक्षरो! तुम स्वयं परमात्मा बनकर स्थित हो। तुमने किस लिए यह मुनि-वेष बनाया? अत्यन्त दुर्लभ मनुष्यशरीर पाकर किस कारण अपना विनाश करनेमें लगे हो। परम मोक्षगमन किसका? अच्छा है यदि सुन्दर तरुणीजनको मानो। तुम्हारे ये सुन्दर कान्तिवाले अंग, सोलह आभूषणोंके पहननेके योग्य हैं। विस्तीर्ण ये कटितल। अश्व-गज-रथ आदि वाहनोंके लिए समर्थ हैं। इस प्रकार तुम्हारा लावण्य रूप और यौवन निष्फल गये। लोकमें प्रसिद्ध एक भी बात तुमने नहीं की। माता-पिताका सब कष्ट व्यर्थ गया" ॥१–९॥

[५] तब मोक्षरूपी वृक्षके फलको बढ़ानेवाले मतिवर्द्धन मुनिने कहा—"तुम अपनेको विडम्बित क्यों कर रहे हो। सुख-दुःखसे सने बैठे रहो। किसका घर, किसके पुत्र-कलत्र? ध्वज-चिह्न-चमर और छत्र। विमान सहित योग्य यान, रथ, अश्व, महागज और दुर्ग, धन-धान्य, जीवन, यौवन, जल-क्रीड़ा, पान और उपवन, आसन, धरती और वस्त्र, ये किसीके सहायक नहीं होते। इनके द्वारा बहुत-से विदीर्ण हुए हैं, लाखों पण्डित मारे गये हैं। हजारों सुरपति गिराये गये हैं। सैकड़ों चक्रवर्ती उखाड़ दिये गये हैं। ये और दूसरे भी, कालके द्वारा कवलित हुए हैं। लक्ष्मी किसीके भी साथ एक कदम नहीं गयी" ॥१–९॥

[६]

परमेसरु पुणु वि पुणु वि कहइ । "जिउ तिण्णि अवत्थउ उव्वहइ ॥१॥
उप्पत्ति-जरा-मरणावसरु । पढिल्लउ जें णिवन्धउ देह-घरु ॥२॥
पुग्गल-परिमाण-सुत्तु धरेंवि । कर-चलण चयारि खम्भ करेंवि ॥३॥
बहु-अत्थि जि अन्तहिँ वक्कियउ । मासिट्टइ चम्म-च्छुह-पक्कियउ ॥४॥
सिर-कलसालङ्किउ संचरइ । माणुसु वर-भवणहोँ अणुहरइ ॥५॥
तरुणत्तणु जाम ताम थवइ । पुणु पच्छएँ जुण्णा-भाउ लहइ ॥६॥
सिरु कम्पइ जम्पइ ण वि वयणु । ण सुणन्ति कण्ण ण णियइ णयणु ॥७॥
ण चलन्ति चलण ण करन्ति कर । जर-जज्जरिहोइ सरीरु पर ॥८॥

घत्ता

पुणु पच्छिम-कालें णिवडइ देह-घरु ।
जिउ जेम विहङ्गु उड्डइ मुएँवि तरु ॥९॥

[७]

तं णिसुणेंवि णरवइ उवसमिउ । णिय-णन्दणु णिय-पएँ सण्णिवेसिउ ॥१॥
अप्पुणु पुणु भाव-गाहें गहिउ । णिक्खन्तु णराहिव-सय-सहिउ ॥२॥
तहिँ उइय-मुइय णिग्गन्थ थिय । कर-कमलेंहिँ केसुप्पाड किय ॥३॥
पुणु सवण-सङ्घु तहोँ पुरवरहोँ । गउ वन्दणहत्तिएँ जिणवरहोँ ॥४॥
सम्मेयहोँ जन्त अन्त वलिय । पहु छड्डेंवि उप्पहेंण चलिय ॥५॥
ते उइय-मुइय दुइ णिम्मविय । वसुभूइ-भिल्ल-पल्लिहेँ पडिय ॥६॥
धाइउ धाणुक्कु मल-बहलु । गुञ्जाहल-णयणु पीय-महुरु ॥७॥
दुप्पेच्छ-वच्छु थिर-थोर-करु । अप्फालिय धणुहरु गहिर-सरु ॥८॥

घत्ता

वइरइँ ण कुहन्ति होन्ति ण जज्जरइँ ।
हउ हणइ णिरुत्तु सत्त-भवन्तरइँ ॥९॥

[६] परमेश्वर बार-बार कहते हैं 'यह जीव तीन अवस्थाएँ धारण करता है। पहले उत्पत्ति जरा और मरणावसरवाला देहरूपी घर निबद्ध होता है। पुद्‌गल परिमाणरूपी सूत्र लेकर, हाथ पैररूपी चार खम्भे बनाकर, फिर बहुत-सी हड्डियोंको आँतोंसे ढककर, मांस और हड्डियोंको चर्मरूपी चूनेसे सान दिया गया है। सिर रूपी कलशसे अलंकृत वह चलता है। इस प्रकार मनुष्य वर-भवनका अनुकरण करता है। किसी प्रकार तारुण्यको बिताता है। फिर बादमें जीर्णभावको प्राप्त होता है; सिर काँपता है, शब्द तक नहीं बोल पाता, कान सुनते नहीं, आँखें देखती नहीं। पैर चलते नहीं और हाथ काम नहीं करते। केवल शरीर बुढ़ापेसे जर्जर हो जाता है। फिर अन्तिम समय शरीररूपी घर ढह पड़ता है, और जीव उसी प्रकार उड़ जाता है, जिस प्रकार वृक्ष छोड़कर पक्षी उड़ जाता है ॥१-९॥

[७] यह सुनकर राजा विजय शान्त हो गया। उसने अपने पुत्रको अपने पदपर नियुक्त कर दिया। वह स्वयं भावरूपी ग्राहसे गृहीत होकर सौ राजाओंके साथ दीक्षित हो गया। वहाँ उदित-मुदित भी निर्ग्रन्थ हो गये। उन्होंने अपने कररूपी कमलोंसे बाल उखाड़ लिये। फिर यह श्रमणसंघ उस नगरसे जिनवरोंकी वन्दना-भक्तिके लिए गया। सम्मेद शिखर तक जाते-जाते वे उदित-मुदित मुड़ गये। तथा राजाको छोड़कर उन्मार्ग-से चल पड़े। वे दोनों भूले-भटके वसुभूति भीलके गाँवमें पहुँचे। अद्ध वैर वह धनुर्धारी, गुंजाफलके समान आँखोंवाले, शराब पिये हुए, दुर्दर्शनीय स्थिर और स्थूल वक्षवाले उसने अपना गम्भीर स्वरवाला धनुष आस्फालित किया। शत्रुताएँ (वैर) नष्ट नहीं होतीं और न जीर्ण होती हैं। सात जन्मान्तरों-में भी आहत व्यक्ति मारता है, (मारनेवालेको) ॥१-९॥

[८]

हक्कारिय तिण्णि वि दुद्धरेण । णिय-वइयर-वइर-विरुद्धएण ॥१॥
"अहों संचारिम-णर-वणयरहों । कहिँ गम्मइ एवहिँ महु मरहों" ॥२॥
तं सुणेँवि महावय-धारएण । धीरिउ लहुयउ वड्डारएण ॥३॥
"मं भीहि थाहि अप्पाहों मनहों । उवसग्ग-सहणु भूसणु तवहों" ॥४॥
तहिँ तेहएँ विहुरेँ समावडिएँ । अधुरन्धरेँ गरुअ-भारेँ पडिएँ ॥५॥
थिउ खन्धु समद्देँ वि एक्कु जणु । भिल्लाहिउ अक्खुद्दरण-मणु ॥६॥
जो पुव्व-भवन्तरेँ पक्खियउ । पुरेँ जक्खथाणेँ परिरक्खियउ ॥७॥
तें वुच्चइ "लोद्धा ओसरहि । को मारइ रिसि तुहुँ महु मरहि" ॥८॥

घत्ता

वोलाविय तेण कालन्तरेँण मय ।
दय चएँ वि णिसेणि लीलएँ सग्गु गय ॥९॥

[९]

पावासउ पउरु पाउ करेँवि । बहु-कालु णरय-तिरियहिँ फिरेँवि ॥१॥
वसुभूइ-भिल्लु घण-जण-पउरेँ । पट्टणेँ उप्पण्णु अरिट्ठउरेँ ॥२॥
णामेण अणुद्धरु दुद्धरिसु । कणयप्पह-जणणि-जणिय-हरिसु ॥३॥
दुल्लक्खहों णिय-कुल-पव्वयहों । णन्दण पारवइहेँ पियवयहों ॥४॥
ते उदय-मुदय तासु जि तणय । विण्णाण-कला-पर-पार-गय ॥५॥
गिरि-धीर महोवहि-गहिर-गुण । पय-पालण रज्ज-कज्ज-णिउण ॥६॥
णामङ्किय रयण-विचित्त-रह । पउमावइ-सुअ ससि-सूर-पह ॥७॥
छद्दिवसइँ सल्लेहणु करेँवि । गउ सग्गु पियव्वउ तहिँ मरेँवि ॥८॥
जगडन्तु अणुद्धरु डामरिउ । रणेँ रयण-विचित्तरहेँ धरिउ ॥९॥

घत्ता

पवणेँहिँ तेहिँ छड्डाविय, कमइ ।
हुव अवर-भवेण अग्गिकेउ भमइ ॥१०॥

[8] अपने शत्रुके वैरसे विरुद्ध उस दुर्धरने उन दोनोंको ललकारा—"अरे नर और वनचरोंको संचारित करनेमें समर्थ मुझसे इस समय मरो, कहाँ जाते हो?" यह सुनकर महाव्रत धारी बड़े भाईने छोटे भाईको धीरज बँधाया "डरो मत, स्थिर रहो, उपसर्ग सहन करना दूसरे सबका आभूषण है।" उस वैसे संकटके आनेपर अन्धाधुन्ध घोर मारके आ पड़नेपर, एक व्यक्ति अपने कन्धे उठाकर स्थित हो गया, उद्धार करनेकी इच्छा रखनेवाले एक भील राजाने जो कि पूर्व जन्मान्तरमें पक्षी था और यक्षस्थान नगरमें जिसकी रक्षा की गयी थी, कहा—"हे शिकारी, तू हट जा। मुनिको कौन मारता है। तू मुझसे मारा जायेगा।" इस प्रकार उसने हमें छुड़वा दिया। कालान्तरमें वह मर गया और दयाकी नसैनी-से चढ़कर वह लीलापूर्वक स्वर्ग गया ॥१-८॥

[९] पापाशय वह वसुमति भीलराज प्रचुर पाप कर बहुत समय तक नरक और तिर्यंच गतिमें घूमकर धनजनसे प्रचुर अरिष्टपुर नगरमें उत्पन्न हुआ। नामसे अनुद्धर, अत्यन्त दुर्दर्श-नीय, अपनी माँ कनकप्रभाको हर्ष उत्पन्न करनेवाला। वे उदित-मुदित भी, दुर्लंघ्य अपने कुलरूपी पर्वत राजा प्रियव्रतके पुत्र हुए। जो विज्ञान और कलाकी चरम सीमाको प्राप्त करनेवाले थे। पहाड़की तरह गम्भीर, महोदधिके समान गम्भीर गुणवाले, प्रजाका पालन करनेवाले एवं राजकाजमें निपुण, रत्नरथ और विचित्ररथ नामसे अंकित, पद्मावतीके पुत्र, चन्द्रमा और सूर्यके समान प्रभावाले। छह दिनकी संलेखना कर राजा प्रियव्रत वहाँ मरकर स्वर्ग गया। झगड़ा करते हुए भयंकर अनुद्धरको युद्धमें रत्नरथ और विचित्ररथने पकड़ लिया। उन प्रचण्डोंने उसको छुड़वा दिया। वह दूसरे जन्ममें अग्निकेतु देव हुआ ॥१-१०॥

[१०]

बहु-कालें रयण-विचित्तरहु । सउ करेँ वि मरेँ वि परिभमेँ वि पहु ॥१॥
उप्पण्णु वे वि सिद्धत्थपुरेँ । कण-कञ्चण-धण-धण्ण-पय-पउरेँ ॥२॥
विमलप्पहमहिसि-खेमङ्करहुँ । अवरोप्परु णयण-सुहङ्करहुँ ॥३॥
कुलभूसणु पढमु पुत्तु पवरु । लहु देसविहूसणु एक्कु अवरु ॥४॥
अण्णु वि उप्पण्णी एक्क दुहिय । कमलोच्छव इन्दु-चन्द-मुहिय ॥५॥
बेण्णि मि कुमार सालहिँ णिमिय । आयरियहोँ कहोँ वि समुल्लविय ॥६॥
पढमाण कुमाण-मग्गेँ चडिय । णं दइवें वे अणङ्ग घडिय ॥७॥
वित्थय-वच्छयल पलम्ब-भुअ । णं गयणहोँ इन्द-पडिन्द चुअ ॥८॥

घत्ता

कमलोच्छव ताम कहि मि समावडिय ।
णं वम्मह-भल्लि हियएँ खुत्ति पडिय ॥९॥

[११]

कुलभूसण-देसविहूसणहुँ । णिय-बहिणि-रूव-पेसिय-मणहुँ ॥१॥
पडिहाइ ण चन्दण-लेव-छवि । धवलामल-कोमल-कमलु ण वि ॥२॥
ण वि जलु अल्लउ दाहिण-पवणु । कुसुमाउहेण ण णडिउ कवणु ॥३॥
पेक्खेप्पिणु पयइँ सु-कोमलइँ । ण सहन्ति रत्त-रत्तुप्पलइँ ॥४॥
पेक्खेवि थणवट्टइँ चक्कलइँ । खविड्डइँ करि-कुम्भत्थलइँ ॥५॥
पेक्खेप्पिणु मुहु बालहेँ तणउ । पडिहाइ ण चन्दणु चन्दिणउ ॥६॥
लोयणइँ रुवेँ पहुत्ताइँ । ढोरा इव कद्दमेँ खुत्ताइँ ॥७॥
पेक्खेप्पिणु केस-कलाउ मणेँ । ण सुहन्ति मोर णच्चन्त वणेँ ॥८॥

घत्ता

दिट्ठि-विस बाल सप्पहोँ अणुहरइ ।
जो जोअइ को वि सो सयलु वि मरइ ॥९॥

[१०] बहुत समयके बाद, रत्नरथ और विचित्ररथ दोनों तपकर, पथपर परिभ्रमण कर और मरकर अन्नकण स्वर्ण जन धन और प्रजासे प्रचुर सिद्धार्थपुरमें उत्पन्न हुए, एक दूसरेके लिए शुभंकर अग्रमहिषी विमला और क्षेमंकरसे। कुलभूषण पहला पुत्र था और बड़ा था। एक और छोटा देशभूषण पुत्र हुआ। उसके एक और कन्या उत्पन्न हुई—कमलोत्सवा नामकी सुन्दर चन्द्रमुखी। दोनों कुमार शाला ले जाये गये और किसी आचार्यको सौंप दिये गये। पढ़ते हुए वे यौवनको प्राप्त हो गये, मानो दैवने दो कामदेवोंको गढ़ दिया हो। विशाल वक्षःस्थल और प्रलम्ब बाहु वे ऐसे लगते थे मानो स्वर्गोंसे इन्द्र और प्रतीन्द्र च्युत हुए हों। इतनेमें कमलोत्सवा कहींसे उन्हें दिखाई पड़ गयी मानो कामदेवकी भल्लिका हो, शीघ्र उनके हृदयपर गिरी हो ॥१–९॥

[११] अपनी बहनका रूप देखनेका जिनका मन है, ऐसे कुलभूषण और देशभूषणको चन्दन लेपकी छवि अच्छी नहीं लगती थी, और न ही धवल अमल कोमल कमल; न जल ही, और न जलार्द्र दक्षिण पवन। बताओ कामदेवके द्वारा कौन नहीं प्रवंचित किया गया। उसके सुकोमल पद देखकर कान्तिसे लाल कमल उसे अच्छे नहीं लगते। उसके गोल-गोल स्तन देखकर हाथीके कुम्भस्थल जूठन मालूम होते थे। उस बालाका मुख देखकर चन्दन और चाँदनी अच्छी नहीं लगती। उसके रूपमें गड़े हुए नेत्र कीचड़में फँसे हुए ढोरके समान थे। उसके केशकलापको देखकर वनमें नाचते हुए मोर अच्छे नहीं लगते। उसकी दृष्टिका विष बालसर्पका अनुकरण करता है। जो कोई उसे देख लेता है वह मरने लगता है ॥१-९॥

[११]

तहिँ अवसरेँ पणइहिँ पहु भणिउ । खेमङ्कर तुहुँ जणणिएँ जणिउ ॥१॥
तुहुँ महियलेँ धण्णउ एक्कु पर । जगलोयण-सुहिय साहु पवर ॥२॥
कुल-देसविहूसण जमल सुय । तं णिसुणेँवि णाहँ कुमार सुय ॥३॥
हय-हियय काइँ चिन्तवसि तुहुँ । पाविज्जइ जेहिँ महन्तु दुहु ॥४॥
खलु-खुद्दहँ दुक्किय-गाराहँ । णारइय णरय-पइसाराहँ ॥५॥
गय-वाहि-दुक्ख-हक्काराहँ । सिव-सासय-गमण-णिवाराहँ ॥६॥
तित्थङ्कर-गणहर-णिन्दियहँ । एउ रज्जहिँ पञ्च-वि-इन्दियहँ ॥७॥
रूवेण पयङ्गु मीणु रसेँण । मिगु सवणेँ भसलु गन्धवसेँण ॥८॥

घत्ता

फरिसेण विणासु मत्त-गइन्दु गउ ।
जो सेवइ पञ्च तहोँ उत्तारु कउ ॥९॥

[१२]

तो किय णिवित्ति परिणेवाहोँ । सावज्जु रज्जु भुञ्जेवाहोँ ॥१॥
पारम्भु पयाणउ तव-पहेँण । णिय-देहमएण महारहेँण ॥२॥
विहि विण्णाणिय उप्पाइएँण । दुट्ठट्ठ-कम्म-पच्छाइएँण ॥३॥
इन्दिय-तुरङ्ग-संचालिएँण । सम्मत्त-धाउ-वन्धालिएँण ॥४॥
चल-चलण-चक्क-संजोइएँण । मण-पवकल-सारहि-चोइएँण ॥५॥
तव-संजम-णियम-धम्म-भरेँण । आरूढ णिय-णिय-तणु-रहवरेँण ॥६॥
थिय पडिमा-जोगेँ गिरि-सिहरेँ । सो अग्गिकेउ तेहएँऽवसरेँ ॥७॥
संचलिउ णहङ्गणेँ कहिँ वि जाम । गउ अम्हहँ उप्परि खलिउ ताम ॥८॥
पुव्वभव सरेँवि कोहेँ जलिउ । थिउ रूवेँ वि णहयलेँ किलिकिलिउ ॥९॥
उवसग्गु जाम पारम्भियउ । बहु-रूवेँहिँ गयणेँ वियम्भियउ ॥१०॥

[१२] उस अवसरपर बन्दीजनोंने राजासे कहा—"हे क्षेमंकर ! सचमुच तुम्हीं मातासे उत्पन्न हुए हो। तुम्हीं पृथ्वीपर एकमात्र धन्य हो जिसकी प्रवर कनकोदरश्री नामकी सुन्दर कन्या है !" यह सुनकर कुलभूषण और देशभूषण दोनों जुड़वा कुमार मानो मर गये। "हे हतहृदय, तुम क्या सोच रहे हो ? इससे तुम महान् दुःख प्राप्त करोगे ? ये इन्द्रियाँ खल क्षुद्र पाप करनेवाली, नारकीय नरकमें प्रवेश करानेवाली, रोग-व्याधि और दुखोंको बुलानेवाली, शिवके शाश्वत गमनका निवारण करनेवाली हैं। तीर्थंकर और गणधरोंके द्वारा निन्दित इन पाँच इन्द्रियोंमें (हे मेरे मन तुम) मत सनो। रूपसे पतंग, रससे मछली, शब्दसे मृग, गन्धके वशसे भ्रमर, स्पर्शसे मतवाला गज विनाशको प्राप्त होता है। लेकिन जो पाँचों इन्द्रियोंका सेवन करता है, उसका निस्तार कहाँ ?" ॥१–९॥

[१३] तब उन दोनोंने विवाह तथा पापमय राज्यके भोगनेसे निवृत्ति (संन्यास) ले ली। उन्होंने तपके पथपर अपने शरीररूपी रथ द्वारा जाना शुरू कर दिया। कि जो विधिरूपी (विधातारूपी) विज्ञानीके द्वारा उत्पादित है, दुष्ट आठ कर्मोंसे प्रच्छादित है, इन्द्रियरूपी घोड़ोंसे संचालित है, सात प्रकारकी धातुओंसे बँधा हुआ है, चंचल चरणरूपी चक्रोंसे संयोजित है, मनरूपी मुख्य सारथिसे प्रेरित है, तप-संयम-नियम और धर्मके भारसे भरा हुआ है; ऐसे अपने-अपने शरीररूपी रथवरसे हम लोग (यहाँ) आये; और पर्वतके शिखरपर प्रतिमा-योगसे स्थित हो गये। उस अवसरपर वह अग्निकेतु आकाशके प्रांगणसे कहींके लिए चला। हमारे ऊपरसे जाते हुए वह स्खलित हो गया। पूर्वजन्मके वैरकी याद कर वह क्रोधसे प्रज्वलित हो उठा। आकाशमें अवरुद्ध होकर वह किलकारी भरने लगा। जैसे उसने उपसर्ग प्रारम्भ किया वह अनेक

पडिवण्णएँ तहिँ तेहएँ अवसरेँ। वइन्तएँ गुरु-उवसग्ग-भरेँ ॥११॥
तुम्हहँ जेँ पहावेँ तट्ठाइँ। असुरइँ भग्ग-रणेँण पणट्ठाइँ ॥१२॥

घत्ता

सो अम्हहुँ बप्पु कालन्तरेँण मुउ।
सो दीसइ एत्थु गारुडु देउ हुउ ॥१३॥

[१४]

तो गरुडेँ परिओसिय-मणेँण। बे विज्जउ दिण्णउ तक्खणेँण ॥१॥
राहवहोँ सीहवाहणि पवर। लक्खणहोँ गरुडवाहणि अवर ॥२॥
पहिलारी सत्त-सएँहिँ सहिय। अणुपच्छिम तिहिँ सएँहिँ अहिय ॥३॥
तो कोसल-सुएँण सु-दुल्लहेँण। वुच्चइ वइदेही-वल्लहेँण ॥४॥
'अच्छन्तु ताव तुम्हहुँ जेँ घरेँ। अवसरेँ पडिवण्णेँ पसाउ करेँ ॥५॥
सहुँ गरुडेँ संभासणु करेँवि। गुरु पुच्छिउ पुणु चलणेँहिँ धरेँवि ॥६॥
'अम्हहुँ हिण्डन्तहुँ धरणि-वहेँ। जं जिम होसइ तं तेम कहेँ ॥७॥
कुलभूसणु अक्खइ हलहरहोँ। 'वलु कहेँवि दाहिण-सायरहोँ ॥८॥

घत्ता

संगाम-सयाइँ विहि मि जिणेवाइँ।
महि-खण्डइँ तिण्णि स इँ भुञ्जेवाइँ ॥९॥

●

चउत्तीसमो संधि

केवलेँ केवलीहेँ उप्पण्णएँ चउविह-देव-णिकाय-पवण्णएँ।
पुच्छइ रामु महावय-धारा 'धम्म-पाव-फलु कहहि भडारा ॥

रूपमें आकाशमें फैलने लगा; उस वैसे कठिन अवसरपर, उस भारी उपसर्गके होनेपर, तुम्हारे प्रभावसे वे त्रस्त हुए, और धनुषकी टंकारसे असुर भाग खड़े हुए। तब हमारे पिता कालान्तरमें मर गये। वही इस समय गरुड़देवके रूपमें उत्पन्न हुए दिखाई दे रहे हैं ॥१-१३॥

[१४] तब उस गरुड़ने परितोषित मनसे तत्काल दो विद्याएँ दीं। रामके लिए प्रवर सिंहवाहिनी, और लक्ष्मणके लिए दूसरी गरुड़वाहिनी। उनमें पहली सात सौ शक्तियोंके साथ थी, दूसरी तीन सौ शक्तियोंके साथ। तब दुर्लभ कौशल्याके पुत्र और जानकी-के पति राम कहते हैं, "तब तक आप अपने घर रहें और अवसर आनेपर हम पर कृपा करें।" इस प्रकार गरुड़से सम्भाषण कर और गुरुके चरणोंको पकड़कर रामने फिर पूछा—"धरणी पथपर घूमते हुए हम लोगोंका जिस प्रकार जो होगा, वह उस प्रकार बताइए।" कुलभूषण रामसे कहते हैं—"दक्षिण समुद्रके जलका उल्लंघन कर तुम दोनों सैकड़ों संग्राम जीतोगे और तीन खण्ड धरतीका स्वयं भोग करोगे" ॥१-९॥

चौंतीसवीं सन्धि

केवलीको केवलज्ञान उत्पन्न होने, और चार प्रकारके देव-निकायोंके चले जानेपर राम महाव्रतोंको धारण करनेवाले कुलभूषण देशभूषणसे पूछते हैं—'हे आदरणीय, धर्म और पापका फल बताइए।"

[९]

काइँ फलु पञ्च-महव्वयहुँ । अणुवय-गुणवय-सिक्खावयहुँ ॥१॥
काइँ फलु कइएँ अणत्थमिएँ । उववास-पोसहएँ संथविएँ ॥२॥
फलु काइँ जीव सम्भीसियएँ । परहणेँ परदारेँ अहिंसियएँ ॥३॥
काइँ फलु सच्चेँ बोल्लिएँण । अलिअक्खरेण आमेल्लिएँण ॥४॥
काइँ फलु जिणवर-अच्चियएँ । वर-विउलेँ घरासणेँ सच्चियएँ ॥५॥
काइँ फलु मासेँ छण्डिएँण । रत्तिहिँ देहेँ दण्डिएँण ॥६॥
काइँ फलु जिण-संमज्जणेँण । बलि-दीवङ्कार-विलेवणेँण ॥७॥

घत्ता

किं चारित्तेँ णाणेँ वएँ दंसणेँ अप्पु पसंसिएँ जिणवर-सासणेँ ।
जं फलु होइ अणङ्ग-वियारा तं विण्णासेँ वि कहहि भडारा ॥८॥

[१०]

पुणु पुणु वि पवोल्लिउ भणइ बलु । 'कहेँ सुकिय-दुक्किय-कम्म-फलु ॥१॥
कम्मेण केण रिउ-डमर-कर । सचराचर महिँ भुञ्जन्ति णर ॥२॥
कम्मेण केण पर-चक्क-धर । रह-तुरय-गएँहिँ भुञ्जन्ति णर ॥३॥
परियरिय सु-णारिहिँ णरवरेँहिँ । विज्जिज्जमाण वर-चामरेँहिँ ॥४॥
सुन्दर सच्छन्द महन्द जिह । जोहेँहिँ जोह भुञ्जन्ति किह ॥५॥
कम्मेण केण किय पङ्गुलय । णर कुण्ट मण्ट बहिरन्धलय ॥६॥
काणीण दीण-मुह-काय-सर । वाहिल्ल भिल्ल णाहल सवर ॥७॥
दालिद्दिय पर-पेसणहुँ कर । कें कम्में उप्पज्जन्ति णर ॥८॥

घत्ता

धीर-सरीर वीर तव-सूरा सव्वहुँ जीवहुँ आसाऊरा ।
इन्दिय-वसवण पर-उवयारा तें कहिं णर पावन्ति भडारा ॥९॥

[१] पाँच महाव्रतोंका क्या फल है, अणुव्रत, गुणव्रत और शिक्षाव्रतोंका क्या फल है? अनर्थदण्ड व्रत लेनेका क्या फल होता है? उपवास और प्रोषधोपवास करनेका क्या फल होता है? जीवोंको अभय देनेका क्या फल है? परधन और परस्त्रीकी हिंसा न करनेका क्या फल है? सच बोलनेका क्या फल है? झूठे वचन छोड़नेका क्या फल है? जिनवरकी पूजा करनेका क्या फल है? जिनके सम्मार्जन, नैवेद्य, दीपागार और विलेपनसे क्या फल होता है? चारित्र, ज्ञान, व्रत और दर्शनमें क्या फल है। अन्यके द्वारा प्रशंसित तथा जिनवर शासनमें जो फल है, हे कामदेव-का नाश करनेवाले आदरणीय, उसे आप विस्तारसे बताइए? ॥१-८॥

[२] राम पुनः-पुनः बार-बार कहते हैं—'पुण्य-पाप, कर्म-फल को बताइए। किस कर्मसे मनुष्य शत्रुके लिए भयंकर सचराचर धरतीका भोग करते हैं। किस कर्मके उदयसे शत्रुके चक्रको धारण करनेवाले होते हैं। तथा रथ, घोड़े और गजोंके द्वारा जाने जाते हैं। सुन्दर नारियों और नरवरोंसे घिरे हुए, श्रेष्ठ चामरोंसे हवा किये जाते हुए मनुष्य होते हैं? सिंहके समान स्वच्छन्द और सुन्दर योद्धा योद्धाओंसे किस प्रकार युद्ध करते हैं। किस धर्मसे मनुष्य पंगु, कुबड़ा, बौना, बहिरा और अन्धा होता है। कानीन, दीन मुख, शरीर और स्वरवाला, व्याधिग्रस्त, भील, नाहल, शबर, दरिद्र, दूसरोंकी सेवा करनेवाला किन कर्मोंसे उत्पन्न होते हैं। धीरशरीर, वीर, तपशूर सब जीवोंकी आशा पूरी करनेवाले, इन्द्रियोंको शान्त करने-वाले, और परोपकारी, हे आदरणीय, ऐसे मनुष्य कहाँ पाये जाते हैं? ॥१-९॥

[३]

के वि अण्ण णर दुद्ध-परिचत्ता । देवलोएँ देवत्तणु पत्ता ॥१॥
चन्दाइच्च-राहु-अङ्गार । अण्णहों अण्ण होन्ति कम्मारा ॥२॥
हंस-स-मेस-महिस-विस-कुञ्जर । मोर-तुरङ्ग-रिच्छ-मिग-सम्बर ॥३॥
जइ देवहुँ जें मज्झें संभूआ । तो किं कज्जें वाहण हूआ ॥४॥
एँहु जो दीसइ कुलिस-पहरणु । सहसणयणु अइरावय-वाहणु ॥५॥
गिज्जइ किण्णर-मिहुण-सहासेंहिं । सुरवर जय भणन्ति चउपासेंहिं ॥६॥
हाहा-हूहू-तुम्बुरु-णारा । तेऊ-तेण्णा जसु चकारा ॥७॥
चित्तङ्गो वि मुरव पडिपेल्लइ । रम्भ तिलोत्तिम सहुँ उव्वेल्लइ ॥८॥

घत्ता

अण्णु असुर-सुरहुँ अब्भन्तरें मोक्खु जेम थिउ सव्वहुँ उप्परें ।
दीसइ जासु एवड्डु पहुत्तणु एत्तु फलेण केण इन्दत्तणु' ॥९॥

[४]

तं वयणु सुणेंवि कुलभूसणेंण । कन्दप्प-दप्प-विद्धंसणेंण ॥१॥
सुणु अक्खमि बुच्चइ तेण वलु । आयण्णहि अक्खहों तणउ फलु ॥२॥
महु मज्जु मंसु जो परिहरइ । छज्जीव-णिकायहों दय करइ ॥३॥
पुणु पच्छइ सल्लेहणें मरइ । सो मोक्ख-महा-पुरें पइसरइ ॥४॥
जो घइँ दरिसावइ पाणिवह । अण्णु वि महु-मंसहों तणिय कह ॥५॥
सो जोणी जोणि परिब्भमइ । चउरासी लक्खइ जाम कमइ ॥६॥
एँउ सुकिय-दुकिय कम्म-फलु । सुणु एवहिं णरहों तणउ फलु ॥७॥
तुल-तोलिय महि स-महीहरिय । स-सुरासुर स-घण स-सायरिय ॥८॥

घत्ता

वरुण कुबेर मेरु कइलासु वि तुल-तोलिउ तइलोक्कु असेसु वि ।
तो वि ण गरुवत्तणउ पगासिउ सच्चु स-उत्तर सव्वहों पासिउ ॥९॥

[३] दुखसे रहित, दूसरे कोई मनुष्य देवलोकमें देवत्वको प्राप्त होते हैं। चन्द्र-सूर्य और राहु-मंगल, कर्म करनेवाले अन्यसे अन्य हो जाते हैं। हंस, मेष सहित महिष, वृषभ और गज, मयूर, घोड़ा, रीछ, मृग और साम्भर जो यदि देवोंके मध्यमें उत्पन्न होते हैं तो वे किस कारणसे वाहन हुए हैं? यह जो वज्र हथियार दिखाई देता है, इन्द्र और ऐरावत हाथी है। जो हजारों किन्नर जोड़ोंके द्वारा गाया जाता है, बड़े-बड़े देव जिसके चारों ओर जय-जय बोलते हैं; हा-हा हू-हू बोलते हुए तुम्बर नारद तेज्ज और तेण्ण जिसके चाकर हैं। जिसके यहाँ चित्रांग भी मृदंग बजाता है? रम्भा, तिलोत्तमा और इन्द्राणी, जो स्वयं असुरों और सुरोंके भीतर उसी प्रकार स्थित है, जिस प्रकार मोक्ष सबके ऊपर स्थित है। जिसकी प्रभुता इस प्रकार दिखाई देती है वह इन्द्रत्व फल किस कर्मके फलसे प्राप्त किया जाता है ॥१–९॥

[४] यह वचन सुनकर कामके दर्पका ध्वंस करनेवाले कुलभूषणने कहा, "हे राम सुनो, जिस प्रकार धर्मका फल कहा जाता है उसे सुनो। जो मधु, मद्य और मांसका परित्याग करता है, छहों निकायोंके जीवोंपर दया करता है, फिर बादमें संल्लेखनापूर्वक मरता है, वह मोक्ष महापुरीमें प्रवेश करता है। जो प्राणिवध दिखाता है, और मधुमांसकी कथा करता है, वह योनि योनि घूमता है, और चौरासी लाख योनियोंमें जाता है। यह सुकृत और दुष्कृत कर्मका फल है। अब सत्यका फल सुनिए—महीधर, सुरासुर, धन और सागर सहित तुलापर तौली गयी धरती; वरुण, कुबेर, मेरु, कैलाश और तुलापर तौला गया अशेष त्रिलोक भी हो, उनसे गुरुत्व प्रकाशित नहीं होता। सबकी तुलनामें सत्य सबसे ऊपर है ॥१–९॥

[५]

जो सच्चउ ण चवइ कापुरिसु । सो जीवइ अणवएँ तिण-सरिसु ॥१॥
जो णरु पर-दव्वु ण अहिलसइ । सो उत्तिम-सग्ग-लोएँ वसइ ॥२॥
जो घरें रत्तिदिणु मूढ-मणु । चोरत्तु ण भञ्जइ एक्कु खणु ॥३॥
सो बन्धइ छिज्जइ भिज्जइ वि । कप्पिज्जइ सूलें भरिज्जइ वि ॥४॥
जो दुद्धरु बम्भचेरु धरइ । तहों जसु आकट्टु किं करइ ॥५॥
जो घरें णं जोणि जारु रमइ । सो पङ्कएँ भमरु जेम मरइ ॥६॥
जो करइ णिवित्ति परिग्गहहों । सो मोक्खहों जाइ सुसावहहों ॥७॥
जो घरें अवियप्पहु परिग्गहहों । सो जाइ पुरहों तमतमपहहों ॥८॥

घत्ता

अहवइ णिव्वण्णिज्जइ केत्तिउ एक्केक्कहों वयहों फलु पुत्तिउ ।
जो घरें पञ्च वि धरइ वयाइँ तासु मोक्खु पुच्छिज्जइ काइँ ॥९॥

[६]

फलु पुत्तिउ पञ्च-महव्वयहों । सुणु एवहिँ पञ्चाणुव्वयहों ॥१॥
जो करइ णिरन्तर जीव-दया । परिरक्खु असच्चु सच्चु मि सया ॥२॥
किय हिंस अहिंस सउत्तरिय । ते णरय-महाणइ-उत्तरिय ॥३॥
जे णर स-दार-संतुट्ठ-मण । परहण-परणारी-परिहरण ॥४॥
अपरिग्गह-दाण-करण पुरिस । ते होन्ति पुरन्दर-समसरिस ॥५॥
फलु पुत्तिउ पञ्चाणुव्वयहुँ । सुणु एवहिँ तिहि मि गुणव्वयहुँ ॥६॥
दिस-पच्चक्खाणु पमाण-वउ । खल-संगहु जासु ण वड्ढियउ ॥७॥

घत्ता

इय तिहिँ गुणवएहिँ गुणवन्तउ अच्छइ सग्गेँ सुहइँ भुञ्जन्तउ ।
जासु ण तिहि मि मज्झेँ एक्कु वि गुणु तहों संसारहों छेउ कहिँ पुणु ॥८॥

[५] जो कायर पुरुष सत्य नहीं बोलता वह लोगोंके बीच तिनकेके बराबर है। जो मनुष्य दूसरे धनकी आशा नहीं करता, वह उत्तम स्वर्गलोकमें निवास करता है। जो रातदिन मूर्ख मन है, चोरी करते हुए एक क्षण नहीं थकता वह मारा छेदा और भेदा जाता है। काटा जाता और शूलीपर चढ़ाया जाता है। जो दुर्धर ब्रह्मचर्य धारण करता है, यम भी उससे रूठकर क्या कर सकता है? जो उस सुन्दर योनिमें रमण करता है, वह कमलमें भ्रमरकी तरह मृत्युको प्राप्त होता है। जो परिग्रह-की निवृत्ति करता है वह दुःखरहित मोक्षमें प्राप्त करता है। जो परिग्रहसे अतृप्त रहता है वह तम-तमप्रभा नरकमें जाता है। अथवा कितना वर्णन किया जाये, एक-एक व्रतका इतना फल होता है, जो पाँचों व्रत धारण करता है उसके मोक्षके विषयमें क्या पूछना? ॥१-७॥

[६] पाँच महाव्रतोंका इतना फल है। अब पाँच अणुव्रतोंका फल सुनिए। जो निरन्तर जीवदया करता है, कभी-कभी असत्य परन्तु सदा सच बोलता है, थोड़ी हिंसा, किन्तु अहिंसा अधिक करता है, वह नरकरूपी महानदी पार कर लेता है। जो मनुष्य अपनी पत्नीसे सन्तुष्ट मन है, परधन और परनारीका परि-हार करते हैं, जो अपरिग्रह और दान करनेवाले पुरुष हैं वे इन्द्रके समान होते हैं। पाँच अणुव्रतोंका इतना ही फल है। अब तीन गुणव्रतोंका फल सुनिए। दिशा-प्रत्याख्यान व्रत, (दिग्व्रत) भोगोपभोग परिमाण व्रत ले लिया, और जिसका दुष्टोंका संग नहीं बढ़ा। इस प्रकार तीन गुणव्रतोंसे गुणवान् व्यक्ति सुखभोग करता हुआ स्वर्गमें जिसके तीनोंमें-से एक भी गुण नहीं है उसके संसारका अन्त नहीं है ॥१-८॥

[७]

फलु एत्तिउ तिण्णि वि गुणव्वयहुँ । सुणु एवहिँ चउ-सिक्खावयहुँ ॥१॥
जो पहिलउ सिक्खावउ धरइ । जिणवरेँ तिकाल-वन्दण करइ ॥२॥
सो णरु उप्पज्जइ जहिँ जेँ जहिँ । वन्दिज्जइ लोएँहिँ तहिँ जेँ तहिँ ॥३॥
जो घरेँ पुणु विसयासत्त-मणु । वरिसहोँ वि ण पेक्खइ जिण-भवणु ॥४॥
सो सावउ मच्छेँण सावयहुँ । अणुहरइ णवर वण-सावयहुँ ॥५॥
जो बीयउ सिक्खावउ जरइ । पोसह-उववास-सयइँ करइ ॥६॥
सो णरु देवत्तणु अहिलसइ । सोहम्मेँ बहुअ-मज्झेँ रमइ ॥७॥
जो तइयउ सिक्खावउ धरइ । तवसिहिँ आहार-दाणु करइ ॥८॥
अण्णु वि सम्मत्त-भारु वहइ । देवत्तणु देवलोएँ लहइ ॥९॥
जो चउथउ सिक्खावउ धरइ । सण्णासु करेप्पिणु पुणु मरइ ॥१०॥
सो होइ तिलोयहोँ वज्जियउ । णउ जम्मण-मरण-विओअ-भउ ॥११॥

घत्ता

सामाइउ उववासु स-भोयणु पच्छिम-कालेँ अप्पणु सल्लेहणु ।
चउ सिक्खावयाइँ जो पालइ सो इन्दहोँ इन्दत्तणु टालइ ॥१२॥

[८]

एँउ फलु सिक्खावएँ संथविएँ । सुणु एवहिँ कहमि अणत्थमिएँ ॥१॥
वरि खद्धु मंसु वरि मज्जु महु । वरि अलिउ वयणु हिंसाएँ सहुँ ॥२॥
वरि जीविउ गउ सरीरु रहसिउ । णउ रयणिहिँ भोयणु अहिलसिउ ॥३॥
पुव्वण्हउ गण-गन्धव्वयहुँ । मज्झण्हउ सव्वहुँ देवयहुँ ॥४॥
अवरण्हउ पियर-पियामहहुँ । णिसि रक्खस-भूय-पेय-गहहुँ ॥५॥
णिसि-भोयणु जेण ण परिहरिउ । मणु तेण काइ ण समायरिउ ॥६॥
किमि-कीड-पयङ्ग-सयइँ असइ । कुसरीर-कुजोणिहिँ सो वसइ ॥७॥

[७] तीन गुणव्रतोंका इतना ही फल है। अब चार शिक्षा व्रतोंको सुनिए। जो पहला शिक्षाव्रत धारण करता है, जिनवरकी तीन काल वन्दना करता है, वह मनुष्य जहाँ-जहाँ उत्पन्न होता है, वहाँ-वहाँ लोगों द्वारा उसकी वन्दना की जाती है। जो विषयोंमें आसक्त-मन है, जो घरके भी जिनमन्दिरको नहीं देखता, वह श्रावकोंके भीतर श्रावक नहीं है, वह केवल वन-शृगालोंका अनुकरण करता है। जो दूसरे-दूसरे शिक्षाव्रतको धारण करता है, सैकड़ों प्रोषधोपवास करता है, वह मनुष्य देवत्वको प्राप्त करता है, और सौधर्म स्वर्गमें बहुतोंके साथ क्रीड़ा करता है। जो तीसरा शिक्षाव्रत धारण करता है, तपस्वियोंके लिए आहारदान देता है, और भी सम्यक्त्वका भार वहन करता है; वह देवलोकमें देवत्व प्राप्त करता है। जो चौथा शिक्षाव्रत धारण करता है और फिर संन्यास धारण कर मरता है वह तीनों लोकोंमें बड़ा होता है उसे जन्म, जरा, मरण तथा वियोगका भय नहीं रहता। सामायिक, भोजन सहित उपवास, और अन्तिम समय संलेखना करता है। इस प्रकार जो चार शिक्षाव्रतोंका पालन करता है वह इन्द्रके इन्द्रत्व टाल सकता है॥१-१२॥

[८] शिक्षाव्रतका इस प्रकार फल कहनेके बाद सुनो अब अनर्थदण्ड बताता हूँ। खाया हुआ मांस अच्छा, मधु और मद्य अच्छा, हिंसासे सहित झूठ वचन अच्छा, गया हुआ जीवन अच्छा, गिरा हुआ शरीर अच्छा, लेकिन रात्रिमें चाहा गया भोजन अच्छा नहीं। पूर्वाह्नमें गण गन्धर्वोंका, मध्याह्नमें सब देवोंका, अपराह्नमें पितर-पितामहोंका, रात्रिमें राक्षस, भूत-प्रेत ग्रहोंका भोजन होता है। जिसने रात्रिका भोजन नहीं छोड़ा, बताओ उसने क्या नहीं किया? वह सैकड़ों कृमियों, कीटों और पतंगोंको खाता है तथा खोटे शरीर और योनियोंमें

जो पइँ णिसि-भोयणु उज्झइ । विमलत्तणु विमल-गोत्तु लहइ ॥८॥

घत्ता

सुअउ ण सुणइ ण दिट्ठउ पेक्खइ केणवि बोल्लिउ कहों वि ण अक्खइ ।
भोअणेँ मउणु चउत्थउ पालइ सो सिव-सासय-गमणु णिहालइ ॥९॥

[९]

परमेसरु सुद्धु एम कहइ । जो जं मग्गइ सो तं लहइ ॥१॥
सम्मत्तइँ को वि को वि वयइँ । को वि गुण-गण-वयण-रयण-सयइँ ॥२॥
तवचरणु लइज्जइ परिथवेँण । वंसत्थल-णयर-णराहिवेँण ॥३॥
गय वन्दणहत्ति करेवि सुर । जाणइएँ धरिज्जइ धम्म-धुर ॥४॥
राहवेँण वि वयइँ समिच्छियइँ । गुरु-दिण्णइँ सिरेँण पडिच्छियइँ ॥५॥
चउ णयरु ण थक्कइ लक्खणहों । वालुअपह-णरय-णिरिक्खणहों ॥६॥
तहिँ तिण्णि वि कइ वि दिवस थियइँ । जिण-पुज्जउ जिण-ण्हवणइँ कियइँ ॥७॥
णिग्गन्थ-सयइँ भुआवियइँ । दीणहँ दाणइँ देवावियइँ ॥८॥

घत्ता

तिहुअण-जण-मण-णयणाणन्दहों वन्दणहत्ति करेवि जिणिन्दहों ।
जाणइ-हरि-हलहरइँ पयट्टइँ तिण्णि वि दण्डारण्णु पइट्ठइँ ॥९॥

[१०]

दिट्ठ महाडइ णाइँ विलासिणि । गिरिवर-थणहर-सिहर-पगासिणि ॥१॥
पञ्चाणण-णह-णियर-वियारिय । दीहर-सर-लोयण-विप्फारिय ॥२॥
कन्दर-दरि-मुह-कुहर-विहूसिय । सरवर-रोमावलि-उद्धूसिय ॥३॥
चन्दण-अगरु-गन्ध-विछिड्डिय । इन्दगोव-कुङ्कुम-चच्चिक्किय ॥४॥
अहवइ किं बहुणा वित्थारेँ । णं णच्चइ गय-पय-संचारेँ ॥५॥
उज्झर-मुरव-प्फालिय-सद्देँ । वरहिण-थिर-सुपरिट्ठिय-छन्देँ ॥६॥

रहता है, जो रात्रि-भोजन छोड़ देता है, वह विमल शरीर और विमल गोत्र प्राप्त करता है। जो सुना हुआ भी नहीं सुनता, देखा हुआ भी नहीं देखता, किसीके द्वारा कहे गये को किसीसे नहीं कहता, भोजनमें मौन (चौथा अनर्थ दण्ड) का पालन करता है, वह शिवके लिए शाश्वत गमनको देखता है ॥१-९॥

[९] परमेश्वर अच्छी प्रकारसे यह कहते हैं—जो जिस व्रतको माँगता है, वह उसे मिलता है। कोई सम्यक्त्वको, कोई व्रतोंको, कोई गुणगणों और शब्दरूपी सैकड़ों रत्नोंको ग्रहण करता है। वंशस्थल नगरके राजाने तपश्चरण ग्रहण कर लिया। देवता वन्दनाभक्ति करके चले गये। जानकीने धर्मकी धुरी शीलव्रत ग्रहण कर लिया। राघवने भी व्रतोंको चाहा, और गुरुके द्वारा प्रदत्त उन्हें सिरसे स्वीकार कर लिया। लेकिन बालुकाप्रभ नरकका निरीक्षण करनेवाले लक्ष्मणके पास कोई व्रत नहीं ठहर सका। वे तीनों कई दिनों तक वहाँ ठहरे, तथा जिनपूजा और जिनाभिषेक करते रहे। सैकड़ों दिगम्बर मुनियोंको आहार करवाया और दीनोंको दान दिलवाया। इस प्रकार त्रिभुवनके जनोंके मनों और नेत्रोंको आनन्द देनेवाले जिनेन्द्रकी वन्दनाभक्ति कर सीता, लक्ष्मण और रामने प्रस्थान किया और वे तीनों दण्डकारण्यमें पहुँचे ॥१-९॥

[१०] वह महाटवी उन्हें विलासिनीकी तरह दिखाई पड़ी। जो गिरिवरके स्तनरूपी शिखरोंको प्रकाशित कर रही थी, जो सिंहोंके नखसमूहसे विदारित थी, जो दीर्घ सरोवररूपी नेत्रोंसे विस्फारित थी, जो गुफा घाटियोंके मुख कुहरसे विभूषित और वृक्षरूपी रोमावलिसे शोभित थी। चन्दन और अगरुगन्धसे सुवासित थी, इन्द्रगोपरूपी (वीरबहूटी) केशरसे चर्चित थी। अथवा अधिक विस्तारसे क्या ? मानो वह हाथियोंके पैरके संचार, निर्झररूपी मृदंगोंके शब्द, मयूरोंके

महुअरि-विरुअ-उवगीय-वमालें । अहिणव-पल्लव-कर-संचालें ॥७॥
सीहोरालि-समुट्ठिय-कलयलु । ताहँ वणइ मुणि-गुत्त-सहासउ ॥८॥

घत्ता

तहोँ अब्भन्तरेँ अमर-मणोहरु णयण-कडक्खिउ एक्कु लयाहरु ।
तहिँ रइ करेँ वि थियइँ सच्छन्दइँ जोगु कएविणु जेम मुणिन्दइँ ॥१०॥

[११]

तेहिँ तेहएँ वणेँ रिउ-डमर करु । परिभमइ समुद्दावत्त-धरु ॥१॥
आरण्ण-गइन्दें समारूढइ । वण-गोवउ वण-महिसिउ दुहइ ॥२॥
तं लीह वि चिरिडिहिल्लु महिउ । जाणइहेँ समप्पइ थिय-सहिउ ॥३॥
स वि पक्कावइ वण-हण्डियहिँ । वण-धण्णन्दुलेँहिँ सुकण्डिएँहिँ ॥४॥
णाणाविह-फल-रस-तिम्मणेँहिँ । करवन्द-करीरेँहिँ सालणेँहिँ ॥५॥
इय विविह-भक्ख भुञ्जन्ताहुँ । वण-वासें तिहि मि अच्छन्ताहुँ ॥६॥
मुणि गुत्त-सुगुत्त ताव अइय । असुद्दाणिय दोसु-महव्वइय ॥७॥
कालामुह-कावालिय भगव । मुणि संकर सवण तवसि गुरव ॥८॥

घत्ता

चन्दाइच्चिय भोय पच्चइया हवि जिह भूइ-पुञ्ज-पच्छणिया ।
ते जर-जम्मण-मरण-वियारा वण-चरियएँ पइसन्ति भडारा ॥९॥

[१२]

जं पइसन्त पलोइय मुणिवर । सायय जिह तिह पणविय हलहर ॥१॥
अलि-मुहलिय सर-पवणायम्पिय । 'थाहु थाहु' णं एम पजम्पिय ॥२॥
के वि कुसुम-पब्भारु मुअन्ति । पाय-पुज्ज णं विहि मि करन्ति ॥३॥

स्थिर और अच्छी तरह प्रतिष्ठित छन्द, मधुकरीरूपी स्त्रियोंके कोलाहल तथा अभिनव पल्लवरूपी हाथोंसे चंचलतासे मानो वह नृत्य कर रही थी। सिंहोंकी गर्जनाओंसे उठा हुआ कल-कल शब्द ऐसा लगता था, मानो वह मुनिसुव्रत तीर्थंकरका मंगलपाठ पढ़ रही थी। इसी बीचमें उन्होंने देवोंके लिए सुन्दर एक लतागृह देखा। वहाँ इच्छापूर्वक रति करनेके लिए वे ठहर गये, जैसे योग ग्रहण कर मुनीन्द्र ही ठहर गये हों ॥१–९॥

[११] वहाँ उस प्रकारके वनमें शत्रुके लिए भयजनक समुद्रावर्तको धारण करनेवाला (लक्ष्मण) घूमता है। जंगली हाथियोंपर चढ़ता है। वनकी गायों और भैंसोंको दुहता है। वह दूध, दही और मही, घी सहित जानकीको सौंपता है। वह भी सघन हँड़ियोंमें वनधान्योंके फटके गये चावलों तथा नाना प्रकारके फल रसोंसे आर्द्र करविन्द और करीरों, सालनोंसे उसे पकाती। इस प्रकार विविध प्रकारके भक्ष्योंका भोजन करते हुए, और वनवासमें वहाँ रहते हुए, वहाँ मुनि गुप्त और सुगुप्त आये। वे दोनों जीवदयाका दान करनेवाले और महाव्रती थे। वे कालामुख (एक सम्प्रदाय। त्रिकालभोगी), कापालिक (एक सम्प्रदाय। कामसे दूर), भगव (भगवा वस्त्रधारी। ज्ञानवान्), मुनि शंकर (शिव। सुख देनेवाले); तपन (सूर्य। तपस्या करनेवाले); तपस्वी और गुरु थे। जो वन्दनीय आचार्य और भोगसे प्रव्रजित थे तथा हविकी तरह भूति (धूल ऐश्वर्य) से प्रच्छादित थे। जन्म, जरा और मरणका निवारण करनेवाले वे आदरणीय वनचर्याके लिए निकलते हैं ॥१–९॥

[१२] जब उन्होंने मुनिको प्रवेश करते हुए देखा तो वृक्षोंने श्रावकोंकी तरह उन्हें प्रणाम किया। भौंरोंसे गूँजते हुए और प्रखर हवासे हिलते हुए उन्होंने मानो 'ठहरिए ठहरिए' कहा। कोई वृक्ष कुसुमप्रभारको छोड़ रहे थे, कोई मानो उन दोनोंकी

सो वि ण थक्कु महण्णव-धारा । रामासमेँ पइसन्ति भडारा ॥४॥
रिसि पेक्खेप्पिणु सीय विणिग्गय । णं पच्चक्ख महा-वणदेवय ॥५॥
'राहव पेक्खु पेक्खु अच्छरियउ । साहु-जुअलु चरियएँ पइसरियउ' ॥६॥
वलु वयणेण तेण गज्जोल्लिउ । 'थाहु थाहु' सिरु णवेंवि पवोल्लिउ ॥७॥
विणयङ्कुसेँण साहु-गय वालिय । किउ सम्मज्जणु पाय पखालिय ॥८॥
दिण्ण ति-वार धार सलिलेण वि । कम चच्चिय गोसीर-रसेण वि ॥९॥
पुप्फक्खय-बलि-दीवङ्गारेँ हिँ । एम पयत्तेँ वि अट्ठ-पयारेँ हिँ ॥१०॥

घत्ता

वन्दिय गुरु गुरु भत्ति करेवि लग्ग परीसवि सीयाएवि ।
मुह-पिय अच्छ पच्छ मण-भाविणि भुत्त पेज्ज कामुएँ हिँ व कामिणि ॥११॥

[१२]

दिण्णु पाणु पुणु सुहहोँ पियारउ । चारण-भोग्गु जेम हलुयारउ ॥१॥
सिद्धउ सिद्धु जेम सिद्धोहउ । जिणवर-भाउ जेम अइदीहउ ॥२॥
पुणु अभिगमउ दिण्णु हियइच्छिउ । जिह सु-कलत्तु सु णेहु-स-इच्छउ ॥३॥
सुरहइँ पुणु सालणइँ विचित्तइँ । तिक्खइँ णाइँ विलासिणि-चित्तइँ ॥४॥
दिण्णइँ पुणु तिम्मणइँ मणिट्ठइँ । अहिणव-कइ-वयणा इव मिट्ठइँ ॥५॥
पच्छइ सिसिरु स-मच्छरु सुद्धउ । दुट्ठ-कलत्तु जेम अइ-थद्धउ ॥६॥
पुणु मय-सलिलु दिण्णु सीयालउ । णं जिण-वयणु पाव-पक्खालउ ॥७॥
लीलएँ जिमिय भडारा जावेँ हिँ । पञ्चच्छरिउ पदरिसिउ तावेँ हिँ ॥८॥

घत्ता

दुन्दुहि गन्धवाउ रयणावलि साहुक्कारु अण्णु कुसुमञ्जलि ।
पुण्ण-पवित्तइँ सासय-हूअइँ पञ्च वि अच्छरियइँ सइँ भूअइँ ॥९॥

पादपूजा कर रहे हों। तब भी महाव्रतोंके धारी वे वहाँ नहीं ठहरे। आदरणीय वे रामके आश्रममें प्रवेश करते हैं। मुनिको देखकर सीता बाहर आयी, मानो प्रत्यक्ष वनदेवी हो। (बोली) "राम! देखो देखो, आश्चर्य है; दो साधु चर्याके लिए निकले हैं।" इन शब्दोंसे राम पुलकित हो गये, और अपना सिर झुकाकर बोले—"ठहरिए ठहरिए।" इस प्रकार विनयरूपी अंकुशके द्वारा साधुरूपी महागज मोड़ दिये गये। रामने उनके पैरोंका सम्मार्जन और प्रक्षालन किया। तीन बार जलकी धारा छोड़ी। गायके दूधके रससे पैरोंको शोभित किया। पुष्प, अक्षत, नैवेद्य, दीप और अग्नि इस प्रकार आठ प्रकारसे पूजा कर गुरुकी वन्दना की, और फिर भारी भक्ति कर सीता देवी उन्हें परोसने लगीं। मुखके लिए मधुर और अच्छे पेयका उन्होंने उसी प्रकार उपभोग किया, जिस प्रकार कामुकोंके द्वारा मनभाविनी कामिनीका भोग किया जाता है ॥१-११॥

[१२] मुखको प्यारा लगनेवाला फिर उन्हें पान दिया जो मुनियोंके योग्य और हलका था, जो सिद्धि चाहनेवाले सिद्धकी तरह सिद्ध था, जिनवरकी आयुकी तरह अत्यन्त दीर्घ था। फिर (अग्गिमस)......दिया, जो सुकलत्रकी तरह हृदयसे इच्छित, स्नेह और इच्छासे परिपूर्ण था; फिर शुद्ध और विचित्र सालन दिये गये, जो विलासिनियोंके चित्तोंकी तरह तीखे थे। फिर मनपसन्द कढ़ी दी गयी जो अभिनव कविके वचनोंके समान मीठी थी। बादमें शुद्ध तथा दुष्ट स्त्रीकी तरह अत्यन्त गाढ़ा मट्ठा दिया गया। फिर शीतल, सुगन्धित जल दिया गया, मानो पापोंको धोनेवाला जिनवचन हो। जब आदरणीय मुनि लीला-पूर्वक भोजन कर रहे थे, तभी पाँच आश्चर्य प्रकट हुए। दुन्दुभि, गन्धपवन, रत्नावली, साधुकार और कुसुमांजलि पुण्यसे पवित्र शाश्वत दूतोंकी तरह ये पाँचों आश्चर्य स्वयं प्रकट हुए॥१-९॥ ●

पंचतीसमो संधि

गुत्त-सुगुत्तहुँ तर्णेण पहावें रामु स-सीय परम-सब्भावें ।
देवेंहिँ दाण-रिद्धि खणें दरिसिय कुल-मन्दिरें वसुहार पवरिसिय ॥

[१]

जाय महाघ रयण सु-पगासइँ । लक्खइँ तिण्णि सयइँ पञ्चासइँ ॥१॥
वरिसें वि रयण-वरिसु सइँ हत्थें । रामु पसंसिउ सुरवर-सत्थें ॥२॥
'तिहुयणें णवर एक्कु पर धण्णउ । दिव्वाहारु जेण वणें दिण्णउ' ॥३॥
मणें परितुट्ठइँ अमर-सयाइँ । 'अण्णें दाणें किज्जइ काइँ ॥४॥
अण्णें धरिउ सुवण्णु सयरायरु । अण्णें धम्मु कम्मु पुरिसायरु ॥५॥
अण्णें रिद्धि-विद्धि वंसुब्भउ । अण्णें पेम्मु विलासु स-विब्भमु ॥६॥
अण्णें गेउ वेउ सिद्धक्खरु । अण्णें जाणु झाणु परमक्खरु ॥७॥
अण्णु मुएवि अण्णु किं दिज्जइ । जेण महन्तु मोक्खु पाविज्जइ ॥८॥

घत्ता

अण्ण-सुवण्ण-कण्ण-गोदाणहुँ मेइणि-मणि-सिद्धन्त-पुराणहुँ ।
सव्वहुँ अण्ण-दाणु उब्भासणु पर-सासणहुँ जेम जिण-सासणु' ॥९॥

[२]

दाण-रिद्धि पेक्खेवि खगेसरु । णवर जडाइ आउ जाईसरु ॥१॥
गग्गर-वयणउ मुणि-अणुराएँ । पडिउ पाइँ सिरें मोग्गर-घाएँ ॥२॥
जिह जिह सुमरइ णियय-भवन्तरु । तिह तिह मेल्लइ अंसु णिरन्तरु ॥३॥
'मइँ पावेण तिलोयाणन्दहुँ । पञ्च-सयइँ पीलियइँ मुणिन्दहुँ' ॥४॥
एम पहाउ करन्तु विहङ्गउ । गुरु-चलणेहिँ पडिउ मुच्छङ्गउ ॥५॥

पैंतीसवीं सन्धि

गुप्त और सुगुप्त मुनियोंके प्रभाव, राम और सीताके परम सद्भावसे देवोंने एक क्षणमें दानकी ऋद्धिका प्रदर्शन किया। उन्होंने रामके घरमें धनकी वर्षा की।

[१] साढ़े तीन लाख अत्यन्त मूल्यवान् रत्नोंकी वृष्टि हुई। अपने हाथों रत्नोंकी वर्षा कर सुरवर-समूहने रामकी प्रशंसा की—"त्रिभुवनमें एक अकेले राम धन्य हैं कि जिन्होंने वनमें दिव्याहार दिया, जिससे सैकड़ों देवता अपने मनमें सन्तुष्ट हुए, दूसरे दानसे क्या ! अन्नसे ही सचराचर विश्व स्थित है, अन्नसे ही धर्म-कर्म और पुरुषार्थ होता है। अन्नसे ऋद्धि-वृद्धि और अच्छे कुलमें उत्पत्ति होती है। अन्नसे ही सविभ्रम-प्रेम और विलास होता है। अन्नसे गेय-वेद और सिद्धाक्षर होते हैं। अन्नसे ज्ञान-ध्यान और परमाक्षर होते हैं। अतः अन्नको छोड़कर, और क्या दिया जाये कि जिससे बड़ा भोग प्राप्त हो। अन्न, स्वर्ण, कन्या और गोदान, भूमि, मणि, सिद्धान्त, पुराण सबमें अन्नदानका स्थान सबसे ऊपर है, उसी प्रकार, जिस प्रकार परशासनमें जिनशासनका" ॥१–९॥

[२] दान-ऋद्धि देखकर खगेश्वर जटायुको केवल पूर्वजन्मका स्मरण हो आया। मुनिराजके अनुरागसे गद्गद वचन उसे जैसे किसीने मोंगरेसे सिरपर आघात कर दिया हो। जैसे-जैसे वह अपने भवान्तरकी याद करता है, वैसे-वैसे निरन्तर वह अश्रुधारा छोड़ने लगता है, "मुझ पापीने त्रिलोकको आनन्द देनेवाले पाँच सौ मुनियोंको पीड़ित किया," इस प्रकार प्रलाप करता हुआ वह पक्षी मूर्च्छित होकर मुनिके चरणोंपर गिर

पय-पक्खालण-जलेंण सासिउ । राहवचन्दें पुणु उवयासिउ ॥६॥
सीयएँ वुत्तु 'पुत्तु महु एवहिँ । छुडु वन्दउ पुत्तु धरउ सुखेवेंहिँ' ॥७॥
ताव रयण-उज्जोवें भिण्णा । जाय पक्ख चामीयर-वण्णा ॥८॥

घत्ता

विद्दुम-चञ्चु णील-णिह-कण्ठउ पय-वेरुलिय-वण्ण मणि-पट्ठउ ।
लक्खणें पक्ख-वण्णु णिव्वडियउ णोयउ रयण-पुञ्जु णं पडियउ ॥९॥

[६]

भावें विहि मि पयाहिण देन्तउ । णाइ जिह हरिस-विसाएँहिँ अन्तउ ॥१॥
दिट्ठु पक्खि जं णयणाणन्दणु । भणइ णवेप्पिणु दसरह-णन्दणु ॥२॥
'हे मुणिवर गयणङ्गण-गामिय । चउगइ-दुक्ख-महाणइ-णामिय ॥३॥
कहि कज्जेण केण सच्छायउ । पक्खि सुवण्ण-वण्णु जं जायउ' ॥४॥
तं णिसुणेवि वुत्तु णीसङ्कें । 'सयलु वि उत्तिम-पुरिस-पसङ्गें ॥५॥
एक्कु हलुवो वि होइ गरुआरउ । कञ्चुवि सेल-सिहरेँ मझारउ ॥६॥
मेरु-णियम्बें तिणु वि हेमुज्जलु । सिप्पिउडेसु जलु वि मुत्ताहलु ॥७॥
तिह विहङ्गु मणि-रयणुज्जोएँ । जाउ सुवण्ण-वण्णु मुणि-लोएँ ॥८॥

घत्ता

तं णिसुणेवि वयणु असगाहें पुच्छिउ पुणु वि णाहु णरणाहें ।
'विहलङ्घलु घुम्मन्तु विहङ्गउ कवणें कारणेण मुच्छंगउ' ॥९॥

[७]

भणइ ति-णाण-पिण्ड-परमेसरु । 'एहु विहङ्गु आसि रज्जेसरु ॥१॥
पट्टणु दण्डाउरु भुञ्जन्तउ । दण्डउ णामु चउद्दहँ भसंड ॥२॥
एक्क-दिवसें वारहिएँ चलियउ । तावसिकाल-जोगि मुणि मिलियउ ॥३॥
थिउ अत्तावणें लम्बिय-वाहउ । अविचलु मेरु जेम दुग्गाहउ ॥४॥

पड़ा। पैरोंके प्रक्षालन-जलसे आश्वस्त होकर रामने फिर उसे सान्त्वना दी। सीताने कहा—"इस समय तुम मेरे पुत्र हो, तुम शीघ्र बढ़ो और सुख धारण करो।" इतनेमें रत्नोंके प्रकाशसे आलोकित उसके पंख सोनेके हो गये। चोंच विद्रुमकी, कण्ठ नीलमणिके समान, पैर वैदूर्यमणियोंके और पीठ मणियोंकी। वह पक्षी शीघ्र पाँच रंगोंवाला हो गया, मानो दूसरा ही रत्न-समूह आ पड़ा हो ॥१-९॥

[३] भावसे दोनों मुनियोंकी प्रदक्षिणा देते हुए और नटकी भाँति हर्ष-विषादको प्राप्त होते हुए, नेत्रोंके लिए आनन्ददायक उस पक्षीको जब रामने देखा तो दशरथ-पुत्र राम प्रणाम करके पूछते हैं, "हे आकाशगामी चार गतिरूपी महानदीको सुखा देनेवाले मुनिवर, बताइए किस कारण सुन्दर कान्तिवाला यह पक्षी स्वर्णवर्णका हो गया।" यह सुनकर उन अनासंग मुनिने कहा, "उत्तम मनुष्यकी संगतिसे सभी छोटे आदमी बड़े आदमी बन जाते हैं उसी प्रकार जिस प्रकार वृक्ष भी पर्वतकी चोटीपर बड़ा दिखाई देता है। मेरु पर्वतके कटिनितम्बपर तृण भी हेमकी तरह उज्ज्वल दिखाई देता है। सीपीके सम्पुटमें जल भी मोती हो जाता है। उसी प्रकार मुनिके प्रक्षालन-जल और मणिरत्नोंके प्रकाशसे स्वर्ण-वर्ण हो गया।" यह वचन सुनकर, असत्को पानेकी इच्छावाले नरनाथ रामने पूछा—"विह्वलांग घूमता हुआ यह पक्षी किस कारणसे मूर्च्छित हुआ" ॥१-९॥

[४] तीन ज्ञान शरीरवाले परमेश्वर कहते हैं—यह पक्षी (पहले) राज्येश्वर था और दण्डपुर नगरका उपभोग करता था। दण्डक नामका यह राजा बौद्धोंका भक्त था। एक दिन वह शिकारके लिए चला कि इतनेमें उसे त्रिकालयोगी मुनि मिले। वह आतापिनी शिलापर हाथ लम्बे किये हुए स्थित थे, सुमेरु पर्वतकी

तं पेक्खेंवि साहुट्टु सहुवलु ।   "अवसु अज्जु अवसवणु अमङ्गलु" ॥५॥
एम भणन्तें विसहरु घाऍवि ।   रोसें मुणिवर कण्ठें लाऍवि ॥६॥
गउ णिय-णयरु णराहिउ जावेंहिं । थिउ णीसङ्कु णिरोहें तावेंहिं ॥७॥
"एहु को वि फेडेसइ जइयहुँ ।   लम्बिय-हत्थु थामि तइयहुँ" ॥८॥

घत्ता

आवण्णेक्क-दिवसें पहु आवइ तं जें भडारउ तहिं जें विहावइ ।
गलएँ भुअङ्गम-मडउ णिबद्धउ कण्ठाहरणु णाइँ आइद्धउ ॥९॥

[५]

जं अच्चिन्तु वि दिट्ठु मुणि-केसरि । फेडेंवि विसहर-कण्ठा-मञ्जरि ॥१॥
बोल्लाविउ "बोल्लहि परमेसर ।   तव-चरणेण काइँ तवणेसर ॥२॥
खणिउ सरीरु जीउ खण-मेत्तउ ।   जो झायहि सो गयउ अतीतउ ॥३॥
तुहु मि खणिउ णाउ वि सिक्खवणु । झायहों किं पमाणु किं लक्खणु" ॥४॥
सयलु णिरत्थु सुण्णु जं ताएँ ।   मुणिवरु चवेंवि लग्गु णयवाएँ ॥५॥
"जइ पुणु सो जें पक्खु बोल्लेवउ । ता खण-सद्दु ण उच्चारेवउ ॥६॥
खणिउ खयारु णयारु वि होसइ ।   खण-सद्दहों उच्चारु ण होसइ ॥७॥

घत्ता

अघडिउ अघडमाणु अघणब्भउ लक्खिएँ खणिउ खणन्तर-मेत्तउ ।
सुण्णें सुण्ण-वयणु सुण्णासणु सव्वु णिरत्थु वयक्खहुँ सासणु" ॥८॥

[६]

खण-सद्देण णिरुत्तरु जायउ ।   पुणु वि पबोल्लिउ दण्डय-रायउ ॥१॥
"सो महँ सव्वु अस्थि जं दीसइ ।   पुणु तवचरणु कासु किज्जेसइ" ॥२॥

तरह अविचल एवं दुर्ग्राह्य उन्हें देखकर वह महाबली एकदम क्रुद्ध हो उठा। "आज अवश्य अपशकुन और अमंगल होगा।" यह कहते हुए एक साँप मारकर क्रोधसे मुनिवरके गलेमें डालकर, जब राजा अपने नगर गया तभी मुनिवर यह निरोध (निश्चय या प्रतिज्ञा) करके बैठ गये कि जबतक कोई इसे नहीं हटाता, तबतक मैं अपने हाथ ऊँचे किये हुए स्थित हूँ। जब एक और दिन राजा वहाँ आया, उसने उन आदरणीयको वहीं देखा। गलेमें बँधा हुआ साँपका शव कण्ठाभरणके समान शोभित था ॥१-९॥

[५] जब उसने उन मुनिसिंहको अविचल देखा तो विषधरकी उस कण्ठामंजरीको हटाकर उसने कहा—"हे तपनेश्वर परमेश्वर! बोलो तपश्चरणसे क्या? शरीर क्षणिक है और जीव क्षणमात्र है जिसका तुम ध्यान करते हो, वह अतीत हो गया। तुम भी क्षणिक हो, आज भी तुम्हें सिद्धत्व प्राप्त नहीं है। इसका क्या प्रमाण है, और क्या लक्षण है?" राजाने जो कुछ कहा वह सब व्यर्थ था। मुनिवरने नयवादसे कहना प्रारम्भ किया, "यदि तुम उसी पक्षको बोलोगे तो तुम क्षण शब्दका भी उच्चारण नहीं कर पाओगे? 'क्षकार' भी क्षणिक होगा और णकार भी, इस प्रकार 'क्षण' शब्दका उच्चारण दिखाई नहीं देता। अघटित, अघटमान और अघटन्त (घटित नहीं हुआ, घटित नहीं होता हुआ, घटित नहीं हो रहा), क्षणिक, क्षणिकके द्वारा क्षणान्तर मात्र रह जायेगा। शून्य वचन और शून्यासन, इस प्रकार बौद्धोंका सारा शासन व्यर्थ है" ॥१-८॥

[६] क्षण शब्दसे निरुत्तर होकर राजा दण्डकने फिर कहा—"यदि जो दिखाई देता है वह सब है तो तपश्चरण किसके लिए किया जाता है।" यह सुनकर कवियोंमें श्रेष्ठ और वादियोंके लिए वागीश्वर मुनिराजने कहा—"हे राजन्!

तं णिसुणेप्पिणु भणइ मुणीसरु । जो कइ-गवय-वाह वाईसरु ॥३॥
"अम्हइँ राय ण वोल्लहुँ एवं । णेआइएँहिँ हसिज्जहुँ जेवं ॥४॥
अत्थि णत्थि दोण्णि वि पडिवज्जहुँ । तुहुँ जिह णउ सण्णाएँ भज्जहुँ" ॥५॥
तं णिसुणेवि भणइ दणुदारउ । "जाणिउ परम-पक्खु तुम्हारउ ॥६॥
अत्थि ण अत्थि णिच्च-संदेहो । पुणु धवलउ पुणु सामल-देहो ॥७॥
पुणु वि मत्त-करि पुणु पञ्चाणणु । णच्चिउ वइसु सुरङ्गु पुणु बम्भणु" ॥८॥

घत्ता

भणिउ भडारउ "किं वित्थारेँ एक्कु चोरु चिरु धरिउ तलारेँ ।
गीवा-मुह-णासच्छि गविट्ठउ सीसु लएन्तहुँ कहि मि ण दिट्ठउ ॥९॥

[७]

अहवइ एण काइँ संदेहेँ । अत्थि वि णत्थि वि णीसंदेहेँ ॥१॥
जेत्थु अत्थि तहिँ अत्थि भणेव्वउ । जहिँ ण अत्थि तहिँ णत्थि भणेव्वउ" ॥२॥
सव्वभूसेण पराइउ भाविउ । लइउ धम्मु पुणु मुणि पाराविउ ॥३॥
साहुहुँ पञ्च सयइँ धरियाइं । णिसुअइँ तेसट्ठि वि चरियाइं ॥४॥
तो एत्थन्तरेँ जण-मण-खोहिणि । कुइय सणङ्कु दुण्णय-सामिणि ॥५॥
पुणु मयवइणु पुत्तु महल्लउ । "णरवइ जाउ जिणेसर-भत्तउ ॥६॥

घत्ता

तो वरि मन्तु किं पि मन्तिज्जइ जिणहरेँ सव्वु दव्वु भुञ्जिज्जइ ।
जेण गवेसण पहु कारावइ साहुहुँ पञ्च-सयइँ मारावइ" ॥७॥

[८]

एक्क-दिवसेँ तं तेम कराविउ । जिणहरेँ सव्वु दव्वु भुञ्जाविउ ॥१॥
मयवइणेण णिवहोँ वज्जरियउ । "तुम भण्डारु मुणिन्देँहिँ हरियउ" ॥२॥
तेँ आलावेँ कुण्डधराएँ । हसियउ पुणु पुणु सीह-णिणाएँ ॥३॥
"पत्तिय लोक-सिहरेँ सयवत्तहँ । पत्तिय महियलेँ गह-णक्खत्तहँ ॥४॥

हम लोगोंसे ऐसा न कहिए, कि जिस प्रकार नैयायिकोंके साथ उपहास किया जाता है। हम अस्ति और नास्ति, दोनों पक्षोंको स्वीकार करते हैं? तुम्हारे समान क्षणिकवादसे हम भग्न नहीं होते।" यह सुनकर दानवोंका नाश करनेवाला दण्डक राजा कहता है कि तुम्हारा श्रेष्ठ पक्ष जान लिया। है, नहीं है, मैं नित्य सन्देह है। फिर धवल, फिर श्यामल शरीर, फिर मतवाला हाथी और फिर सिंह। क्षत्रिय, वैश्य, ब्राह्मण और शूद्र। इसपर भट्टारकने कहा, "विस्तारसे क्या? एक चोरको तलवारने बहुत समयसे पकड़ रखा है। ग्रीवा, मुख, नाक, आँख द्वारा गवेषित सिर ले लेनेपर भी कहीं दिखाई नहीं देता ॥१-६॥

[७] अथवा इस सन्देहसे क्या? निःसन्देहभावसे अस्ति भी है, और नास्ति भी है। जहाँ अस्ति है वहाँ अस्ति कहना चाहिए, और जहाँ 'अस्ति' नहीं है, वहाँ नास्ति कहना चाहिए। स्वतन्त्रतासे राजाने विचार किया। उसने जैनधर्म स्वीकार कर लिया। उसने पाँच सौ साधुओंको आश्रय दिया, और त्रेसठ शलाका पुरुषोंके चरित सुने। तब इसी बीच दुर्नयोंकी स्वामिनी, जन-मनको अच्छी लगनेवाली रानी आधे पलमें कुपित हो गयी। उसने अपने बड़े पुत्र मयवर्धनसे कहा कि राजा जिनेश्वरका भक्त हो गया है। तो अच्छा है कि कोई मन्त्र (उपाय) किया जाये, जिनमन्दिरमें सब धन इकट्ठा कर दिया जाये, जिससे राजा उसकी खोज करायेगा और पाँच सौ ही साधुओंको मरवा देगा ॥१-७॥

[८] एक दिन उसने वैसा ही करवाया। जिनमन्दिरमें सब धन इकट्ठा करवा दिया। मयवर्धनने राजासे कहा— "तुम्हारा खजाना मुनियोंने हर लिया है।" इस कथनसे राजा दण्डक हँस पड़ा और बार-बार उसने सिंहनादमें कहा— "विश्वास करो कि शैलशिखरपर कमलपत्र होते हैं, विश्वास

पत्तिय विप्फुरिय चन्द-दिवायर । पत्तिय परिभमन्ति रयणायर ॥५॥
पत्तिय णहेँ हवन्ति कुलपव्वय । पत्तिय एक्कहिँ मिलिय दिसा-गय ॥६॥
पत्तिय णउ चउवीस वि जिणवर । पत्तिय णउ चक्कवइ ण कुलयर ॥७॥
पत्तिय णउ तेसट्ठि पुराणइँ । पञ्चेन्दियइँ ण पञ्च वि णाणइँ ॥८॥
सोलह सग्ग मग्गहुँ उप्पत्तिय । मुणि चोरन्ति मन्ति मं पत्तिय" ॥९॥

घत्ता

जं णरवइ वोल्लिउ कइवारेँ मन्तिउ मन्तु पुणु वि परिवारेँ ।
"लइ रिसि-रूव एहु दरिसावहुँ पुणु महएवि-पासु पइसारहुँ ॥१०॥

[९]

अवसेँ रोसेँ पुर-परमेसरु । मुणिवर घल्लेसइ रज्जेसरु" ॥१॥
एम भणेवि पुणु वि कोक्काविउ । सच्चएँ मुणिवर-वेसु धराविउ ॥२॥
तेण समाणउ जण-मण-भाविणि । लग्ग वियारेँहिँ कुणय-सामिणि ॥३॥
तो एत्थन्तरेँ गलोलिय-वणु । गउ णिय-णिवहोँ पासु मयवइणु ॥४॥
णरवइ पेक्खु पेक्खु मुणि-कम्मइँ । कुक्कु पमाणहोँ बोल्लिउ जं मइँ ॥५॥
मूढा असुह ण बुज्झहि अज्ज वि । हिउ सण्डारु जाव हिय मज्झ वि" ॥६॥

घत्ता

जाणन्तो वि सो वि मणेँ मूढउ णरवइ कोव-गइन्दारूढउ ।
दिण्णाणत्ती णरवर-विन्दहुँ धरियइँ पञ्च वि सयइँ मुणिन्दहुँ ॥७॥

[१०]

पहु-आएसेँ धरिय भडारा । जे पञ्चेन्दिय-पसर-णिवारा ॥१॥
जे कलि-कलुस-कसाय-वियारा । जे संसार-घोर-उत्तारा ॥२॥
जे चारित्त-पुरहोँ पायारा । जे कम्मट्ठ-दुट्ठ-दणु-दारा ॥३॥
जे णीसल्ल अणङ्ग-वियारा । जे भवियायण-अब्भुद्धारा ॥४॥

करो कि महीतलपर ग्रह-नक्षत्र होते हैं, विश्वास करो कि सूर्य और चन्द्रमा उलटे होते हैं, विश्वास करो कि समुद्र घूमते हैं, विश्वास करो कि कुलपर्वत आकाशमें होते हैं, विश्वास करो कि चौबीस जिनवर नहीं होते, विश्वास करो कि चक्रवर्ती और कुलकर नहीं होते, विश्वास करो कि त्रेसठ पुराण नहीं होते, पाँच इन्द्रियाँ नहीं होतीं, पाँच ज्ञान नहीं होते; सोलह स्वर्ग नष्ट होते हैं और भग्न होते हैं। लेकिन मुनि चोर होते हैं, हे मन्त्री! इसपर विश्वास मत करो।" जब राजाने कई बार इस तरह कहा तो परिवारने पुनः मन्त्रणा की कि "हम लोग शीघ्र ही एक मुनिरूप दिखायें और उसे महादेवीके पास बैठायें ॥१-१०॥

[९] अवश्य ही राज्येश्वर पुरपरमेश्वर मुनिवरोंको निकलवा देगा।" इस प्रकार विचार कर उसने पुनः किसीको पुकारा और तत्क्षण उसका मुनिरूप बनाया। उसके साथ जनमनको अच्छी लगनेवाली दुर्नयस्वामिनी विकारोंके साथ जा लगी। तब इसी बीच पुलकित शरीर, भयवर्धन अपने राजाके पास गया (और बोला), "राजा! देखो-देखो, जो मैंने कहा था उसका सबूत मिल गया। मूर्ख और अपण्डित तुम आज भी नहीं समझते जब कि भण्डार भी हर लिया गया, और भार्या भी हर ली गयी।" राजा मनमें जानता था तब भी वह मूर्ख कोपरूपी गजेन्द्रपर चढ़ गया। राजपुरुषोंको उसने आज्ञा दी। पाँच सौ ही मुनीन्द्र पकड़ लिये गये ॥१-७॥

[१०] राजाके आदेशसे वे मुनि पकड़ लिये गये जो कि पाँच इन्द्रियोंके प्रसारका निवारण करनेवाले थे। जो कलि, कलुष और कषायोंका विदारण करनेवाले थे, जो घोर संसारसे पार करनेवाले थे, जो चारित्ररूपी नगरके प्राकार थे, जो कर्मरूपी आठ दुष्ट दानवोंका नाश करनेवाले थे, जो अनासंग और काम-

जे सिव-सासय-सुह-हकारा । जे गारव-पमाय-विणिवारा ॥५॥
जे दालिद्द-दुक्ख-खयकारा । सिद्धि-वरङ्गण-पाण-पियारा ॥६॥
जे वायरण-पुराणहुँ जाणा । सिद्धन्तिय एक्केक्क-पहाणा ॥७॥
ते तेहा रिसि जन्तेंं छुहाविय । रसमसकसमसन्त पीलाविय ॥८॥

घत्ता

पञ्च वि सय पीलाविय जावेंहिं मुणिवर बेण्णि पराविय तावेंहिं ।
घोर-वीर-तवचरणु चरेप्पिणु आतावणें तव-लच्छु लएप्पिणु ॥९॥

[११]

केण वि ताम वुत्तु "मं पइसहों । बेण्णि वि पाण लएप्पिणु णासहों ॥१॥
गुरु तुम्हारा आवइ पाविय । सएं जन्तेंं सुहं वि पीलाविय" ॥२॥
तं णिसुणेवि एक्कु मुणि कुद्धउ । णं खय-कालें कियन्तु विरुद्धउ ॥३॥
घोरु रउद्दु झाणु आऊरिउ । चउ सम्मत्तु सयलु संचूरिउ ॥४॥
अप्पाणेणप्पाणु विहत्थिउ । सक्कणें छार-पुञ्जु परिअत्तिउ ॥५॥
जो कोवाणलु तेण विमुक्कउ । गउ णयरहों सयडम्मुहु ढुक्कउ ॥६॥

घत्ता

पट्टणु चाउद्दिसु संदीविउ स-धउ स-तउलु जालालोविउ ।
जं जं कुम्भ-सहासेंहिं सिप्पइ विहि-परिणामें जलु वि पलिप्पइ ॥७॥

[१२]

पट्टणु दड्ढु असेसु वि जावेंहिं । रक्ख अम-ओह पराविय तावेंहिं ॥१॥
ते तइलोक्कहो वि जिणेंवि समत्था । असि-घण-सब्बल-णियल-विहत्था ॥२॥
कक्कड-कविल-केस भीसावण । काल-कियन्त-लील-दरिसावण ॥३॥
कसण-सरीर वीर फुरियाहर । पिङ्गल-णयण झसर-मोग्गर-धर ॥४॥

द्वेषको नाश करनेवाले थे, जो भव्यजनोंका अभ्युद्धार करनेवाले थे, जो शिवके शाश्वत सुखको निमन्त्रण देनेवाले थे, जो गर्व और प्रमादको दूर करनेवाले थे, जो दारिद्रय और दुःखका क्षय करनेवाले थे, जो सिद्धिरूपी उत्तम अंगनाके प्राणप्रिय थे, जो व्याकरण और पुराणोंके जानकार थे, सिद्धान्तके जानकार एकसे एक प्रमुख थे। उस राजाने ऐसे उन मुनियोंको यन्त्रमें डलवा दिया, रक्त और मांसके कसमसाते हुए वे उसमें पेर दिये गये। जब पाँच सौ मुनि पेर दिये गये तो दो मुनि वहाँ पहुँचे—घोर वीर तपश्चरणका आचरण कर तथा आतापिनी शिलापर तपरूपी सूर्य तपकर ॥१-९॥

[११] तब किसीने उनसे कहा, "तुम लोग यहाँ प्रवेश मत करो, दोनों अपने प्राण लेकर, शीघ्र भाग जाओ। तुम्हारा गुरु आपत्ति पा रहा है। राजाने यन्त्रमें डालकर उन्हें पीड़ित किया है।" यह सुनकर एक मुनिका मन क्रुद्ध हो उठा, मानो क्षयकालमें यम विरुद्ध हुआ हो। उसने घोर आर्तध्यान किया, अपना व्रत और सम्यक्त्व सब नष्ट कर दिया। उसने अपनेसे अपनेको विभक्त किया, और तत्क्षण उसने अग्निपुंजकी रचना की। उसने जो कोपाग्नि छोड़ी वह नगरके सम्मुख पहुँची। नगर चारों दिशाओंसे जल उठा, एवं धरती और राजकुलके साथ वह आगकी ज्वालाओंकी लपेटमें आ गया। हजारों घड़ोंसे जो-जो पानी डाला जाता, भाग्यके परिणामसे पानी भी जल उठता ॥१-७॥

[१२] जब अशेष नगर जलकर खाक हो गया तब दुष्ट यम-योद्धा वहाँ पहुँचे। तलवार, घन, शृंखला और निगड जिनके हाथमें थे, ऐसे वे त्रिलोकको भी जीतनेमें समर्थ थे। जो कठोर कपिल केशोंवाले भयंकर, काल और यमकी लीलाका प्रदर्शन करनेवाले, श्याम-शरीर वीर, फड़कते हुए ओठोंवाले, पीले

जीह-ललन्त दन्त-उब्भुरु । उक्खय-णियड-दाढ भय-भासुरु ॥५॥
जम-दूएहिँ तेहिँ कन्दन्तउ । णरवइ णिउ स-मन्ति स-कलत्तउ ॥६॥
गम्पिणु जमरायहों जाणाविउ । "पुण मुणिन्द-णिवहु पीलाविउ" ॥७॥
तं णिसुणेप्पिणु कुइउ पयावइ । "तीहि मि दरिसावहों गइयावइ" ॥८॥

घत्ता

पहु-आएसें दुण्णय-सामिणि घत्तिय छट्ठहिँ पुढविहिँ पाविणि ।
जहिँ दुक्खइँ अइ-घोर-रउद्दइँ णवरावसु बावीस-समुद्दइँ ॥९॥

[१३]

अण्णोण्णेण जेत्थु हक्कारिउ । अण्णोण्णेण खग्ग-णिवारिउ ॥१॥
अण्णोण्णेण दण्डेंहिं दडवडिउ । अण्णोण्णेण हणेंवि णिव्वडिउ ॥२॥
अण्णोण्णेण तिसूलें भिण्णउ । अण्णोण्णेण दिसा-बलि दिण्णउ ॥३॥
अण्णोण्णेण कडाहेँ घमेल्लिउ । अण्णोण्णेण हुआसणें पेल्लिउ ॥४॥
अण्णोण्णेण वइतरणिहेँ घत्तिउ । अण्णोण्णेण घरेंवि णिअन्तिउ ॥५॥
अण्णोण्णेण सिलहु अप्फालिउ । अण्णोण्णेण दुहाएँहिँ फालिउ ॥६॥
अण्णोण्णेण धरेंवि आवीलिउ । अण्णोण्णेण चत्थु जिह पीलिउ ॥७॥
अण्णोण्णेण घरट्टएँ दलियउ । अण्णोण्णेण चवदु जिह मिलियउ ॥८॥
अण्णोण्णेण वि कूवें पमुक्कउ । अण्णोण्णेण धरेप्पिणु चक्कउ ॥९॥

घत्ता

अण्णोण्णेण पलोइउ राएँ अण्णोण्णेण वियारिउ खग्गें ।
अण्णोण्णेण गिलिज्जइ जेत्थु दुण्णय-सामिणि पत्तिय तेत्थु ॥१०॥

[१४]

अण्णु वि कियउ जेण मन्तित्तणु । वलिउ असिपत्तवणें अलक्खणु ॥१॥

नेत्रोंवाले मूसर और मोंगर धारण किये हुए, जीभ लपलपाते हुए, निकले हुए दाँतोंवाले, उद्भट और विकट दाढ़ोंवाले, तथा भयसे भास्वर थे। उन यमदूतोंके द्वारा, चिल्लाता हुआ वह राजा, मन्त्री और स्त्रीके साथ ले जाया गया। जाकर उन्होंने यमराजको बताया, "इसने मुनिसमूहको पीड़ा दी है।" यह सुनकर प्रजापति कुपित हो उठा कि इन तीनोंको भारी आपत्ति दो। प्रभुके आदेशसे पापिनी दुर्नयस्वामिनी छठे नरकमें डाल दी गयी जहाँ कि अत्यन्त घोर और भयंकर दुःख थे और आयु केवल बाईस सागर प्रमाण थी ॥१–९॥

[१३] जहाँ एकके द्वारा दूसरा दुकारा जाता था, एकके द्वारा दूसरा प्रहारसे कुचला जाता था, एक दूसरेको चूर-चूर करनेके लिए चूर हो जाते, एक दूसरेको मारनेके लिए प्रवृत्ति की जाती। एक दूसरेके द्वारा त्रिशूलसे विदीर्ण किया जाता। एक दूसरेके द्वारा दिशाबलि दी जाती; एक दूसरेके द्वारा कड़ाह-में छोड़ा जाता; एक दूसरेके द्वारा आगमें ढकेला जाता, एक दूसरेके द्वारा वैतरिणीमें डाल दिया जाता। एक दूसरेके द्वारा पकड़कर ले जाया जाता। एक दूसरेके द्वारा चट्टानपर पटका जाता, एक दूसरेके द्वारा दो टुकड़े कर दिये जाते। एक दूसरेके द्वारा पकड़कर पीड़ित किया जाता। एक दूसरेके द्वारा वस्तुकी तरह पीड़ित किया जाता। एक दूसरेके द्वारा घट्टमें चूर-चूर कर दिया जाता। एक दूसरेके द्वारा कुँएमें फेंक दिया जाता। एक दूसरेके द्वारा मकरकी तरह एक दूसरेसे मिला दिया जाता। एक दूसरेके द्वारा पकड़कर रोक लिया जाता। एक दूसरेके द्वारा रागसे देखा जाता, एक दूसरेके द्वारा तलवारसे विदीर्ण किया जाता। एक दूसरेके द्वारा जहाँ एक दूसरेको निगल लिया जाता। विश्वास करो, दुर्नय-स्वामिनी वहाँ है ॥१–१०॥

[१४] और भी जिसने मन्त्रित्व किया था उस लक्षणहीनको

जहिँ तं विणु मि सिलीमुह-सरिसउ । अण्णु वि अग्गि-वण्णु णिप्फरिसउ ॥२॥
जहिँ तेल्लोह-रुक्ख कण्टाला । असि-पत्तउ भमराउल विसाला ॥३॥
दुग्गम दुण्णिरिक्ख दुल्ललिया । णाणाविह-पहरण-फल-भरिया ॥४॥
जहिँ णिवडन्ति ताहँ फल-पत्तइँ । तहिँ छिन्दन्ति णिरन्तर गत्तइँ ॥५॥
तं तेहउ वणु मुएँवि पणट्ठउ । पुणु वइतरणिहिँ गम्पि पइट्ठउ ॥६॥
जहिँ तं सलिलु वहइ दुग्गन्धउ । रस-वस-सोणिय मंस-समिद्धउ ॥७॥
उण्हउ खारु तोरु अइ विरसउ । मण्ड पियाविउ पूय-विमिस्सउ ॥८॥

घत्ता

इय संताव-दुक्ख-संतत्तउ खणेँ खणेँ उप्पज्जन्तु मरन्तउ ।
थिउ सत्तमएँ णरएँ अमरद्धउ मेइणि जाम मेरु गयणङ्गणु ॥९॥

[१५]

ताव विरुद्धएहिँ हक्कारिउ । णरवइ णारएहिँ पच्चारिउ ॥१॥
"मरु मरु संभरु दुच्चरियाइँ । जाइँ आसि पइँ संचरियाइँ ॥२॥
पञ्चसयइँ मुणिवरहुँ हयाइँ । लइ अणुहुञ्जहि ताइँ दुहाइँ" ॥३॥
एम भणेप्पिणु खग्गेँहिँ छिण्णउ । पुणु वाणेँहिँ भल्लेहिँ भिण्णउ ॥४॥
पुणु तिलु तिलु करवत्तेँहिँ कप्पिउ । पुणु गिद्धहुँ सिव-साणहुँ अप्पिउ ॥५॥
पुणु पेल्लाविउ मयग-गइन्देँहिँ । पुणु वेढाविउ पण्णय-विन्देँहिँ ॥६॥
पुणु खण्डिउ पुणु जन्तेँ छुहाविउ । मद्धु सहासु खारु पीआविउ ॥७॥
दुक्खु दुक्खु पुणु कह वि किलेसेँहिँ । परिभमन्तु भव-जोणि-सहासेँहिँ ॥८॥
एत्थु विहङ्गु जाउ णिय-काणणेँ । एवहिँ अच्छइ तुम्ह-चरणेँ' ॥९॥

घत्ता

ताव पक्खि मणेँ पच्छुत्ताविउ 'किह मइँ सवण-सङ्घु संताविउ ।
एत्तिय-मत्तेँ अब्भुद्धरणउ मज्झु मुणिहुँ वि जिणवरु सरणउ' ॥१०॥

उस असिपत्र वनमें डाल दिया गया जहाँ कि तृण भी बाणके समान था और अग्निके समान पत्ते भी, अत्यन्त कठोर। जहाँ-पर काँटेवाले लौह वृक्ष हैं। तलवारकी तरह पत्तेवाले, प्रचुर और विशाल। दुर्गम, दुर्दर्शनीय, दुर्लंलित नाना प्रकारके अस्त्रों-के फलोंसे भरे हुए। वे फल और पत्ते जहाँ भी गिरते हैं, वहाँ लगातार एक दूसरेके शरीर छेद डालते हैं। उस वैसे असिपत्र वनको देखकर वह भागा, और जाकर वैतरिणी नदीमें घुस गया। जहाँ कि अत्यन्त दुर्गंधित जल बहता है—रस, वसा, रक्त और मांससे समृद्ध। केश, [illegible], और अत्यन्त [illegible] जल है। पीपसे मिश्रित जिसे जबर्दस्ती पिलाया जाता है। इस प्रकार सन्ताप और दुःखसे सन्तप्त जहाँ क्षण-क्षणमें उत्पन्न होता हुआ और मरता हुआ वह मयवर्धन सातवें नरकमें तबतक स्थित रहेगा कि जबतक आकाश प्रांगण और सुमेरु पर्वत रहेगा ॥१-९॥

[१५] तब नारकियोंने विरुद्ध होकर राजाको ललकारा, "मर-मर, अपने उन दुश्चरितोंकी याद कर, कि जिनका तूने आचरण किया था। तुमने पाँच सौ मुनियोंको मारा। लो अब उन दुःखोंको भोगो।" यह कहकर उन्होंने तलवारसे टुकड़े-टुकड़े कर दिये; फिर तीरों और भालोंसे भिन्न-भिन्न कर दिया। फिर तिल-तिल करपत्रोंसे काटा। फिर गीधों, शृगाल, कुत्तोंको दे दिया। फिर मत्त गजेन्द्रोंके नीचे दबाया गया। फिर नाग-समूहोंसे घिरवाया गया। फिर खण्डित कर दिया और यन्त्रमें डाल दिया। इस प्रकार पाँच सौ बार उसे पीड़ा पहुँचायी। फिर दुःखपूर्वक किसी प्रकार अनेक कष्टोंके साथ हजारों योनियोंमें परिभ्रमण करता हुआ, वह इस नृपकाननमें पक्षी हुआ है, और इस समय तुम्हारे आँगनमें स्थित है। तब वह पक्षी अपने मनमें पश्चात्ताप करता है कि मैंने श्रमण संघको सन्ताप क्यों

[१६]

जं आयण्णिउ पक्खि-भवन्तरु । जाणइ-कन्तें पभणिउ मुणिवरु ॥१॥
'तो वरि अम्हहुँ घरइँ चडावहु । पक्खिहेँ सुहय-पन्थु दरिसावहु' ॥२॥
तं वयणहों धम्मु दुगेण्हेप्पिणु । [illegible] ॥३॥
दिण्ण पडिच्छिय तिहि मि जणेहिँ । पुणु अहिणन्दिय एक्क-मणेहिँ ॥४॥
मुणिवर गय आवासहों जावेंहिँ । लक्खणु भवणु पराइउ तावेंहिँ ॥५॥
'राहव एउ काइँ अच्छरियउ । जं मन्दिरु णिय-रयणहिँ भरियउ' ॥६॥
तेण वि कहिउ सव्वु जं वित्तउ । 'मइँ आहार-दाण-फलु पत्तउ' ॥७॥
लक्खणें पञ्चच्छरिउ पदरिसिउ । मेहेंहिँ जिह अणवरउ पवरिसिउ ॥८॥

घत्ता

रामहों वयणु सुणेवि अणन्तें लेप्पिणु मणि-रयणइँ चलवन्तें ।
वड-पारोह-कमेहिँ पचण्डेंहिँ रहवरु घडिउ सयंभुव-दण्डेंहिँ ॥९॥

●

छत्तीसमो संधि

रहु कोड्डावणउ मणि-रयण-सहासेंहिँ घडियउ ।
गयणहों उच्छलेंवि णं दिणयर-सम्मुहु पडियउ ॥

[१]

तहिँ तेहएँ सुन्दरेँ सुप्पवहेँ । आरण्ण-महागय-जूह-रहेँ ॥१॥
धुरेँ लक्खणु रहवरेँ दासरहि । सुर-लीलएँ पुणु विहरन्ति महि ॥२॥
तं कण्हवण्ण-णइ मुएँवि गय । वणेँ कहि मि णिहालिय मत्त गय ॥३॥
कत्थ वि पञ्चाणण गिरि-गुहेँहिँ । मुत्तावलि विक्खिरन्ति णहेँहिँ ॥४॥

पहुँचाया। उतने मात्र से मेरा उद्धार हो गया। मरनेके बाद भी मुझे जिनवरकी शरण है ॥१-१०॥

[१६] जब रामने पक्षीके भवान्तर सुने तो उन्होंने मुनिवर से कहा—"तो अच्छा है हमें भी व्रत दीजिए और पक्षीके लिए भी सुभग पथको दिखायें।" रामके उन शब्दोंको सुनकर, पाँच अणुव्रतोंका उच्चारण कर, मुनि व्रत दिये। उन तीनोंने भी उन्हें स्वीकार कर लिया। एक मनसे उन्होंने पुनः मुनिका अभिनन्दन किया। जबतक मुनि आकाश मार्गसे चले गये, तबतक लक्ष्मण घर आ पहुँचा। उसने कहा, "राम, यह क्या आश्चर्य है कि जो अपना घर रत्नोंसे भर गया है।" उन्होंने भी जैसा वृत्तान्त था, सब बता दिया कि मैंने आहारदानका फल प्राप्त किया है। तत्क्षण उन्होंने पाँच आश्चर्य प्रदर्शित किये कि जिस प्रकार मेघोंने अनवरत वर्षा की थी। रामके वचन सुनकर लक्ष्मण लक्ष्मणने मणिरत्नोंको इकट्ठा कर लिया, वटवृक्ष प्ररोह और जड़ोंके समान दृढ़ प्रचण्ड अपने भुजदण्डोंसे उन्होंने रथवरकी रचना की ॥१-९॥

●

छत्तीसवीं सन्धि

हजारों मणिरत्नोंसे रचित तथा कुतूहल उत्पन्न करनेवाला वह रथ ऐसा मालूम होता था मानो आकाशसे उछलकर दिन-कररूपी रथ गिर पड़ा हो।

[१] जंगली हाथियोंसे जुते हुए उस सुन्दर कान्तिवाले रथवरकी धुरापर लक्ष्मण और भीतर राम (बैठकर) फिर देवलीलाके साथ धरतीपर भ्रमण करने लगते हैं। उस कृष्णवर्णा-

कत्थ वि उब्भाविय सउण-सय । णं अडविहें उड्डेंवि पाण गय ॥५॥
कत्थ वि कलाव णच्चन्ति वणें । णावइ णट्टावा जुवइ-जणें ॥६॥
कत्थ इ हरिणइँ भय-भीयाइँ । संसारहों जिह पव्वइयाइँ ॥७॥
कत्थ वि णाणाविह-रुक्ख-राइ । णं महि-कुलवहुअहें रोम-राइ ॥८॥

घत्ता

तहों दण्डयरण्णहों मज्झएँ दिट्ठ जलवाहिणि ।
णामें कोञ्चणइ थिर-गमण णाइँ वर-कामिणि ॥९॥

[२]

कोञ्चणइहें तीरेंण संठियइँ । लय-मण्डवें गम्पि परिट्ठियइँ ॥१॥
दुहु जें थुडु जें सरयहों आगमणें । सच्छाय महादुम जाय वणें ॥२॥
णव-णलिणिहिँ कमलइँ विहसियइँ । णं कामिणि-वयणइँ पहसियइँ ॥३॥
चवलेंण णिरन्तर-णिग्गएँण । घण-कलसें हिं गयण-महग्गएँण ॥४॥
अहिसिञ्चेंवि लक्खणें वसुह-सिरि । णं थविय अणाहिणि कुम्भइरि ॥५॥
तहिँ तेहएँ सरएँ सुहावणएँ । परिभमइ जणद्दणु काणणएँ ॥६॥
कोवण्ड-सिलीमुह-गहिय-करु । गज्जन्त-मत्त-मायङ्ग-धरु ॥७॥
वणें ताम सुअन्धु वाउ अइउ । जो पारियाय-कुसुमब्भहिउ ॥८॥

घत्ता

कड्ढिउ भमरु जिह तें वाएँ सुद्धु सुअन्धें ।
धाइउ महुमहणु जिह गउ गणियारिहें गन्धें ॥९॥

[३]

थोवन्तरें परिओसिय-मणेंण । वंसत्थलु लक्खिउ लक्खणेंण ॥१॥
णं सयण-चिन्धु आवासियउ । णं भरडल्लु वाहेँ तासियउ ॥२॥
अण्णोण्ण-पासें कोड्डावणउ । जम-जीह जेम भीसावणउ ॥३॥
णयणङ्कणें खग्गु णिहालियउ । णाणाविह-कुसुमोमालियउ ॥४॥
लक्खणहों णाइँ अब्भुद्धरणु । णं सम्बुकुमारहों जमकरणु ॥५॥
तं सूरहासु णामेण असि । जसु तेएँ णिय पह मुअइ ससि ॥६॥

की नदी (कृष्णानदी) को छोड़कर दे चले। वनमें कहींपर उन्होंने मत्त गज देखे। कहींपर सैकड़ों पक्षी उड़े मानो उस अटवीके प्राण ही उड़कर जा रहे हों। वनमें कहीं मयूर नृत्य कर रहे थे।....कहींपर हरिण इस प्रकार भयभीत थे, जैसे संसारसे भयभीत संन्यासी हों। कहींपर नाना प्रकारकी वृक्षराजी मानो धरतीरूपी कुलवधूकी रोमराजी हो। उस दण्डक वनके आगे क्रौन्च नामकी नदी दिखाई दी जैसे स्थिर गमनवाली उत्तम कामिनी हो ॥१-९॥

[२] क्रौंच नदीके किनारे-किनारे होते हुए वे एक लतामण्डप-में जाकर बैठ गये। शीघ्र शरद् ऋतुके आनेपर वनमें महाद्रुम सुन्दर कान्तिवाले हो गये। नवनलिनियोंके कमल इस प्रकार विकसित थे मानो स्त्रियोंके हँसते हुए मुख हों। निरन्तर निक-लते हुए धवल आकाशरूपी महागजने अपने मेघरूपी कलशोंसे उसी क्षण अभिषेक कर....उस सुहावनी शरद् ऋतुमें जो अपने हाथमें धनुष और तीर लिये हुए हैं तथा जो गरजते हुए हाथियोंको पकड़ लेता है ऐसा लक्ष्मण वनमें भ्रमण करने लगा। इतनेमें सुगन्धित वायु आयी जो पारिजात पुष्पोंसे उत्पन्न थी। उस सुगन्धित वायुसे भ्रमरकी तरह आकर्षित होकर, लक्ष्मण उसी प्रकार दौड़े जिस प्रकार हथिनीकी गन्धसे हाथी दौड़ता है ॥१-९॥

[३] थोड़ी ही दूरपर सन्तुष्ट मन लक्ष्मणने वंशस्थलको इस प्रकार देखा मानो सज्जनसमूह ठहरा हुआ हो, मानो व्याधसे त्रस्त पशुसमूह हो। एक वंशस्थल (बाँसोंका झुरमुट)के पास आकाशमें उसने यमकी जीभकी तरह भयंकर, कुतूहल उत्पन्न करनेवाला, नाना प्रकारके फूलोंसे अंचित खड्ग देखा। जो मानो लक्ष्मणका उद्धार करनेवाला, मानो शम्बुकुमारके लिए यमकरण था। वह सूर्यहास नामकी तलवार थी जिसके

जसु धारहेँ काल-दिट्ठि वसइ । जसु कालु कियन्तु वि जमु तसइ ॥७॥
तें हत्थु पसारेंवि लइउ किह । रयणायरें दिवसयरु पडन्तु जिह ॥८॥

घत्ता

पुणु कीलन्तएँण असिवत्तें हउ वंसत्थलु ।
ताव समुच्छलेंवि सिरु पडिउ स-मउडु स-कुण्डलु ॥९॥

[४]

जं दिट्ठु विवाइउ सिर-कमलु । सिरिवच्छें विहुणिउ भुय-जुअलु ॥१॥
'धिम्महँ णिक्कारणु वहिउ णरु । वत्तीस वि लक्खण-लक्ख-धरु' ॥२॥
पुणु जाम णिहालइ वंस-वणु । णर-रुण्डु दिट्ठु फन्दन्त-तणु ॥३॥
तं पेक्खेंवि चिन्तइ खग्गधरु । 'थिउ माया-रूवें को वि णरु' ॥४॥
गउ एम भणेप्पिणु महुमहणु । णिविसेण पराइउ णियय-भवणु ॥५॥
राहवेंण वुत्तु 'भो सुहड-ससि । कहिँ लद्धु खग्गु कहिँ गयउ असि ॥६॥
तेण वि सं सयलु वि अक्खियउ । वंसत्थलु जिह वणेँ लक्खियउ ॥७॥
जिह लद्धु खग्गु तं अतुल-बलु । जिह खुडिउ कुमारहोँ सिर-कमलु ॥८॥

घत्ता

सुणेंवि राहवेंण 'मं पुच्छिय सुहिवएँ साहिय ।
असि सावण्णु णवि पइँ जमहोँ जीह उप्पाडिय' ॥९॥

[५]

जं पहिय भीसण वत्त सुय । वेवन्ति पजम्पिय जणय-सुय ॥१॥
'लय-मण्डवें विउलें णिविट्ठाहुँ । सुहु णाहि वणें वि पइट्ठाहुँ ॥२॥
परिभमइ जणद्दणु जहिँ जें जहिँ । दिसें दिसें कडमद्दणु तहिँ जें तहिँ ॥३॥
कर-चलण-देह-सिर-खण्डणहुँ । णिविसण्ण माएँ हउँ भण्डणहुँ ॥४॥
हउँ ताएँ दिण्णी केहाहुँ । कलि-काल-कियन्तहुँ जेहाहुँ' ॥५॥

तेजसे चन्द्रमा अपनी प्रभा छोड़ देता था, जिसकी धारमें कालदृष्टि बसती थी, जिससे काल कृतान्त और यम भी त्रस्त था। उस तलवारको लक्ष्मणने अपना हाथ फैलाकर उसी प्रकार ले लिया, जिस प्रकार दूसरे पुरुषके पास जानेवाली स्त्रीको पकड़ लिया जाता है। फिर उसने खेल करते हुए तलवारसे जब वंशस्थलको आहत किया तो उससे मुकुट और कुण्डलों सहित सिर उछलकर गिर पड़ा ॥१-९॥

[४] जब लक्ष्मणने गिरे हुए सिररूपी कमलको देखा तो उसने अपने दोनों हाथ पीटे (और सोचा) कि मुझे धिक्कार है कि मैंने अकारण ही बत्तीस लक्षण धारण करनेवाले इस मनुष्यका वध कर दिया। फिर जैसे ही वह वंशस्थल देखता है, वैसे ही उसने फड़कते हुए शरीरवाले मनुष्य-धड़को देखा। उसे देखकर खड्गधारी लक्ष्मण विचार करता है कि 'मायारूपमें यह कोई आदमी था।' यह सोचकर लक्ष्मण चला गया और एक पलमें वह अपने घर पहुँचा। रामने पूछा—"हे सुभट चन्द्र! तुम कहाँ गये थे, और यह तलवार तुमने कहाँ प्राप्त की।" लक्ष्मणने भी यह सारा वृत्तान्त कह सुनाया कि जिस प्रकार उसने वंशस्थल देखा था, जिस प्रकार वह अतुलबल खड्ग प्राप्त किया था और जिस प्रकार कुमारका सिररूपी कमल काटा था। रामने कहा—"व्यर्थ इसको तुमने नष्ट किया। यह सामान्य आदमी नहीं है, तुमने यमकी जीभ उखाड़ ली है" ॥१-९॥

[५] जब जनकपुत्रीने यह बात सुनी तो वह काँपती हुई बोली—"विशाल लतामण्डपमें बैठे हुए और वनमें प्रवेश करनेके बाद भी सुख नहीं है। लक्ष्मण जहाँ-जहाँ भी भ्रमण करते हैं वहाँ कुछ न कुछ विनाश करते रहते हैं। जिनमें हाथ-पैर, शरीर और सिरका खण्डन है ऐसे युद्धोंसे हे माँ विरक्त हो उठी हूँ। मुझे पिताने ऐसे लोगोंको सौंप दिया कि जो काल

तं वयणु सुणेप्पिणु भणइ हरि । 'जइ रज्जु ण पोरिसु होइ धरि ॥६॥
जिम दाणें जेम सुकइत्तणेंण । जिम आढत्तेण जिम कित्तणेंण ॥७॥
परिभमइ कित्ति सव्वहों णरहों । थवक्कन्ति भुवणु जिह जिणवरहों ॥८॥

घत्ता

आयहुँ एत्तियहुँ जासु एक्कु वि चित्तें ण भावइ ।
सो जाउ कि मुउ परिट्ठिउ [illegible]' ॥९॥

[६]

एत्थन्तरें सुर-संतावणहों । कहु बहिणि सहोयर रावणहों ॥१॥
पायालङ्क-लङ्केसरहों । धण पाण-पियारी तहों खरहों ॥२॥
चन्दणहि णाम रहसुच्छलिय । णिय-पुत्तहो पासु समुच्चलिय ॥३॥
'लइ बारह-वरिसइँ भरियाइँ । चउ-दिवसेंहिं पुणु सोत्तरियाइँ ॥४॥
कण्णहिँ तहिँ दिवसहिँ करें चडइ । तं खग्गु अज्जु णहें णिव्वडइ' ॥५॥
सो एव चवन्ती महुर-सर । बलि-दीवक्खय-गहिय-कर ॥६॥
सज्जण-मण-णयणाणन्दणहों । गय पासु पत्त णिय-णन्दणहों ॥७॥
ताणन्तरें असि-दलवट्टियउ । वंसत्थलु दिट्ठु णिवट्टियउ ॥८॥

घत्ता

दिट्ठु कुमार-सिरु स-मउडु मणि-कुण्डल-मण्डिउ ।
जन्तेंहिं किण्णरेंहिं वर-कणय-कमलु णं खण्डिउ ॥९॥

[७]

सिर-कमलु णिएप्पिणु गीढ-भय । रोवन्ती महियलें मुच्छ-गय ॥१॥
कन्दन्ति रुवन्ति स-वेयणिय । णिज्झाय जाय णिच्चेयणिय ॥२॥
पुणु दुक्खु दुक्खु संथरिय-मण । मुह-कायर दर-मउलिय-णयण ॥३॥
णं मुच्छए किउ सहियत्तणउ । जं रक्खिउ जीउ गवणमणउ ॥४॥
पुणु उट्ठेवि विहुणइ भुअजुअलु । पुणु सिरु पुणु पहणइ वच्छयलु ॥५॥
पुणु कोक्कइ पुणु धाहहिँ रुवइ । पुणु दोसउ णिहालइ पुणु पडइ ॥६॥

और यमकी तरह हैं।" यह शब्द सुनकर लक्ष्मण कहते हैं—"यदि राजा होकर भी पौरुष नहीं है, जिस प्रकार ज्ञानसे, जिस प्रकार सुकवित्वसे, जिस प्रकार शस्त्रसे, जिस प्रकार कीर्तनसे सब मनुष्योंकी कीर्ति परिभ्रमण करती है और जिस प्रकार जिनवरसे भुवन धवल होते हैं। इन इतनोंमें-से जिसके मनमें एक भी बात अच्छी नहीं लगती, वह जन्मा हुआ भी मृत है, व्यर्थ ही यम उसे ले जाता है ॥१-९॥

[६] इसी बीच देवोंके लिए सन्तापदायक रावणकी सगी छोटी बहन, पाताललंकाके लंकेश्वर उस खरदूषणकी प्राण-प्यारी पत्नी चन्द्रनखा हर्षसे उछलती हुई, अपने पुत्र (शम्बु-कुमार) के पास चली (यह सोचती हुई कि) "लो, चार दिन ऊपर बारह वर्ष हो गये हैं, दूसरे दिन वह तलवार हाथमें आ जायेगी, वह तलवार आज हाथसे गिर जायेगी।" मधुर स्वर-वाली वह इस प्रकार कहती हुई नैवेद्य, दीप, अग्नि हाथमें लेकर सज्जनोंके मनको आनन्द देनेवाली गयी और अपने पुत्रके पास पहुँची। उस बीचमें उसने तलवारसे छिन्न-भिन्न पड़ा हुआ वंशस्थल देखा। उसने कुमारका मुकुट और कुण्डलोंसे शोभित सिर देखा मानो जाते हुए किन्नरोंके द्वारा छोड़ा गया श्रेष्ठ स्वर्णकमल हो ॥१-९॥

[७] सिरकमलको देखकर भयभीत रोती हुई वह मूर्च्छित हो गयी। वेदनासे व्याकुल आक्रन्दन करती और रोती हुई वह निर्जीव और निश्चेतन हो गयी। फिर बड़ी कठिनाईसे उसने अपने मनको रोका। उसका मुख कातर था, और आँखें भयसे बन्द थीं। मानो मूर्च्छाने उसकी बहुत बड़ी सहायता की कि जो उसने जानेकी इच्छा रखनेवाले जीवकी रक्षा की। वह उठकर फिर अपने हाथ पीटने लगती है। फिर सिर पीटती है और वक्षःस्थल पीटती है। फिर पुकारती है, फिर धाड़ मारकर

पुणु उट्ठइ पुणु कन्दइ कणइ । पुणु हत्थेंहिँ अप्पउ आहणइ ॥७॥
पुणु सिरु अप्फालइ धरणिवट्टेँ । रोवन्तिहेँ सुर रोवन्ति णहेँ ॥८॥

घत्ता

जे चउद्दिसेंहिँ थिय णिय डाल पसारेंवि तरुवर ।
'मा रुव चन्दणहि' णं साहारन्ति सहोयर ॥९॥

[८]

अप्पाणउ सो वि ण संथवइ । रोवन्ति पुणु वि पुणु उट्ठवइ ॥१॥
'हा पुत्त विवज्जहि लुहहि मुहु । हा णिरुअएँ णिद्दएँ सुत्तु तुहुँ ॥२॥
हा किण्णालावहि पुत्त मइँ । हा किं दरिसाविय माय पइँ ॥३॥
हा उवसंहारहि रूवु लहु । हा पुत्त देहि पिय-वयणु महु ॥४॥
हा पुत्त काइँ किउ रुहिर-वहु । हा पुत्त एहि उच्छङ्गेँ महु ॥५॥
हा पुत्त लाइ मुहेँ मुह-कमलु । हा पुत्त एहि पिउ थण-जुअलु ॥६॥
हा पुत्त देहि आलिङ्गणउ । जें पावमि मणें पल्हावणउ ॥७॥
णव-मासु धरिउ जं मइँ उअरें । तं सहलु मणोरहु अज्जु जणें ॥८॥

घत्ता

हा हा दइव विहि काइँ णिवडु पुत्तु कहोँ सक्कमि ।
काइँ किवन्त किउ हा दइव कवण दिस लक्कमि ॥९॥

[९]

हा अज्जु अमङ्गलु विहिँ पुरहुँ । पायाललङ्क-लङ्काउरहुँ ॥१॥
हा अज्जु भुवणु वरभव-जणहोँ । हा अज्जु पडिय सुअ रावणहोँ ॥२॥
हा अज्जु खरहोँ रोवावणउ । हा अज्जु रिउहुँ वद्धावणउ ॥३॥
हा अज्जु फुट्टु किं ण जमहोँ सिरु । हा पुत्त णिवारिउ मइँ मि चिरु ॥४॥
तं खग्गु ण सावण्णहोँ णरहोँ । पर होइ अद्ध-चक्केसरहोँ ॥५॥
किं तेण जि पाडिउ सिर-कमलु । मणि-कुण्डल-मण्डिय-गण्डयलु' ॥६॥

रोती है। फिर दिशाएँ देखती है और फिर गिर पड़ती है। फिर उठती है, फिर क्रन्दन करती है, बोलती है, फिर बहुत प्रकारोंसे अपनेको आहत करती है। फिर धरती पथपर अपने सिरको पीटती है। उसके रोनेपर आकाशमें देव रो पड़ते हैं। जो वृक्ष चारों दिशाओंमें अपनी शाखाएँ फैलाये हुए खड़े थे, वे मानो "हे चन्द्रनखा तुम रोओ मत" (यह कहकर) सहोदरोंकी तरह सहारा दे रहे थे ॥१-९॥

[८] फिर भी वह स्वयंको सहारा नहीं दे पा रही थी। वह रोती और बार-बार खड़ी होती—"हे पुत्र होशमें आओ, मुँह पोंछो, हा, यह तुम भयंकर नींदमें सो गये। हे पुत्र, तुम मुझसे क्यों नहीं बोलते? हा तुमने माताको यह क्या दिखाया? हा, तुम शीघ्र अपना रूप समाप्त करो। हे पुत्र, शीघ्र मुझसे प्रिय वचन कहो, हे पुत्र, तुमने अपने वस्त्र रक्तरंजित क्यों कर लिये? हे पुत्र, आओ और मेरी गोदमें चढ़ो, हे पुत्र, मेरे मुँहपर अपना मुखकमल लाओ। हे पुत्र आ, और मेरा स्तन युगल पी। हे पुत्र, आलिंगन दो कि जिससे मैं वनमें बधाई नाच सकूँ। जिसे मैंने अपने पेटमें नौ माह रखा, लो उस मेरे मनोरथको आज सफल करो। हे दग्ध विधाता मेरा पुत्र कहाँ, किसके पास खोजूँ? कृतान्त तुमने यह क्या किया? हा दैव किस दिशाका मैं उल्लंघन करूँ ॥१-९॥

[९] आज दोनों नगरों—पाताललंका और लंकापुरका अमंगल हो गया। हा, आज बान्धवजनोंका दुःख हो गया। हा, आज रावणकी भुजा टूट गयी। हा, आज खरके लिए रोना आ गया, हा, आज शत्रुके लिए बधाई आ गयी। हा, आज यमका सिर क्यों नहीं फूट गया? हे पुत्र, मैंने पहले ही मना किया था कि वह खड्ग किसी मामूली आदमीका नहीं है वह केवल अर्धचक्रवर्तीका है। क्या उसीने तुम्हारा मणिकुण्डलोंसे मण्डित

पुणु पुणु दरिसावइ सुरयणहों । रवि-हुअवह-वरुण-पहञ्जणहों ॥७॥
अहों देवहों वालु ण रक्खियउ । सव्वेंहिं मिलेवि उवेक्खियउ ॥८॥

घत्ता

तुम्हहँ दोसु ण वि महु दोसु जाहँ मणु गाविउ ।
मच्छुडु [illegible] सहुँ णन्दणु सो वि [illegible]' ॥९॥

[१०]

एत्थन्तरें सोएं परियरिय । णाइ जिह निह पुणु मच्छर-भरिय ॥१॥
णिड्डुरिय-णयण विप्फुरिय-मुह । विकराल णाइँ खय-काल-छुह ॥२॥
परियञ्छिय रवि-मण्डलें मिलिय । जम-जीह जेम णाइँ किलिगिलिय ॥३॥
'जें घाइउ पुत्तु महु-तणउ । खर-णन्दणु रावण-भायणउ ॥४॥
तहों जीविउ जइ ण अज्जु हरमि । तो हुयवह-पुञ्जें पईसरमि' ॥५॥
इय पइज करेप्पिणु चन्दणहि । फिर वलें वि पलोयइ जाम महि ॥६॥
लय-मण्डवें लक्खिय वे वि णर । णं धरणिहें उब्भिय उभय कर ॥७॥
तहिं एक्कु दिट्ठु करवाल-भुउ । 'जइ एण जि हउ महु तणउ सुउ ॥८॥

घत्ता

एण जि असिवरेंण णियमत्थहों कुल-पायारहों ।
सहुं वंसत्थलेंण सिरु पाडिउ सम्बुकुमारहों ॥९॥

[११]

जं दिट्ठ वणन्तरें बे वि णर । गउ पुत्त-विओउ कीउ णवर ॥१॥
आयामिय विरह-महाभडेंण । णच्चाविय मयरद्धय-णडेंण ॥२॥
पुलइज्जइ पासेइज्जइ वि । परितप्पइ जर-खेइज्जइ वि ॥३॥
मुच्छिज्जइ उम्मुच्छिज्जइ वि । रुणुरुणइ वियारहिं भज्जइ वि ॥४॥
'वरि एउ रूउ उवसंघरमि । सुर-सुन्दरि कण्ण-वेसु करमि ॥५॥
पुणु जामि एत्थु उब्भर-भवणु । परिणेसइ अवसें एक्कु जणु' ॥६॥

गण्डस्थलवाला सिरकमल गिरा दिया। बार-बार वह देवजनोंको उसे दिखाती है। हे सूर्य, अग्नि, वरुण और पवन! देवताओ! आप लोगोंने मेरे बच्चेको नहीं बचाया? सबने मिलकर उसकी उपेक्षा की? इसमें तुम्हारा दोष नहीं है देवताओ, मेरा ही दोष है जिसने शायद दूसरे जन्ममें किसी दूसरेको सताया होगा ॥१–९॥

[१०] इसके बाद शोकसे घिरी हुई, जिस प्रकार नर्तकी, उसी प्रकार मत्सरसे भरी हुई, डरावने नेत्रोंवाली, विस्फुरित मुख, प्रलयकालकी आगके समान विकराल वह बढ़ती हुई आकाशमण्डलसे जा मिली। यमकी जीभकी तरह आकाशमें किलकारियाँ भरती हुई। जिसने मेरे पुत्र खरके नन्दन और रावणके भानजेको मारा है, यदि मैं आज उसके जीवनका अपहरण नहीं करती तो मैं अग्निसमूहमें प्रवेश कर लूँगी, यह प्रतिज्ञा कर, चन्द्रनखा जैसे ही पीछे मुड़कर धरती देखती है वैसे ही उसने लतामण्डपमें दो मनुष्य देखे जो मानो धरतीके दो हाथ ऊपर उठे हुए थे। वहाँ एकके हाथमें करवाल दिखाई दी। तो इसी ने मेरे पुत्रकी हत्या की है। इस तलवारके द्वारा वंशस्थलके साथ ही, नियममें स्थित कुलकी दीवार शम्बुकुमार-का सिर तोड़ा है ॥१–९॥

[११] जब उसने वनके भीतर दो आदमियोंको देखा तो उसका पुत्रशोक चला गया। विरहरूपी महाभटने उसपर चढ़ाई कर दी। कामरूपी नटने उसे नचाना शुरू कर दिया। वह रोमांचित हो उठती है। पसीना-पसीना हो जाती है। सन्तप्त हो उठती है और ज्वरसे पीड़ित हो उठती है। वह मूर्च्छित होती है, उन्मूर्च्छित होती है। रुन-रुन शब्द करती है, विकारोंसे भग्न होती है। अच्छा है, मैं अपना यह रूप छिपा लूँ। देवोंके लिए सुन्दर कन्यारूप बनाती हूँ और फिर इस लता-

छियइच्छिय लक्खणें छउ किउ । णं कामहों कोड्डु (?) जें तिं विहिउ ॥७॥
गय तहिँ जहिँ तिण्णि वि जणहँ वणेँ । पुणु धाहहिँ रुअणहिँ लग्ग खणेँ ॥८॥

घत्ता

पभणइ जणय-सुय 'बल पेक्खु कण्ण किह रोवइ ।
जं कालन्तरिउ तं दुक्खु णाइँ उक्कोवइ' ॥९॥

[१२]

रोवन्ती सद्दें मलहरेंण । हक्कारेंवि पुच्छिय हलहरेंण ॥१॥
'कहि सुन्दरि रोवहि काइँ तुहुँ । किं पडिउ किं पि पिय-सयण-दुहु ॥२॥
किं केण वि कहिँ वि परिब्भविय' । तं वयणु सुणेवि बाल चविय ॥३॥
हउँ पाविणि दीण दयावणिय । णिव्वन्धव रुवमि वराय णिय ॥४॥
वणेँ भुल्ली णउ जाणमि दिसउ । णउ जाणमि कवणु देसु विसउ ॥५॥
कहिँ गच्छमि चक्कहुँ पडिय । महु पुण्णेहिँ तुम्ह समावडिय ॥६॥
जइ अम्हहुँ उप्परि अत्थि मणु । तो परिणउ विण्ह वि एक्कु जणु ॥७॥
तं वयणु सुणेवि हलाउहेंण । किय णक्खच्छोडी राहवेंण ॥८॥

घत्ता

करयलु दिण्णु मुहेँ किय वङ्क भउँह सिरु चालिउ ।
'सुन्दर ण होइ मइ' सोमित्तिहेँ वयणु णिहालिउ ॥९॥

[१३]

जो णरवइ अइ-सम्माण-करु । सो पत्तिय अत्थ-समत्थ-हरु ॥१॥
जो होइ उवायणेँ वच्छलउ । सो पत्तिय विसहरु कोमलउ ॥२॥
जो मित्तु अकारणेँ एइ घरु । सो पत्तिय दुट्ठु कलत्त-हरु ॥३॥
जो पन्थिउ अलिय-सणेहियउ । सो पत्तिय चोरु अणेहियउ ॥४॥
जो णरु अत्थक्कएँ कलि-करु । सो सत्तु णिरुत्तउ जीव-हरु ॥५॥
जा कामिणि कवड-चाडु कुणइ । सा पत्तिय सिर-कमलु वि लुणइ ॥६॥

भवनमें जाती हूँ। अवश्य ही एक आदमी विवाह कर लेगा। उसने तत्क्षण मनपसन्द रूप बना लिया। उसने जो रूप किया वह कामदेवको भी कुतूहल उत्पन्न करनेवाला था। वह वहाँ गयी जहाँ तीनों लोग थे। फिर वह क्षण-भरमें दहाड़ मारकर रोने लगी। जनकसुता सीता बोली, "राम, देखो कन्या क्यों रोती है? जो समयसे छिपा हुआ था, वह दुःख मानो इसे उद्वेलित कर रहा है" ॥१–९॥

[१२] पापका हरण करनेवाले बड़े भाई रामने रोती हुई, उससे पूछा, "हे सुन्दरी, तुम क्यों रोती हो, क्या तुम्हारे ऊपर कोई स्वजनका दुःख आ पड़ा है? या कि क्या कहीं किसीने तुम्हारा पराभव किया है?" यह वचन सुनकर बाला बोली, "हे राजन्, पापिनी दीन दया करने योग्य, बन्धुहीन बेचारी, मैं रोती हूँ। वनमें भूल गयी हूँ। मैं दिशा नहीं जानती। यह भी नहीं जानती कि कौन-सा देश और विषय (प्रान्त) है? कहाँ जाऊँ, चक्रव्यूहमें पड़ गयी हूँ। मेरे पुण्योंसे तुम मुझे मिल गये। यदि हमारे ऊपर तुम्हारा मन हो तो दोनोंमें-से एक मुझसे विवाह कर ले।" यह वचन सुनकर रामने अपना नाखून खोंट लिया। (मना कर दिया)। मुँहपर हाथ रख लिया। भौंहें टेढ़ी कर लीं, और सिर चलाया। किसी चीजमें अति अच्छी नहीं होती। उन्होंने लक्ष्मणका मुख देखा ॥१–९॥

[१३] जो राजा अत्यन्त सम्मान करनेवाला होता है, विश्वास करो कि वह अर्थ और सामर्थ्यका हरण करनेवाला होता है। जो मित्र अकारण घर आता है, विश्वास करो कि वह दुष्ट स्त्रीका अपहरण करनेवाला होता है। जो पथिक रास्तेमें अधिक स्नेह करता है विश्वास करो कि वह स्नेहहीन चोर है। जो मनुष्य लगातार चापलूसी करता है वह निश्चयसे जीवका हरण करनेवाला शत्रु है। जो कामिनी कपटपूर्ण चाटुता

जा कुलवहु सवहेँ हिँ ववहरइ । सा पत्तिय विडय-सयहुँ करइ ॥७॥
जा कण्ण होन्ति पर-णर सरइ । सा किं वहुलम्भी परिहरइ ॥८॥

घत्ता

आयहुँ अट्टहु मि जो णरु मुअइ वीसम्भइ ।
लोइउ धम्मु जिह सुहु विप्पउ पएँ पएँ लब्भइ ॥९॥

[१४]

चिन्तेप्पिणु थेरासण-सुहेँण । सोमित्ति वुत्तु सीराउहेँण ॥१॥
'महु अत्थि मज्झ सुमणोहरिय । लइ लक्खण वहु लक्खण-भरिय' ॥२॥
जं एम समासएँ अक्खियउ । कण्हेण वि मणेँ उवलक्खियउ ॥३॥
हउँ देमि कुमारि स-लक्खणिय । जा आगमेँ सामुद्दएँ भणिय ॥४॥
अक्कोह-अहक्कम वट्ट-थण । दीहर-कर-णक्खङ्गुलि-णयण ॥५॥
रत्तेहि गइन्द-णिरिक्खणिय । चामीयर-वण्ण सपुण्णणिय ॥६॥
जा उण्णय णासँ णिडालेँ तिय । सा होइ ति-पुत्तहुँ मायरिय ॥७॥
कायङ्गि स-गग्गर तावसिय । सम-चलणङ्गुलि अच्चिराउसिय ॥८॥
जा हंस-वंस-वरवीण-सर । मउ-वण्णा महा-घण-छाय-धर ॥९॥
सुअ-भमर-णाहि-सिर-ममर-थण(?)। सा बहु-सुय बहु-धण बहु-सयण ॥१०॥
जहेँ वामएँ करयलेँ होन्ति सय । मीणारविन्द-विस-दाम-धय ॥११॥
गोउरु घरु गिरिवरु अहव सिल । सु पसत्थ स-लक्खण सा महिल ॥१२॥
चक्कुस-कुण्डल-उक्किरिह । रोमावलि वलिय भुयङ्गु जिह ॥१३॥
अद्धेन्दु-णिडालेँ सुन्दरेँण । मुत्ताहल-सम-दन्तन्तरेँण ॥१४॥

करती है, विश्वास करो कि सिरकी कमलको काटनेवाली होती है; जो कुलवधू कसमोंसे व्यवहार करती है (बात-बातमें कसम खाती है) विश्वास करो कि वह सैकड़ों विद्रूपताएँ करनेवाली होगी। जो कन्या होकर परपुरुषका वरण करती है, वह क्या बड़े होनेपर ऐसा करनेसे विरत हो जायेगी। इन आठों ही बातोंमें जो मूढ़ मनुष्य विश्वास करता है लौकिक धर्मकी तरह वह शीघ्र पग-पगमें अप्रिय प्राप्त करता है॥१-९॥

[१४] कमलमुख रामने विचारकर लक्ष्मणसे कहा—"मेरी सुन्दर पत्नी है। हे लक्ष्मण, तुम लक्षणोंसे युक्त बहू ले लो।" जब उन्होंने संक्षेपमें इस प्रकार कहा तो लक्ष्मणने भी अपने मनमें विचार किया (और कहा)—मैं भी लक्षणोंसे युक्त कुमारी ग्रहण करूँगा जो कि सामुद्रिक शास्त्रमें कही गयी है। जो जाँघों और ऊरुओंसे अभंग हो, गोल स्तनोंवाली हो, जिसके हाथ, नख, अँगुलियाँ और नेत्र लम्बे हों। लाल चरणोंवाली, गजेन्द्रकी तरह दर्शनीय तथा स्वर्ण रंगकी पूजनीय हो। जो नासिका और ललाटमें उन्नत हो, वह तीन पुत्रोंकी माँ होती है। कौएके समान पैरों और गद्गद स्वरवाली तपस्विनी होती है। जो पैरोंमें समान अँगुलियोंवाली होती है वह कम आयुवाली होती है। जो हंस, बाँसुरी, वीणाके स्वरवाली, मधुके समान रंगवाली, महामेघोंकी कान्तिको धारण करनेवाली, शुभ भ्रमरके समान नाभि और सिरवाली, भ्रमरके समान स्तनवाली (??) होती है, वह अनेक पुत्रों, स्वजनों और अत्यधिक धनवाली होती है। जिसके बायें करतलमें सदैव मछली, कमल, वृष, दाम और ध्वज, गोपुर, घर, गिरिवर अथवा शिला हो, सुप्रशस्त वह महिला लक्षणवती होती है। चक्र, अंकुश और कुण्डलको धारण करनेवाली जिसकी रोमावलि साँपकी तरह मुड़ी हुई हो। अर्ध-चन्द्रके समान सुन्दर ललाट, और मोतीके समान अपने दाँतों-

घत्ता

आएहिँ लक्खणेहिँ सामुद्दएँ वणि [य] सुणिज्जइ ।
चक्काहिवहों तिय चक्कवइ पुत्तु उप्पज्जइ ॥१४॥

[१५]

वड्ढु राहव एहु अलक्खणिय । हउँ मण्णमि ण लक्खणेण भणिय ॥१॥
जङ्घोरु-करेहिँ समंसलिय । चल-लोयण गमणुत्तावलिय ॥२॥
कुम्मुण्णय-पय विसमङ्गुलिय । धुय-कविल-केसि खरि पङ्गुलिय(?) ॥३॥
सव्वङ्ग-समुट्ठिय-रोम-रह । तहेँ पुत्तु वि भत्तारु वि मरइ ॥४॥
कडि-लग्गग भउँहावलि-मिलिय । सा देव णिरुत्तउ झेन्दुलिय ॥५॥
दालिद्दिणि तिचिर-लोयणिय । पारेवयचिक्क जण-भोयणिय ॥६॥
सिरसउह-दिट्ठि विरसउह-सर । जा दुक्कएँ [illegible] होन्ति घर ॥७॥
णासग्गें थोरें मत्थरेण । सा लज्जिय किं बहु-वित्थरेण ॥८॥
कडि-विहुर-णाहि(?)सुह-मासुरिय । सा रक्खसि बहु-भय-भासुरिय ॥९॥
कडु-अक्खिय मत्त-गइन्द-छवि । हउँ एहिय परिणमि कण्ण णवि' ॥१०॥

घत्ता

पभणइ चन्दणहि 'किं णियय-सहावें लज्जमि ।
जइ हउँ णिसियरिय तो पइँमि अज्जु सइँ भुञ्जमि' ॥११॥

●

सत्ततीसमो संधि

चन्दणहि अलज्जिय एम पगज्जिय 'मरु मरु भूयहुँ देमि बलि' ।
णिय-रूवें वड्ढिय रण-रसें अब्भिडिय रावण-रामहुँ णाइँ कलि ॥

के अन्तरसे, (वह लक्षणवती होती है ।) सामुद्रिक शास्त्रमें वर्णित किया जाता है कि इन लक्षणोंसे युक्त स्त्री चक्रवर्तीकी पत्नी होती है और उससे चक्रवर्ती पुत्र होता है ॥१-१५॥

[१५] लक्ष्मणने कहा कि मैं कहता हूँ, हे राम, यह स्त्री लक्षणोंसे शून्य है । जाँघों, उरस्थल और हाथोंसे यह मांसल है । इसके चंचल नेत्र हैं । यह चलनेमें जल्दी करती है । इसके पैर कछुएकी तरह उन्नत हैं । अँगुलियाँ विषम हैं । हिलते हुए कपिल केशोंवाली । इसके समूचे शरीरपर रोमराजी चढ़ी हुई है । इसके पुत्र और पति भी मर जायेंगे । जिसकी कमर कलंक-युक्त है, और भौंहें भी मिली हुई हैं, हे देव ! वह निश्चयसे वेश्या होगी । तीतरके समान लोचनवाली दरिद्र होती है । कबूतरके समान आँखोंवाली लोगोंका भोजन करनेवाली होती है । कौएके समान दृष्टिवाली और कौएके समान स्वरवाली केवल दुःखोंकी पात्र होती है । स्थूल और मन्थर नासिकावाली वह दासी होती है, बहुत कहनेसे क्या ? कमर तक बालोंवाली मसीली नाभि और मुखवाली, अनेक भयोंसे भास्वर वह (भारी) राक्षसी होती है । कटु अंगोंवाली, गजेन्द्रके समान छविवाली इस कन्याका मैं वरण नहीं करता हूँ । तब चन्द्रनखा कहती है—"क्या अपने स्वभावसे लज्जा करूँ, यदि मैं निशाचरी हूँ तो आज मैं अपने हाथोंसे तुम्हारा भोग करूँगी" ॥१-११॥

सैंतीसवीं सन्धि

लज्जासे रहित चन्द्रनखाने गरजकर इस प्रकार कहा—"मरो-मरो, भूतोंको बलि देती हूँ ।" अपने रूपसे बढ़ती हुई, वह ऐसी लगी मानो युद्धके उत्साहसे सहित राम और रावणकी कलह हो ।

[१]

पुणु पुणु वि पवड्ढिय किलिकिलन्ति । आलावलि-जाला-सय मुअन्ति ॥१॥
भय-भीसण कोवाणल-सणाहु । णं धरएँ समुब्भिय पवर बाहु ॥२॥
णह-सरि-रवि-कमलहों कारणत्थि । अहवइ णं अङ्कुसु वारणत्थि ॥३॥
णं घुसलइ अवम-चिरिक्किहिल्लु । तारा-बुब्बुय-सय-विब्भिरिल्लु ॥४॥
ससि-लोणिय-पिण्डउ केवि धाइ । गह-डिम्भहों पीहउ देइ णाइँ ॥५॥
अहवइ किं बहुणा वित्थरेण । णं णहयल-सिल गेण्हइ सिरेण ॥६॥
णं हरि-बल-मोत्तिय-कारणेण । महि-गयण-सिप्पि फोडइ खणेण ॥७॥
बलएवें वुच्चइ 'वच्छ वच्छ । तुहुँ बहुयहँ चरियइँ पेच्छ पेच्छ ॥८॥

घत्ता

चन्दणहि पजम्पिय तिण्णि वि ण कम्पिय 'कहउ खग्गु हउँ पुत्तु जिह ।
तिण्णि वि खज्जन्तहँ मारिज्जन्तहँ रक्खेज्जहों अप्पाणु तिह ॥९॥

[२]

वयणेण तेण असुहावणेण । करवालु पदरिसिउ महुमहेण ॥१॥
दढ-कढिण-कठोरुप्पीलणेण । अङ्गुलि-अङ्गुट्ठावीलणेण ॥२॥
तं मण्डलग्गु थरहरइ केम । भत्तार-भएं सुकलत्तु जेम ॥३॥
अणवरय-मउअएँ णर-णिसुम्भें । तहिँ दारिमन्तें गइन्द-कुम्भें ॥४॥
जो धारहिँ मोत्तिय-णियरु लग्गु । पासेव-फुलिङ्गु बहु व खग्गु ॥५॥
तं तेहउ खग्गु लएवि तेण । विज्जाहरि पभणिय लक्खणेण ॥६॥
'जं लइउ सीसु तुह णन्दणासु । करवालु एउ तं सूरहासु ॥७॥
अह अत्थि को वि रण-भर-समत्थु । तहों सब्बहों ढुक्किमउ धम्म-हत्थु ॥८॥

[१] फिर-फिर चढ़ती हुई वह किलकारियाँ भरती है। ज्वालावलीकी सैकड़ों ज्वालाओंको छोड़ती है। भयसे भयंकर कोपज्वालासे सहित वह ऐसी जान पड़ती थी मानो धराने अपनी प्रबर बाँह उठा ली हो, या तो आकाशरूपी नदीके रवि-रूपी कमलके लिए अथवा मानो मेघोंके उद्धारके लिए। मानो वह, जिसमें तारारूपी सैकड़ों बुद्बुद मिलोये गये हैं, ऐसे मेघ-रूपी दहीको बिलोती है, चन्द्रमारूपी लोनीपिण्डको लेकर दौड़ती है, जैसे वह ग्रहरूपी बालकके लिए पीठा दे रही हो। अथवा बहुत विस्तारसे क्या ? मानो वह आकाशरूपी शिलाको अपने सिरके ऊपर ले रही है। मानो लक्ष्मण और रामरूपी मोतीके लिए वह एक क्षणमें आकाश और धरतीरूपी सीपको फोड़ना चाहती है। रामने तब कहा—"हे वत्स वत्स, तुम वधूके चरित-को देखो देखो।" तिनके बराबर भी नहीं काँपते हुए चन्द्रलखा बोली—"खड्ग उठाओ। जिस प्रकार तुमने पुत्रका वध किया, उसी प्रकार तुम तीनों खाये-मारे जाते हुए अपनेको बचाओ।" ॥१-९॥

[२] उस अशुभ वचनके कारण लक्ष्मणने तलवार दिखा दी। दृढ़ कठिन कठोर उत्पीड़न है जिसमें ऐसे अँगूठेके आपी-ड़नसे, वह तलवार उसी तरह थरथरा उठती है, जिस प्रकार पतिके भयसे अच्छी स्त्री। जो अनवरत मद झरता है, तथा जो मनुष्योंका नाश करनेवाला है, ऐसे गजेन्द्रके गण्डस्थलके विदीर्ण होनेपर, तलवारकी धाराओंमें जो मोतीसमूह लग गया था, वह ऐसा लगता था, मानो प्रस्वेदके कण बहुको लग गये हों। इस प्रकार अपने उस खड्गको लेकर लक्ष्मण विद्याधरीसे बोला—"जिसने तुम्हारे पुत्रका सिर काटा है यह वह सूर्यहास तलवार है। यदि कोई युद्धका भार उठानेमें समर्थ हो, तो उन सबके लिए धर्मका हाथ उठा हुआ है।" तब खरकी पत्नी

खर-चरिकिएँ वुत्तु 'ण होइ कज्जु । को वारइ मारइ मइ मि अज्जु' ॥९॥

घत्ता

सा एव भणेप्पिणु गलगज्जेप्पिणु चलणेंहिँ अप्फालेवि महि ।
खर-दूसण-वीरहुँ अतुल-सरीरहुँ गय कूवारें चन्दणहि ॥१०॥

[३]

रोवन्ति पधाइय दीण-वयण । जलहर जिह विहि परिसन्ति णयण ॥१॥
कम्पन्ति लम्ब-कडियल-समग्ग । णं चन्दण-लयहें भुअङ्ग लग्ग ॥२॥
सीया-मयलञ्छण-सण्णिहेहिं । अप्पाणु वियारिउ णिय-णहेहिं ॥३॥
रुहिरोल्लिय थण-विप्फुरन्त-रत्त । णं कणय-कलस कुङ्कुम विलित्त ॥४॥
णं दावइ लक्खण-राम-कित्ति । णं खर-दूसण-रावण-भवित्ति ॥५॥
णं णिसियर-लोयहों दुक्ख-खाणि । णं मन्दोयरिहें सुपुरिस-हाणि ॥६॥
णं लङ्कहें पइसारन्ति सङ्क । णिविसेण पत्त पायाललङ्क ॥७॥
णिय-मन्दिरें धाहावन्ति णारि । णं खरदूसणहों पइट्ठ मारि ॥८॥

घत्ता

कूवारु सुणेप्पिणु धण पेक्खेप्पिणु राएँ वलेंवि पलोइयउ ।
तिहुयणु संघारेंवि पलउ समारेंवि णाइँ कियन्तें जोइयउ ॥९॥

[४]

कूवारु सुणेंवि कुल-भूसणेण । चन्दणहि पपुच्छिय दूसणेण ॥१॥
कहेँ केणुप्पाडिउ जमहों णयणु । कहेँ केण पलोइउ काल-वयणु ॥२॥
कहि केण कियन्तहों कियउ मरणु । कहि केण कियउ विस-कन्द-चरणु ॥३॥
कहि केण वद्धु पवणेण पवणु । कहि केण दड्ढु जलणेण जलणु ॥४॥
कहि केण भिण्णु वज्जेण वज्जु । कहि केण धरिउ जलु गलेंण अज्जु ॥५॥
कहि केण भाणु उण्हेण तविउ । कहि केण समुद्दु तिसाएँ खविउ ॥६॥

बोली—"इससे काम नहीं बनेगा, आज कौन मुझपर आक्रमण कर सकता या मुझे मार सकता है।" वह इस प्रकार कहकर गरजकर पैरोंसे धरती चाँपकर, अतुल शरीरवाले खरदूषण वीरोंके पास क्रन्दन करती हुई गयी ॥१-१०॥

[३] दीनमुख वह रोती हुई पहुँची। जिस प्रकार मेघ, उस प्रकार आँखें बरसाती हुई। लम्बे समग्र कटितल तक लटकती हुई केशराशि ऐसी मालूम होती थी, मानो चन्दनलतासे साँप लटके हुए हों। द्वितीयाके चन्द्रमाके समान अपने नखोंसे उसने स्वयंको विदारित कर लिया। रक्तकी धाराओंसे उसके स्तन लाल हो गये; मानो केशरसे रँगे हुए स्वर्ण कलश हों। मानो वह राम और लक्ष्मणकी कीर्ति दिखा रही हो, मानो खरदूषण और रावणकी भवितव्यता हो, मानो निशाचर लोकके लिए दुःखकी खान हो। मानो मन्दोदरीके एकपक्षकी हानि हो, मानो लंकामें प्रवेश करती हुई शंका हो, वह एक पलमें पाताललंका पहुँच गयी। वह स्त्री अपने घरमें धाड़ मारकर इस प्रकार रोने लगी, मानो खरदूषणके शिर आरीने प्रवेश किया हो।" क्रन्दन सुनकर, स्त्रीको देखनेके लिए राजाने मुड़कर इस तरह देखा, मानो त्रिभुवनके संहार और प्रलय करनेके लिए कृतान्तने ही अवलोकन किया हो ॥१-९॥

[४] उसका क्रन्दन सुनकर कुलभूषण दूषणने चन्द्रनखासे पूछा, "बताओ किसने यमके नेत्र निकाले हैं, बताओ किसने कालका मुख देखा है? बताओ किसने कृतान्त का मरण किया है। बताओ किसने वृषभ और कार्तिकेयके पैरको पकड़ा। बताओ किसने पवनसे पवनको बाँधा है? बताओ आगसे आगको किसने दग्ध किया है? बताओ वज्रसे वज्रको किसने छिन्न किया है। बताओ किसने जलको जलसे आज ग्रहण किया है? बताओ उष्णतासे किसने सूर्यको तपाया है,

कहिँ केण खुडिउ फणि-मणि-णिहाउ । कहिँ केण सहिउ सुर-कुलिस-घाउ ॥७॥
कहिँ केण हुआसणेँ झम्प दिण्ण । कहिँ केण दसाणण-पाय छिण्ण ॥८॥

घत्ता

चन्दणहिहि पबोल्लिय अंसुजलोल्लिय 'जण-वच्छलु महु तणउ सुउ ।
ओलग्गइ पाणेँहिँ विणय-समाणेँहिँ णरवइ सम्बुकुमारु मुउ ॥९॥

[५]

आयण्णेँ वि सम्बुकुमार-मरणु । संताविय-लोय-विसोय-करणु ॥१॥
पविरल-मुहु बाह-भरन्त-णयणु । दुक्खाउरु दर-ओमुल्ल-वयणु ॥२॥
खरु रुयइ स-दुक्खउ 'अतुल-पिण्डु । हा अज्जु पडिउ महु बाहु-दण्डु ॥३॥
हा अज्जु जाय मणेँ गरुअ सल्लु । हा अज्जु सुण्णु पायालल्लु ॥४॥
हा णन्दण सुर-पञ्चाणणासु । कवणुत्तरु देमि दसाणणासु ॥५॥
एत्थन्तरेँ ताम तिमुण्ड-धारि । बहु-बुद्धि पजम्पिउ बम्भयारि ॥६॥
'हे णरवइ मूढा रुअहि काइँ । संसारेँ भमन्तहुँ सुअ-सयाइँ ॥७॥
आयाइँ सुआइँ गयाइँ जाइँ । को लक्खइ राय गणेवि ताइँ ॥८॥

घत्ता

कहोँ घरु कहोँ परियणु कहोँ सम्पय-धणु माय बप्पु कहोँ पुत्तु तिय ।
केँ कज्जेँ रोवहि अप्पउ सोयहि भव-संसारहोँ एह किय' ॥९॥

[६]

जं दुक्खु दुक्खु संथविउ राउ । पडिवोल्लिउ णिय-घरिणिएँ सहाउ ॥१॥
'कहिँ केण वहिउ महु तणउ पुत्तु' । तं वयणु सुणेँ वि धणिआएँ वुत्तु ॥२॥
'सुणु णरवइ दुग्गमेँ दुप्पवेसेँ । दुग्घोट्ट-थट्ट-घट्टण-पवेसेँ ॥३॥
पञ्चाणण-लक्खुक्खय-करालेँ । तहिँ मेहएँ दण्डय-वणेँ विसालेँ ॥४॥
बे मणुस दिट्ठ सोण्डीर वीर । मन्दारविन्द-सण्णिह-सरीर ॥५॥
कोवण्ड-सिलीमुह-गहिय-हत्थ । पर-बल-बल-उत्थल्लण-समत्थ ॥६॥

बताओ किसने प्याससे समुद्रका क्षय कर दिया है? बताओ किसने नागमणिसमूहको उखाड़ा है? बताओ देवबज्रका आघात किसने सहन किया है? बताओ किसने आगको ढँक दिया है? बताओ किसने दशाननके पैर छिन्न किये हैं? तब अश्रुजलसे गीली होकर चन्द्रनखा बोली, "हे राजन्, मेरा जन-प्रिय पुत्र शम्बुकुमार विनयके समान अपने प्राणोंको लेकर मर गया ॥१-९॥

[५] सन्ताप, शोक और वियोग उत्पन्न करनेवाला शम्बुकुमारका मरण सुनकर, मुँह फाड़कर, आँसुओंसे आँखें भरकर दुःखसे पूरित, कुछ मुँह नीचा किये हुए खर अपने दुःखसे रोता है—"हा, आज अतुल शरीर मेरा बाहुदण्ड गिर पड़ा। हा, आज मेरे मनमें भारी शंका उत्पन्न हो गयी; हा, आज पाताल लंका सूनी हो गयी। हे पुत्र, देवरूपी सिंहोंका नाश करनेवाले दशाननको मैं क्या उत्तर दूँ।" इसी बीचमें त्रिपुण्ड्रधारी बहुबुद्धि ब्रह्मचारी बोला, "हे मूर्ख राजा! रोते क्यों हो, संसारमें भ्रमण करते हुए तुम्हारे जो सैकड़ों पुत्र हुए मर गये और चले गये, उन्हें कौन गिन सकता है? किसका घर? किसके परिजन, किसका सम्पत्ति-धन, किसके पिता, माता तथा स्त्री? किस कारण तुम रोते हो, शोक करते हो, भवसंसारका यही क्रम है? ॥१-९॥

[६] जब बड़ी कठिनाईसे राजा आश्वस्त हुआ तो उसने हाथपूर्वक पूछा, "बताओ, मेरे पुत्रका वध किसने किया?" यह वचन सुनकर धन्या बोली—"हे राजन्, सुनिए। जो दुर्गम और दुष्प्रवेश्य है, जिसमें गजसमूहके संघर्षके प्रदेश हैं तथा जो लाखों सिंहोंके क्षयसे विकराल है, ऐसे उस विशाल दण्डक वनमें मैंने दो प्रचण्ड वीर देखे हैं, जो मेघ और कमलके समान शरीरवाले हैं, जिन्होंने धनुष-बाण अपने हाथोंमें ले रखे हैं, जो शत्रुसेनाके बलको परास्त करनेमें समर्थ हैं। उनमें एक

तहिँ एक्कु विट्ठु रिउसहुँ असज्झु । णँ लइउ खग्गु हुउ पुत्तु मज्झु ॥७॥
अण्णु वि अवलोयहि देव देव । कक्खोरु वियारिउ पेक्खु केव ॥८॥

घत्ता

वणेँ घरेँ वि रुयन्तो धाह मुअन्ती कह वि ण मुक्क तेण णरेँण ।
पिय-पुण्णेँहिँ चुक्की णह-मुह-लुक्की णलिणि जेम सरेँ कुञ्जरेँण' ॥९॥

[७]

तं वयणु सुणेँवि बहु-जाणएहिँ । उवलक्खिय अप्पेँहिँ राणएहिँ ॥१॥
'मालूर-पवर-पीवर-थणाएँ । पर एयइँ कम्मइँ अक्कयणाएँ ॥२॥
मच्छुद्धु ण समिच्छिय सुपुरिसेण । अप्पउ विद्धंसेँवि आय तेण' ॥३॥
एत्थन्तरेँ णिवइ णियइ जाव । णह-णियर-वियारिय दिट्ठ ताव ॥४॥
किंसुय-लय व्व आरत्त-वण्ण । रत्तुप्पल-माल व भमर-छण्ण ॥५॥
तहिँ अहरु दिट्ठु दसणग्ग-भिण्णु । णं बाल-तवणु फग्गुणेँ उइण्णु ॥६॥
तं णयण-कडक्खेँवि खरु विरुद्धु । णं केसरि मयगल-गन्ध-लुद्धु ॥७॥
मड्डु भिउडि-भयङ्करु मुह-करालु । णं जगहोँ समुट्ठिउ पलय-कालु ॥८॥

घत्ता

अमर वि आकम्पिय एम पजम्पिय 'कहोँ उप्परि आरुट्ठु खरु' ।
रहु लङ्घिउ अरुणेँ सहुँ ससि-वरुणेँ 'महु वि गिलेसइ णवर णरु' ॥९॥

[८]

वट्टन्तेँ उट्ठिउ भड-णिहाउ । आयाम-खोहु णिविसेण जाउ ॥१॥
चूरन्त परोप्परु सुहड ढुक्क । णं जलणिहि णिय-मज्जाय-चुक्क ॥२॥
सीसेण सीसु पट्टेण पट्टु । चलणेण चलणु करु कर-णिहट्टु ॥३॥

देवताओंके लिए भी असाध्य दिखाई दिया। उसने खड्ग ले लिया है और मेरे कुचका छेद किया है। हे देवदेव, और भी देखिए, किस प्रकार उसने मेरी काँख और वक्षःस्थल विदीर्ण कर दिया है। धाड़ मारकर रोती हुई भी वनमें पकड़कर उस मनुष्यने किसी प्रकार मेरा भोग-भर नहीं किया, अपने पुण्योंसे, नखाग्रसे विदीर्ण होनेपर भी उसी प्रकार बच गयी, जिस प्रकार सरोवरमें कमलिनी हाथीसे बच जाती है" ॥१–९॥

[७] उसके वचन सुनकर बहुत जाननेवाली दूसरी रानियों-ने समझ लिया कि मालूरके समान विशाल और स्थूल स्तनों-वाली इसी कुलटाके ये काम हैं। शायद उस पुरुषने इसे नहीं चाहा होगा इसीलिए यह अपनेको क्षत-विक्षत करके आयी है। इसी बीच जब राजा देखता है तो उसे नखसमूह-विदारित वह दिखाई दी। पलाश लताकी तरह वह लाल रंगवाली थी, लाल कमलोंकी मालाकी तरह भ्रमरोंसे आच्छन्न थी। दाँतोंके अग्रभागसे काटा हुआ उसका अधर ऐसा दिखाई दिया मानो फागुनके माहमें बालसूर्य उदित हुआ हो। उसके नेत्र-कटाक्षसे खर एकदम विरुद्ध हो उठा मानो मैगल हाथीकी गन्धसे सिंह लुब्ध हो उठा हो। भौंहोंसे भयंकर और मुँहसे कराल वह सुभट ऐसा लग रहा था मानो विश्वके लिए प्रलय उठ आया हो। देवता भी काँप उठे और इस प्रकार बोले कि आज खर किसके ऊपर क्रुद्ध हुआ है। रथ खड़ा कर दिया गया। अरूण शशि और वरुणके साथ मैं भी (खर) उस आदमी-को सिर्फ निगलकर रहूँगा ॥१–९॥

[८] उसके उठते ही योद्धा समूह उठ खड़ा हुआ। पलमात्र-में दरबारमें क्षोभ उत्पन्न हो गया। एक दूसरेको चूर-चूर करते हुए योद्धा पहुँचे मानो समुद्रने अपनी मर्यादा छोड़ दी हो। सिरसे सिर, पट्टसे पट्ट, चरणसे चरण, हाथसे हाथ भिड़ गये

मउडेण मउडु तुट्टेवि लग्गु । मेहलु मेहल-णिवहेण भग्गु ॥४॥
उट्ठन्ति के वि तिण-समु गणन्ति । ओहावण-माणें ण वि णमन्ति ॥५॥
अह णमइ को वि किय-णमणेण । पडिओ वि ण उट्ठइ मडु भरेण ॥६॥
दूसणेण णिवारिय वद्ध-कोह । विहडप्फड सण्णज्झन्ति जोह ॥७॥
'जइ पउ वि देहु आरुसमाण । तो छोमइ रायहों तणिय आण ॥८॥

घत्ता

मं कज्जु विणासहों ताम वईसहों जो अभि-रयणु मण्ड हरइ ।
सिरु खुडइ कुमारहों विज्जा-धारहों सो किं तुम्हहिं ओसरइ ॥९॥

[९]

सो मरि किज्जउ मडु तणिय बुद्धि । णरवइ असहायहों णत्थि सिद्धि ॥१॥
णावइ वि ण वहइ विणु तारएण । अलणु वि ण जलइ विणु मारुएण ॥२॥
एक्कल्लउ णक्खिणु काइँ करहि । रयणायरें सव्वें तिसाएँ मरहि ॥३॥
सन्ते वि महग्गएँ विसहें चडहि । विणें अग्गिए वि संसारें पडहि ॥४॥
अम्हु खरहि कुहु भुवणेक्कवीरु । सुरवर-पहरण-चट्टिय सरीरु ॥५॥
जग-केसरि अरि-कुल-पलय-कालु । पर-बल-बगलामुहु भुअ-विसालु ॥६॥
दुद्दम-दाणव-दुग्गाल-गाहु । सुरकरि-कर-सम-थिर-थोर-बाहु ॥७॥
तेलोक्क-भयगाल-मड-लडक्कु । दुद्दरिसण भीसण जम-लडक्कु ॥८॥

घत्ता

तहों तिहुअण-मल्लहों सुर-जण-सल्लहों तियस-विन्द-संतावणहों ।
गउ सन्धु सुहग्गइ पईँ ओलग्गइ गम्पि कहिज्जइ रावणहों ॥९॥

मुकुटसे मुकुट टूटने लगे। मेखलाएँ मेखलासमूहसे टूटने लगीं। कितने ही योद्धा उठते हैं, तिनकेके बराबर समझते हुए, दैन्य या मानके कारण नमस्कार नहीं करते। अथवा कोई योद्धा दैन्यके कारण नमस्कार करता भी है तो खड़ा हुआ यह सेनाके भारके कारण उठ नहीं पाता। क्रोधसे भरे हुए और अहंकारसे तैयार होते हुए योद्धाओंको दूषणने मना किया—"तुम्हें राजाकी शपथ (आज्ञा) है यदि तुमने क्रुद्ध होकर, एक भी कदम आगे बढ़ाया। तुम कार्य मत बिगाड़ो। तबतक चुप बैठो। जो बलपूर्वक तलवाररूपी रत्नका अपहरण करता है, विद्यामें पारंगत कुमारका सिर काट लेता है क्या वह तुम-जैसे लोगोंके द्वारा मारा जा सकता है ॥१-९॥

[९] इसलिए अच्छा है कि तुम मेरी बात मानो। हे राजन्, असहाय व्यक्तिकी संसारमें सिद्धि नहीं होती। बिना तारकके नाव नहीं चलती। बिना हवाके आग भी नहीं जलती। तुम अकेले क्यों जाते हो? समुद्र होते हुए भी तुम प्यासे मरते हो। महागज होते हुए भी बैलपर चढ़ते हो। जिनकी पूजा करते हुए भी संसारमें पड़ते हो। जिसका यम सारथि है और जो स्पष्ट रूपसे विश्वमें एकमात्र वीर है, इन्द्रके वज्रसे जिसका शरीर निर्मित है, जो विश्वका सिंह और शत्रुकुलके लिए प्रलय-काल है, जो शत्रुसेनाके लिए बड़वानल है, बाहुओंसे विशाल है; जो दुर्दम दानवरूपी ग्राहोंको पकड़नेवाला है, जो ऐरावत-की सूँड़के समान स्थिर और स्थूल बाहुवाला है, जो त्रिलोकको भटशृंखलाको तोड़नेवाला है, दुर्दर्शनीय भीषण और यमकी तरह आघात पहुँचानेवाला है। ऐसे उस त्रिभुवनमल्ल, देवमनोंमें पीड़ा उत्पन्न करनेवाले देवोंको सन्तापदायक रावण-से जाकर कहा जाये कि शम्बुकुमार शुभगतिको प्राप्त हुआ है और अब आप पीछा करें (आक्रमण करें)" ॥१-९॥

[१०]

आयण्णेँवि तं भूसणहोँ वयणु । खणु एक्कु पडोलिउ गुरु-गमणु ॥१॥
'धिद्धि' लज्जिज्जइ सुपुरिसाहुँ । पर एयइँ कम्मइँ कुपुरिसाहुँ ॥२॥
साहीणु जीउ देहत्थु जाव । किह गम्मइ अप्पहोँ पासु ताव ॥३॥
जाएँ जीवें मरिएव्वउँ जँ । तो वरि पइसरिउ वर-वइरि-पुञ्जेँ ॥४॥
जं लब्भइ साहुक्कारु लोएँ । अजरामरु को वि ण मच्च-लोएँ ॥५॥
जिम भिडिउ अज्जु अरि-वर-समुद्दें । जिम जणिय मणोरह सयण-विन्दें ॥६॥
जिम अरि-सबल-कोन्तेंहिँ भिण्णु । जिम जस-पडहउ तइलोक्कें दिण्णु ॥७॥
जिम णहेँ तोसाविउ सुर-णिहाउ । जिम मइँ मि अज्जु खय-कालु आउ ॥८॥

घत्ता

जिम सत्तु-सिलायलें बहु-सोणिय-जलें धुउ परिहव-पङ्कु अप्पणउ ।
जिम स-धउ स-साहणु स-मउडु स-पहरणु गउ णिय-पुत्तहोँ पाहुणउ ॥९॥

[११]

तं णिसुणेँवि णिय-कुल-भूसणेण । लहु लेहु विसज्जिउ भूसणेण ॥१॥
सण्णद्धु भडु वि बहु-समर-सूरु । अप्फालेँवि वलेँ संगाम-तूरु ॥२॥
सिरटोप्फड भड सण्णद्ध के वि । सम्माण-दाणु रिणु संभरेवि ॥३॥
केण वि करेंण करवालु गहिउ । केण वि धणुहरु तोणीर-सहिउ ॥४॥
केण वि मुसुण्ढि मोग्गरु पचण्डु । केण वि हुलि केण वि भिसदण्डु ॥५॥
णाणाविह-पहरण-गहिय-हत्थ । सण्णद्ध सुहड रण-भर-समत्थ ॥६॥
णीसरिउ सेण्णु परिहरेँवि सङ्क । णं चमेवि लग्ग पायाल-लङ्क ॥७॥
रह-तुरय-गइन्द-णरिन्द-विन्द । णं सु-कइ-मुहहोँ णिग्गन्ति सद्द ॥८॥

घत्ता

खर-दूसण-साहणु दरिसिय-पसाहणु अमरिस-कुद्धउ धाइयउ ।
गयणङ्गणेँ ठियउ णावइ बीयउ जोइस-चक्कु पराइयउ ॥९॥

[१०] दूषणके उन वचनोंको सुनकर गुंजाके समान आँखों-वाला खर कड़ककर बोला, "धिक्कार है, सज्जन पुरुषोंको इससे शर्म आनी चाहिए। ये केवल कुपुरुषोंके कर्म हो सकते हैं। जबतक जीव अपने शरीरमें स्थित होकर स्वाधीन है, तबतक उसे दूसरेके पास क्यों जाना चाहिए। जब उत्पन्न हुए जीवको मरना ही है, तो अच्छा है कि शत्रु-समूहपर प्रहार किया जाये कि जिससे दुनियामें साधुकार मिले, मर्त्यलोकमें अजर-अमर कोई नहीं है। जिस प्रकार शत्रुरूपी समुद्रमें आज भिड़ा, जिस प्रकार स्वजनसमूहके मनोरथोंको पूरा किया, जिस प्रकार तलवार, सब्बल और भालोंसे विदीर्ण किया, जिस प्रकार त्रिलोकमें यशका डंका बजाया, जिस प्रकार आकाशमें देवसमूहको सन्तुष्ट किया, जिस प्रकार मुझे भी क्षयकाल प्राप्त हुआ, जिस प्रकार शत्रुरूपी चट्टानपर प्रचुर रक्तरूपी जलमें अपना पराभवरूपी पट धोया, जिस प्रकार ध्वज, साधन, भट और प्रहरणके साथ अपने पुत्रका अतिथि बनकर गया ॥१-९॥

[११] यह सुनकर अपने कुल-भूषण दूषणने शीघ्र लेख भेजा। अनेक युद्धोंमें शूर खर भी सेनामें संग्राम तूर्य बजाकर तैयार हो गया। कोई योद्धा अपने स्वामीके सम्मान दान और ऋण-की याद कर तैयार हो गये। किसीने तलवार ले ली। किसीने तरकस सहित धनुष ले लिया। किसीने भुशुण्डि और प्रचण्ड मोगर ले लिया। किसीने हुलि और किसीने चित्रदण्ड। इस प्रकार नाना प्रकारके हथियार अपने हाथमें लिये हुए तथा युद्धके भारमें समर्थ सेना शंका छोड़कर निकल पड़ी मानो पाताललंका ही कोलाहल करने लगी हो ! रथ, घोड़े, हाथी और नरेन्द्रसमूह ऐसे मालूम होते थे, मानो सुकविके मुखसे शब्द निकल रहे हों। हर्षसे अलंकृत खर-दूषणकी सेना क्रोधसे भरकर दौड़ी। आकाशमें व्याप्त वह ऐसी मालूम हुई कि जैसे

[११]

जं दिट्ठु णहङ्गणेँ दणु-णिहाउ । बलएवें वुत्तु सुमित्ति-जाउ ॥१॥
'एँउ दीसइ काइँ णहङ्गण-मग्गेँ । किं किण्णर-णिवहु व चलिउ सग्गेँ ॥२॥
किं पवर पक्खि किं घण णिसङ्ग । किं वन्दण-हत्तिएँ सुर पयट्ट' ॥३॥
तं वयणु सुणेप्पिणु भणइ विण्हु । 'भड दीसइ वइरिहिँ तणउ चिण्हु ॥४॥
खग्गेण विवाइउ सीसु जासु । कुइँ लग्गउ सम्मुहु को वि तासु' ॥५॥
अवरोप्परु ए आलाव जाव । हक्कारिउ लक्खणु खरेँण ताव ॥६॥
'जिह सम्बुकुमारहोँ लइय पाण । तिह पाव पडिच्छहि एन्त बाण ॥७॥
जिह लइउ खग्गु पर-णारि भुत्त । तिह पहरु पहरु पुण्णालि-पुत्त' ॥८॥

घत्ता

एक्केक्क-पहाणहुँ खरेँण समाणहुँ चउदह सहस समावडिय ।
गय जेम मइन्दहोँ रिउ गोविन्दहोँ हक्कारेँप्पिणु अब्भिडिय ॥९॥

[१२]

एत्थन्तरेँ भड-कडमद्दणेण । जोक्कारिउ रामु जणद्दणेण ॥१॥
'तुहुँ सीय पयत्तेँ रक्खु देव । हउँ धरमि सेण्णु मिग-जूहु जेम ॥२॥
जब्भेल करेसमि सीह-णाउ । तब्भेल एज्ज धणुहर-सहाउ' ॥३॥
तं वयणु सुणेँवि विहसिय-मुहेण । आसीस दिण्ण सीराउहेण ॥४॥
'जसवन्तु चिराउसु होहि वच्छ । करेँ लग्गउ जय-सिरि-वहुअ सच्छ' ॥५॥
तं सेवि णिमिउ जणद्दणेण । वइदेहि णमिय रिउ-मद्दणेण ॥६॥
तं णिसुणेँवि सीयएँ वुत्तु एम । 'पश्चिन्दिय भग्ग जिणेण जेम ॥७॥
बावीस परीसह चउ कसाय । जर-जम्म-मरण मण-काय-वाय ॥८॥

दूसरा ज्योतिषचक्र आ पहुँचा हो ॥१-१०॥

[१८] जब आकाशके आँगनमें दानवसमूह दिखाई दिया तो बलदेवने लक्ष्मणसे पूछा, "नभके अग्रभागमें यह क्या है ? क्या स्वर्गसे किन्नरसमूह चल पड़ा है ? क्या कोई महान् पक्षी है ? या विशिष्ट मेघखण्ड है ? क्या वन्दनाभक्तिके लिए देवसमूह जा रहा है ?" यह शब्द सुनकर लक्ष्मणने कहा—"हे राम, यह शत्रुओंका चिह्न दिखाई दे रहा है। जिसका सिर तलवारसे गिरा दिया गया है, शायद उसका कोई आदमी पीछा कर रहा है।" जबतक उनमें आपसमें ये बातें हो रही थीं कि इतनेमें खरने लक्ष्मणको ललकारा कि जिस प्रकार तूने शम्बुकुमारके प्राण लिये उसी प्रकार अब हे पाप, इन आते हुए बाणोंको स्वीकार कर। जिस प्रकार खड्गको लिया है, और दूसरेकी स्त्री (चन्द्रनखा) का उपभोग किया है हे पुंश्चलीपुत्र, उसी प्रकार प्रहार कर, प्रहार कर। खरके समान एकसे एक प्रधान चौदह सौ योद्धा टूट पड़े। जिस प्रकार हाथी सिंहसे, उसी प्रकार वे ललकारकर लक्ष्मणसे भिड़ गये ॥१-९॥

[१९] इसी बीचमें योद्धाओंको चकनाचूर करनेवाले लक्ष्मणने रामका जय-जयकार किया और कहा, "हे देव, आप प्रयत्नपूर्वक सीताकी रक्षा करें; मैं मृगोंके झुण्डकी तरह सेनाको पकड़ता हूँ। जब मैं सिंहनाद करूँ, तब धनुर्धर सहायक आप आना।" यह वचन सुनकर हँसते हुए मुखसे श्रीरामने उसे आशीर्वाद दिया—"हे वत्स, यशस्वी और चिरायु होओ। स्वच्छ विजयलक्ष्मीरूपी वधू तुम्हारे हाथ लगे।" यह सुनकर शत्रुका मर्दन करनेवाले लक्ष्मणने वैदेहीको प्रणाम किया। यह सुनकर सीताने इस प्रकार कहा—"जिस प्रकार जिनेन्द्रने पाँच इन्द्रियों, बाईस परीषह और चार कषायों, जरा, जन्म और मरण तथा मन, वचन और कायका नाश किया, जिस

घत्ता

जिह भग्गु परम्मुहु रणेँ कुसुमाउहु लोहु मोहु मउ माणु खलु ।
तिह तुहुँ भञ्जेज्जहि समरेँ जिणेज्जहि सयलु वि वइरिहिँ तणउ बलु ॥९॥

[१४]

आसीस-वयणु तं लेवि तेण । अप्फालिउ धणुहरु महुमहेण ॥१॥
तें सद्दें बहिरिउ जगु असेसु । थरहरिय वसुन्धरि डरिउ सेसु ॥२॥
खरलक्खण बे वि भिडन्ति जाव । हक्कारिउ हरि तिसिरेण ताव ॥३॥
ते भिडिय परोप्पर हणु भणन्त । णं मत्त महागय गुलुगुलन्त ॥४॥
णं केसरि घोरोरालि देन्त । बाणेहिँ बाण छिन्दन्ति एन्त ॥५॥
मोग्गर-खुरुप्प-कणियउ पडन्ति । जीवेहिँ जीव णं खयहोँ जन्ति ॥६॥
एत्थन्तरेँ अतुल परक्कमेण । अद्धेन्दु मुक्कु पुरिसोत्तमेण ॥७॥
तहोँ तिसिरउत्तुङ्गु कह वि भिण्णु । धणुहरु पाडिउ धय-दण्डु छिण्णु ॥८॥

अण्णुण्णु पुणुप्पुणु समरेँ महुग्गुणु जं जं तिसिरउ लेवि धणु ।
तं तं उक्खण्डइ खणु वि ण संडइ दइव-विहूणहोँ जेम धणु ॥९॥

[१५]

धणुहरु सरु सारहि छत्त-दण्डु । जं बाणहिँ किउ सय-खण्ड-खण्डु ॥१॥
तं अमरिस-कुद्धेँ दुद्धरेण । संभरिय विज्ज विज्जाहरेण ॥२॥
अप्पाणु पदरिसिउ बहुमाणु । तिहिँ वयणेंहिँ तिहिँ सीसेंहिँ समाणु ॥३॥
पहिलउ सिरु कक्कड-कविल-केसु । पिङ्गल-लोयणु किय-वाल-वेसु ॥४॥
बीयउ सिरु वयणु वि णव-जुवाणु । उब्भिण्ण-वियड-भासुरि-समाणु ॥५॥
तइयउ सिरु धवलउ भयल-वयणु । फुरिआहरु दुर-णिड्डुरिय-णयणु ॥६॥
दुद्दरिसणु भीसणु वियड-दाढु । जिण-भवउ जिणवर-धम्म-बाढु ॥७॥
एत्थन्तरेँ पर-बल-मद्दणेण । वच्छत्थलेँ विद्धु जणद्दणेण ॥८॥

प्रकार युद्धमें पराङ्मुख काम दुष्ट, लोभ, मोह, मद और मानका *नाश किया, उसी प्रकार समस्त शत्रुओंको नष्ट करो और उनका* बल जीतो" ॥१-९॥

[१४] इन आशीर्वचनोंको लेकर लक्ष्मणने अपना धनुष आस्फालित किया। उसके शब्दसे सारा संसार बहरा हो गया। धरती काँप उठी। और शेषनाग डर गया। जबतक खर और लक्ष्मण लड़ते हैं, तबतक त्रिशिरने लक्ष्मणको ललकारा। 'मारो' कहते हुए वे दोनों आपसमें भिड़ गये, मानो गरजते हुए महागज हों। मानो भयंकर गरजना करते हुए सिंह हों। वे आते हुए बाणोंका छेदन करने लगे। मोगर खुरपे और कर्णिक गिरने लगे, मानो जीवोंसे जीव क्षयको प्राप्त होने लगे। इसी बीच, अतुलपराक्रमी पुरुषोत्तम लक्ष्मणने अर्धेन्दु छोड़ा उससे त्रिशिर उछल गया, किसी प्रकार वह खण्डित नहीं हुआ। धनुष गिरा दिया गया और ध्वजदण्ड छिन्न-भिन्न हो गया। बार-बार त्रिसिर बहुगुण धनुष लेता, लक्ष्मण उसे छिन्न-भिन्न कर देता, वह एक क्षण भी नहीं ठहरता, उसी प्रकार, जिस प्रकार भाग्यविहीन व्यक्तिका धन ॥१-९॥

[१५] धनुष सर सारथि और छत्र दण्ड, जब तीरोंके द्वारा सौ-सौ टुकड़े कर दिये गये, तो अमर्षसे क्रुद्ध दुर्धर विद्याधरने अपनी विद्याका स्मरण किया। उसने अपनेको बढ़ता हुआ बताया. तीन मुखों और तीन सिरोंसे समान। पहला सिर कठोर कपिल केशवाला था। पीली आँखोंवाला और बाल रूपवाला। दूसरा सिर और मुख नवयुवक था। निकली हुई भयंकर असुरिसे सहित, तीसरा सिर धवल और धवल मुख था। फड़कते हुए अधरों और आधे डरावने नेत्रोंवाला। दुर्दर्शनीय भीषण विकट दाढ़ोंवाला जिनभक्त और जिनवरके धर्ममें एकनिष्ठ। इसी बीच शत्रुबल मर्दन करनेवाले लक्ष्मणने

घत्ता

णाराऍहिँ भिन्देँवि सीसइँ छिन्देँवि रिउ महि-मण्डलेँ पाडियउ ।
सुरवरेँहिँ पवण्डेँहिँ सहुँ भुव-दण्डेँहिँ कुसुम-वासु सिरेँ पाडियउ ॥९॥

●

अट्ठतीसमो संधि

तिसिरउ लक्खणेँण समरङ्गणेँ घाइउ जावेँहिँ ।
तिहुअण-डमर-करु दहवयणु पराइउ तावेँहिँ ॥

[१]

लेहु विसज्जिउ जो सुर-सीहहोँ । अग्गऍ पडिउ गम्पि दसगीवहोँ ॥१॥
पढिउ णाइँ यहु-दुक्खहँ भारु । णाइँ णिसायर-कुल-संघारु ॥२॥
णाइँ मयङ्करु कलहहोँ मूलु । णाइँ दसाणण-मरणा-सूलु ॥३॥
लेहेँ कहिउ सव्वु अहिणाणेँहिँ । 'सम्बुकुमारु उलग्गइ पाणेँहिँ ॥४॥
अण्णु वि खग्ग-रयणु उद्दालिउ । खर-धरिणिहेँ हियवउ विद्दारिउ ॥५॥
तं णिसुणेवि वे वि जमभूसण । पर-वलेँ भिडिय गम्पि खर-दूसण ॥६॥
णारि-रयणु णिरुवमु सोहग्गउ । अच्छइ रावण तुज्झु जेँ जोग्गउ' ॥७॥
लेहु णिऍवि अत्थाणु विसज्जेँवि । पुप्फविमाणेँ चडिउ गलगज्जेँवि ॥८॥
करेँ करवालु लेप्पिणु धाइउ । णिविसेँ दण्डारण्णु पराइउ ॥९॥

घत्ता

ताव जणद्दणेँण खरदूसण-साहणु रुद्धउ ।
थिउ चउरङ्गु वलु णहेँ णिवलु संसएँ छुद्धउ ॥१०॥

[२]

तो एत्थन्तरेँ दीहर-णयणेँ । लक्खणु पोमाइउ दहवयणेँ ॥१॥
'वरि एक्कल्लओ वि पञ्चाणणु । णउ सारङ्ग-णिवहु चुण्णाणणु ॥२॥
वरि एक्कल्लओ वि मयलञ्छणु । ण य णक्खत्त-णिवहु णिल्लञ्छणु ॥३॥

उसे वक्षःस्थलमें बेध दिया। तीरोंसे छेदकर सिरोंको भेदकर उसने, शत्रुको धरतीपर गिरा दिया। देवश्रेष्ठोंने अपने प्रचण्ड हाथोंसे लक्ष्मणके सिरपर पुष्पवर्षा की ॥१-९॥

•

अड़तीसवीं सन्धि

जब लक्ष्मणने त्रिसिरको युद्धके मैदानमें मार दिया, तब त्रिभुवनके लिए भय उत्पन्न करनेवाला रावण वहाँ पहुँचा।

[१] जो लेख भेजा गया था, वह जाकर सुरसिंह रावणके सामने पड़ा हुआ था। वह इस प्रकार पड़ा हुआ था जैसे अनेक दुःखोंका भार हो, जैसे निशाचर-कुलका संहार हो, जैसे कलहकी भयंकर जड़ हो, जैसे दशाननके सिरका दर्द हो। लेखपत्रने अभिज्ञानसे सब बता दिया कि शम्बुकुमार प्राणोंसे जा लगा है, और खड्गरत्न छीन लिया गया है। खर-की पत्नीके हृदयको विदारित कर दिया है; यह सुनकर यशो-भूषण खर और दूषण जाकर शत्रु सेनासे भिड़ गये हैं। वहाँ अनुपम और सुभग नारीरत्न है, हे रावण, वह तुम्हारे योग्य है।" लेखपत्र पढ़कर, और अपना आस्थान छोड़कर, रावण गरजकर पुष्पक विमानमें चढ़ गया, और हाथमें तलवार लेकर दौड़ा; एक पलमें वह दण्डकारण्य पहुँच गया। तब लक्ष्मणने खर-दूषणकी सेनाको अवरुद्ध कर दिया। संशयमें पड़ी हुई चतुरंग सेना आकाशमें निश्चल रह गयी ॥१-१०॥

[२] तब इसी बीच दीर्घनयन दशमुखने लक्ष्मणकी प्रशंसा की—'अकेला भी, सिंह अच्छा, (गुणहीन) मृग समूह अच्छा नहीं। अकेला भी मृग-लांछन (चन्द्रमा) अच्छा, परन्तु लांछन

वरि एक्कल्लओ वि रयणायरु । णउ अलवाहिणि-णियरु स-वित्थरु ॥४॥
वरि एक्कल्लओ वि मइसायरु । णउ वण-णिवहु स-रुक्ख-गिरिवरु ॥५॥
चउदह सहस एक्कु जो रुम्भइ । सो समरङ्गणें मइँ मि णिसुम्भइ ॥६॥
पेक्खु केम पहरन्तु पईसइ । धणुहरु सरु संधाणु ण दीसइ ॥७॥

घत्ता

णहि गय णहि तुरय णाहिँ रहवर णाहि धय-दण्डइँ ।
णवरि पडन्ताइँ दीसन्ति महियले रुण्डइँ ॥८॥

[३]

हरि पहरन्तु पसंसिउ जावेँहिँ । आणइ णयणकडक्खिय तावेँहिँ ॥१॥
सुकइ-कह व्व सु-सन्धि सु-सन्धिय । सु-पय सु-वयण सु-सद्द सु-बद्धिय ॥२॥
थिर-कलहंस-गमण गइ-मन्थर । किस मज्झारेँ णियम्बे सु-वित्थर ॥३॥
रोमावलि मयरहरुत्तिण्णी । णं पिम्पिलि-रिञ्छोलि विलिण्णी ॥४॥
अहिणव-हुण्ड-पिण्ड-पीण-त्थण । णं मयगल उर-खम्भ-णिसुम्भण ॥५॥
रेहइ वयण-कमलु अकलङ्कउ । णं माणस-सरेँ वियसिउ पङ्कउ ॥६॥
सु-ललिय-लोयण ललिय-पसण्णइँ । णं वरइत्त मिलिय वर-कण्णइँ ॥७॥
घोलइ पुट्ठिहिँ वेणि महाइणि । चन्दण-लयहिँ लुलइ णं णाइणि ॥८॥

घत्ता

किं बहु-चविएँण तिहिँ भुवणेँहिँ जं जं चङ्गउ ।
तं तं मेलवेँवि णं दइवेँ णिम्मिउ अङ्गउ ॥९॥

[४]

सो एत्थन्तरेँ णिय-कुल-दीवेँ । रामु पसंसिउ पुणु दहगीवेँ ॥१॥
'जीविउ एक्कु सहलु पर एयहोँ । जसु सुहवत्तणु गउ परिछेयहोँ ॥२॥

रहित तारा-समूह अच्छा नहीं, रत्नाकर अकेला ही अच्छा, विस्तारवाला, नदियोंका समूह, अच्छा नहीं। अकेली आग अच्छी, परन्तु गिरिवर और वृक्षोंसे सहित वन-समूह अच्छा नहीं। एक जो चौदह हजार को रोक लेता है, वह युद्धके मैदानमें मुझे भी मार देगा। देखो प्रहार करता हुआ कैसा प्रवेश करता है, धनुष सर और संधान दिखाई नहीं देता। न हाथी, न घोड़े, न रथवर और न ध्वजदण्ड केवल महीतलपर गिरते हुए धड़ दिखाई पड़ते हैं ॥१-८॥

[३] जब वह प्रहार करते हुए लक्ष्मणकी प्रशंसा कर रहा था, तभी उसे सीता दिखाई दी, जो सुकविकी कथाकी तरह सुन्दर सन्धियोंसे जुड़ी हुई थी, सुन्दर पद (चरण और पद); सुवचन (सुन्दर बोली और वचन); सुशब्द (सुन्दर शब्दों वाली); और सुबद्ध (अच्छी तरह निबद्ध) थी। स्थिर कलहंस के समान चलनेवाली, गतिमें मन्थर, मध्यमें कृश, नितम्बमें अत्यन्त विस्तारवाली, नाभिप्रदेशसे निकली हुई रोमराजि इस प्रकार थी मानो चींटियोंकी कतार विलीन हो गयी हो। जो अभिनव (हुंड) शरीर। पीन स्तनोंवाली थी मानो उर रूपी खम्भोंको नाश करनेवाला मतवाला गज हो। उसका कलंक रहित मुख कमल शोभित है, मानो मानसरोवरमें कमल खिला हुआ हो। सुन्दर लोचन ऐसे हैं मानो ललित प्रसन्न श्रेष्ठ कन्याओंको वर मिल गये हों। उसके पुट्ठों पर वेणी इस प्रकार व्याप्त है मानो चन्दन लताओंसे नागिन लिपटी हुई हो। अधिक कहनेसे क्या तीनों भुवनोंमें जो-जो श्रेष्ठ है उन सबको मिलाकर मानो विधाताने उसके शरीरकी रचना की है ॥१-९॥

[४] इसके अनन्तर अपने कुलके दीपक रावणने रामकी प्रशंसा की। "केवल इसका जीवन सफल है कि जिसका सुभगत्व

जेण समाणु एह धण जम्पइ । मुह-मुहेण तम्बोलु समप्पइ ॥३॥
हत्थें हत्थु धरेंवि आलावइ । चलण-जुअलु उच्छङ्गें चडावइ ॥४॥
जं आलिङ्गइ वलय-सणाहहिँ । मालइ-माला-कोमल-बाहहिँ ॥५॥
जं पेल्लिज्जइ-थण-भारक्कें हिँ । मुहु परिचुम्बइ णाणा-भङ्गेंहिँ ॥६॥
जं अवलोयइ णिम्मल-धारेंहिँ । णयणहिँ विब्भम-भरिय-वियारेंहिँ ॥७॥
जं अणुहुञ्जइ इच्छेँ वि णिय-मणेँ । तासु सहलु को सयलें वि तिहुअणेँ ॥८॥

घत्ता

धण्णउ एहु णरु जसु एह णारि हियइच्छिय ।
जाव ण लइय मइँ कउ अम्हहँ ताव सुहच्छिय' ॥९॥

[५]

सीय णिएवि जाउ उम्माहउ । दहमुहु वम्मह-सर-पहराहउ ॥१॥
पहिलएँ वयणु वियारेंहिँ भज्जइ । पेम्म-परव्वसु कहोँ वि ण लज्जइ ॥२॥
बीयएँ मुह-पासेउ वलग्गइ । सरहसु गाढालिङ्गणु मग्गइ ॥३॥
तइयएँ अङ्ग विरहाणलु तप्पइ । काम-गहिल्लउ पुणु पुणु जम्पइ ॥४॥
चउथएँ णीससन्तु णउ थक्कइ । सिरु संचालइ भउँहउ वक्कइ ॥५॥
पञ्चमें पञ्चम-झुणि आलावइ । विहसेंवि दन्त-पन्ति दरिसावइ ॥६॥
छट्ठएँ अङ्गु वलइ कर मोडइ । पुणु दाढीयउ लएप्पिणु तोडइ ॥७॥
सहइ तल्लवेल्लि सत्तमयहोँ । मुच्छउ एन्ति जन्ति अट्ठमयहोँ ॥८॥
णवमउ वट्टइ मरणहोँ ढुक्कउ । दसमएँ पाणहिँ कह व ण मुक्कउ ॥९॥

घत्ता

दहमुहु 'दहमुहेंहिँ जाणइ किर सव्वएँ भुञ्जमि' ।
अप्पउ संभवइ 'णं णं सुर-लोयहोँ कज्जमि' ॥१०॥

चरम सीमापर पहुँचा हुआ है, जिसके साथ यह कन्या बात करती है, बार-बार उन्हें पान समर्पित करती है। हाथमें हाथ लेकर बात करती है। चरण युगलको अपनी गोदमें रखती है। जो यह वलयोंसे सहित, मालती मालाके समान कोमल बाहों-से आलिंगन करती है, जो स्तनरूपी महागजोंसे प्रेरित करती है, जो नाना भंगिमाओंसे मुखका चुम्बन करती है, जो स्वच्छ तारिकाओं वाले विभ्रमभरित विकारवाले नेत्रोंसे देखती है, जो अपने मनमें चाहकर अनुभोग करती है, ऐसे उस रामका समस्त त्रिभुवनमें कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं है। वह मनुष्य धन्य है जिसकी यह मनपसन्द स्त्री है, जब तक मैं इसे नहीं लेता, तब तक शरीरको सुख कहाँ ? ॥१-९॥

[५] सीताको देखकर रावणको उन्माद होने लगा। रावण कामदेवके तीरोंका प्रहार हो गया। पहली अवस्थामें उसका मुख विकारोंसे भग्न हो जाता है, प्रेमके वशीभूत वह किसीसे भी लज्जित नहीं होता। दूसरीमें मुखसे पसीना निकलने लगा। और वह हर्षपूर्वक प्रगाढ़ आलिंगन माँगने लगता। तीसरीमें वह विरहानलसे अत्यधिक संतप्त हो उठता। कामसे ग्रस्त होकर वह बार-बार बोलता। चौथीमें निःश्वास लेते हुए नहीं थकता। सिर हिलाता और भौंहोंको टेढ़ी करता। पाँचवीं में पंचम स्वरमें अलाप करता और हँसकर अपनी दन्तपंक्ति दिखाता। छठीमें शरीरको मोड़ता और हाथ मोड़ता फिर दाढ़ीको पकड़कर नोचता। सातवीं अवस्थामें तड़फने लगता। आठवींमें मूर्च्छा आती और जाती। नौवींमें मृत्यु निकट आ पहुँची। दसवीं अवस्थामें वह प्राणोंसे किसी प्रकार मुक्त भर नहीं हुआ। दसमुख अपनी संस्तुति करता है, "मैं दसमुखोंसे जानकीका बलपूर्वक आलिंगन करूँगा, नहीं-नहीं सुरलोकको लज्जित करूँगा" ॥१-१०॥

[६]

तो एत्थन्तरेँ सुर-संतासेँ । चिन्तिउ एक्कु उवाउ दसासेँ ॥१॥
अवलोयणिय विज्ज मणेँ झाइय । 'भे आएसु' भणन्ति पराइय ॥२॥
'किं घोट्टेण महोवहि घोट्टमि । किं पायालु णहङ्गणेँ लोट्टमि ॥३॥
किं सहुँ सुरेँहिँ सुरेन्दु परज्जमि । किं मयरद्धय-पुरि-गाउ भञ्जमि ॥४॥
किं जम-महिस-सिङ्गु मुसुमूरमि । किं सेसहोँ फणिमणि संचूरमि ॥५॥
किं तक्खयहोँ दाढ उप्पाडमि । काल-कियन्त-वयणु किं फाडमि ॥६॥
किं रवि-रह-तुरङ्ग उद्दालमि । किं गिरि मेरु करग्गेँ टालमि ॥७॥
किं तइलोक्क-चक्कु संघारमि । किं अत्थक्कएँ पलउ समारमि' ॥८॥

घत्ता

वुत्तु दसाणणेँण 'एक्केण वि ण वि महु कज्जु ।
तं संकेउ कहेँ जेँ हरमि एह तिय अज्जु ॥९॥

[७]

दहवयणहोँ वयणेण सु-पुज्जएँ । पभणिउ पुणु अवलोयणि विज्जएँ ॥१॥
'जाव समुद्दावत्तु करेक्कहोँ । वज्जावत्तु चाउ अण्णेक्कहोँ ॥२॥
जावमोह वाणु करेँ एक्कहोँ । वायवु वारुणत्थु अण्णेक्कहोँ ॥३॥
जाम सीह गम्भीर करेक्कहोँ । करयलेँ चक्काउहु अण्णेक्कहोँ ॥४॥
ताम णारि को हरइ दिसेवहुँ । मणुएँ वासुएव-बलएवहुँ ॥५॥
इय पच्छण्ण वसन्ति वणन्तरेँ । तेसट्ठी-पुरिसहुँ अब्भन्तरेँ ॥६॥
जिण चउवीस अद्ध गोवद्धण । णव केसव राम णव रावण ॥७॥

घत्ता

ओए अवट्ठम इय वासुएव बलएव ।
जाव णव हिय रणेँ तिय ताम लइज्जइ केव ॥८॥

[८]

अहवइ एण काइँ सुणेँ रावण । एह णारि तिहुअण-संतावण ॥१॥
लइ लइँ जइ अजरामरु वट्टहि । लइ लइ जइ दप्पहेँण पयट्टहि ॥२॥

[६] इसके अनन्तर देवोंको त्रास देनेवाले रावणने एक उपाय सोचा। उसने अवलोकिनी विद्याका अपने मनमें ध्यान किया। वह 'आदेश दो' कहती हुई पहुँची, और बोली, "क्या घूँटसे समुद्रको पी लूँ ? क्या पातालको आकाशमें लौटा दूँ ? क्या देवोंके साथ इन्द्रको जीत लूँ ? क्या कामदेव नगरीके गजको भग्न कर दूँ ? क्या यमके भैंसेके सींग चकनाचूर कर दूँ ? क्या शेषनागके फणमणिको चूर-चूर कर दूँ। क्या तक्षककी दाढ़ उखाड़ लूँ ? क्या काल और यमके मुखको फाड़ डालूँ ? क्या रविरथके घोड़ोंको छीन लूँ ? क्या गिरि या पहाड़को अपने हाथके अग्रभागसे टाल दूँ ? क्या त्रिलोकचक्रका संहार कर दूँ ? क्या अविलम्ब प्रलय मचा दूँ ?" दशानन बोला "इनमें-से मुझे एकसे भी काम नहीं है। ऐसा कोई संकेत बताओ, जिससे आज मैं इस स्त्रीका अपहरण कर सकूँ" ॥१-९॥

[७] दसमुखका मुख देखते हुए आदरणीय अवलोकिनी विद्याने कहा—"जबतक एकके हाथमें समुद्रावर्त और दूसरेके हाथमें वज्रावर्त धनुष है। जबतक एकके हाथमें आग्नेय बाण है और दूसरेके हाथमें वारुण और वायव्य बाण हैं, जबतक एकके हाथमें गम्भीर हल है, और दूसरेके हाथमें चक्रायुध है, तबतक...वासुदेव और बलदेवसे बलपूर्वक सीताका अपहरण कौन कर सकता है ? ये त्रेषठ महापुरुषोंमें-से हैं, जो यहाँ वनान्तरमें प्रच्छन्न रूपसे रह रहे हैं। जिनवर चौबीस, आधे अर्थात् बारह चक्रवर्ती, नव बलदेव, नौ नारायण और नौ प्रतिनारायण। उनमें-से ये आठवें बलदेव और वासुदेव हैं। जबतक तुम्हारे मनमें लड़नेकी इच्छा नहीं है, तबतक उस स्त्रीको तुम कैसे ले सकते हो ? ॥१-८॥

[८] अथवा इससे क्या ? हे रावण ! तुम सुनो—यह स्त्री त्रिभुवनको सतानेवाली है। यदि तुम अजर-अमर हो, तो इसे

लइ लइ जइ वउ-तउ खण्डहि । लइ लइ जइ जिण-सासणु छण्डहि ॥३॥
लइ लइ जइ सुरवरहुँ ण कंपहि । लइ लइ जइ णरयहों भमु सङ्कहि ॥४॥
लइ लइ जइ परलोउ ण जाणहि । लइ लइ जइ णिय-आउ ण माणहि ॥५॥
लइ लइ जइ णिय-रज्जु ण इच्छहि । लइ लइ जइ जम-सासणु पेच्छहि ॥६॥
लइ लइ जइ णिव्विण्णउ पाणहुँ । लइ लइ जइ उरु उप्पहि बाणहुँ' ॥७॥
तं णिसुणेवि वयणु असुहावणु । अहि-मयणाउरु पभणइ रावणु ॥८॥

घत्ता

'माणमि एह तिय जं भिज्जइ एक्कु मुहुत्तउ ।
सिव-सासय-सुहहों तहों पासिउ एउ बहुत्तउ' ॥९॥

[९]

विसयासत्त-चित्तु परियाणेंवि । बिहणेँ वुत्तु णिरुत्तउ जाणेंवि ॥१॥
'णिसुणि दसाणण पिसुणमि भेउ । वेण्ह वि अत्थि एक्कु सङ्केउ ॥२॥
एहु जो दीसइ सुहडु रणङ्गणें । धावन्तु खर-दूसण-साहणेँ ॥३॥
एयहों सीहणाउ आयण्णेंवि । इट्ठ-कलत्तु व तिण-समु मण्णेंवि ॥४॥
धावइ सीहु जेम ओरालें वि । वज्जावत्तु चाउ अप्फालेंवि ॥५॥
तहुँ पुणु पच्छएँ धण उद्दालहि । पुप्फ-विमाणें तुहुँ वि संचालहि' ॥६॥
तं णिसुणेप्पिणु पभणिउ राउ । 'तो पइँ पइँ जें करेसउ णाउ' ॥७॥
पहु-आएसें विज्ज पधाइय । णिविसें तं संगामु पराइय ॥८॥

घत्ता

लक्खणु राहिव-सरु जं णिसुणिउ णाउ भयङ्करु ।
धाइउ दासरहि णहें स-धणु णाइँ णव-जलहरु ॥९॥

लो लो। यदि तुम्हें कुमार्गमें जाना है, तो इसे लो लो। यदि अपना बड़प्पन खण्डित करना चाहते हो तो इसे लो लो। यदि जिनशासन छोड़ना चाहते हो तो इसे लो लो। यदि सुरवरोंसे लज्जित नहीं होते तो इसे लो लो। यदि तुम नरकके लिए अपना गमन सज्जित करना चाहते हो तो इसे लो लो। यदि परलोक नहीं जानते हो, तो इसे लो लो। यदि अपनी आयुको तुम नहीं मानते तो इसे लो लो। यदि अपने राज्य को नहीं चाहते तो इसे लो लो। यदि यमशासन देखना चाहते हो तो इसे लो लो। यदि अपने प्राणोंसे विरक्त हो तो इसे लो लो यदि प्राणोंसे उड़ना चाहते हो, तो इसे लो लो।" इन असुहावने। शब्दोंको सुनकर कामदेवसे अत्यन्त व्याकुल होकर रावण कहता है—"यही एक मनुष्यनी स्त्री है जो यदि एक मुहूर्तके लिए जिला देती है, तो उस शिवके शाश्वत सुखकी तुलनामें मेरे लिए यही बहुत है" ॥१–९॥

[९] रावणके विषयासक्त चित्तको पहचानकर और निश्चित जानकर विद्याने कहा—"हे दशानन सुनो, भेद बताती हूँ। उन दोनोंके बीच एक संकेत है, यह जो युद्धके मैदानमें सुभट दिखाई देता है, जो खर-दूषणकी सेनामें युद्धरत है। इसका सिंहनाद सुनकर अपनी प्रिय पत्नीको तिनकेके समान समझकर यह सिंहके समान गरजकर और अपना वज्रावर्त धनुष आस्फालित कर दौड़ेगा। तुम फिर बादमें धन्या (सीता) को उठा लेना, और पुष्पक विमानमें डालकर उसे चला देना।" यह सुनकर राजाने कहा—"तो तुम जल्दी नाद करो।" स्वामीके आदेशसे विद्या दौड़ी और एक पलमें संग्राम स्थलपर पहुँची। जिसमें लक्ष्मणका स्वर गृहीत है, ऐसा सिंह-नाद जब सुनाई दिया तो राम धनुष सहित ऐसे दौड़े जैसे आकाशमें नवमेघ हो ॥१–९॥

[१०]

भीसणु सीह-णाउ णिसुणेप्पिणु । धणुहरु करेँ सज्जीउ करेप्पिणु ॥१॥
तोणा-जुवलु लएवि पधाइउ । 'मच्छुडु लक्खणु रणेँ विणिवाइउ' ॥२॥
कुढेँ लग्गन्तेँ रामेँ सुणिमित्तइँ । सउणु ण देन्ति होन्ति दु-णिमित्तइँ ॥३॥
फुरइ स-बाहउ वामउ लोयणु । पवहइ दाहिण-पवणु अलक्खणु ॥४॥
वायसु विरसु रसइ सिव कन्दइ । अग्गएँ कुहिणि भुअङ्गमु छिन्दइ ॥५॥
जम्बू पक्कुरन्त उड्डाइय । णाइँ णिसारा सयण पराइय ॥६॥
दाहिणेण पिङ्गलय समुट्ठिय । णाइँ णव गह विवरीय परिट्ठिय ॥७॥
तो वि वीरु असगणेँ वि धाइउ । तक्खणेँ तं सङ्गामु पराइउ ॥८॥

घत्ता

दिट्ठइँ राहवेँण लक्खण-सर-हएँहिँ खुडियइँ ।
गयण-महासरहों सिर-कमलइँ महियलेँ पडियइँ ॥९॥

[११]

दिट्ठु रणङ्गणु राहवचन्देँ । रमिउ वसन्तु णाइँ गोविन्देँ ॥१॥
कुण्डल-कडय-मउड-फल-दरिसिय । दणु-दवणा-मञ्जरिय पदरिसिय ॥२॥
गिद्धावलि-किय-चकन्दोलउ । णरवर-सिरइँ लएप्पिणु केलउ ॥३॥
रणेँ खेल्लन्ति परोप्परु चच्चरि । पुणु पियन्ति सोणिय-कायम्बरि ॥४॥
तेहउ समर-वसन्तु रमन्तउ । लक्खणु पोमाइउ वहरन्तउ ॥५॥
'साहु वच्छ पर तुज्झु जि छज्जइ । अप्पणाहों कासु पउ पडिवज्जइ ॥६॥
पइँ इक्खाउ-वंसु उज्जालिउ । जस-पडहउ तिहुअणेँ अप्फालिउ' ॥७॥
तं णिसुणेप्पिणु भणइ महाइउ । 'विहडउ किंवउ देव तं भाइउ ॥८॥

घत्ता

मेल्लेवि जणय-सुय किं राहव थाणहों चलियउ ।
अक्खइ मज्झु मणु हिय जाणइ केण वि छलियउ' ॥९॥

[१०] भीषण सिंहनादको सुनकर, धनुषको अपने हाथमें सज्जित कर, तथा तरकस युगल लेकर राम दौड़े, शायद लक्ष्मण युद्धमें मारे गये हैं राम का पीछा करते हुए शकुन शुभ निमित्त नहीं दे रहे थे, दुर्निमित्त हो रहे थे। चाँद सहित उनका बायाँ नेत्र फड़क रहा था। लक्षणहीन दक्षिण पवन बह रहा था। कौआ विरस बोल रहा था। शृंगाल रो रहा था। आगे साँप मार्ग काट रहा था। सियार लँगड़ाता हुआ दौड़ा, जैसे मना किये जानेपर स्वजन आ गये हों। दायीं ओरसे नाग उठा। आकाशमें नवों ग्रह विपरीत स्थितिमें प्रतिष्ठित हो गये। तब वह वीर इन सबकी उपेक्षा करता हुआ दौड़ा, और एक क्षणमें उस संग्रामभूमिमें पहुँच गया। रामने लक्ष्मणके तीररूपी हंसोंके द्वारा तोड़े गये, आकाशरूपी महासरोवरके सिररूपी कमलोंको धरतीतलपर पड़ा हुआ देखा ॥१-२॥

[११] राघवचन्द्रने युद्ध प्रांगणको इस प्रकार देखा जैसे लक्ष्मणने वसन्त क्रीड़ा की हो। जिसमें कुण्डल-कटक-मुकुटरूपी फल दिखाई पड़ रहे थे, दनुरूपी दमन मंजरी दिखाई दे रही थी, गीधोंकी कतारों द्वारा नरवरोंके सिररूपी गेंदोंको लेकर चक्राकार आन्दोलन किया जा रहा था, युद्धमें परस्पर चर्चरी खेल खेला जा रहा था, और फिर रक्तरूपी मदिराका पान किया जा रहा था, ऐसे उस युद्धरूपी वसन्तमें रमण और प्रहार करते हुए लक्ष्मणकी रामने प्रशंसा की—"हे वत्स, साधु, यह केवल तुम्हें शोभा देता है, और दूसरे किसके लिए यह उपयुक्त हो सकता है ? तुमने इक्ष्वाकु कुलको आलोकित किया है। तुमने अपने यशका डंका तीनों लोकोंमें बजाया है।" यह सुनकर आदरणीय लक्ष्मण कहता है—"हे देव, यह बहुत बुरा किया जो आप आये। हे राम, जनकसुताको छोड़कर आप उस स्थानसे क्यों चले ? मेरा मन कहता है कि सीता हर ली

[१२]

पुणरवि वुच्चइ मसाय-वयणेँ । 'हउँ ण करेमि णाउ किउ अयणेँ ॥१॥
तं णिसुणेवि णियत्तइ जावँहिं । सीया-हरणु पढुक्किउ तावँहिं ॥२॥
आउ दसाणणु पुप्फ-विमाणेँ । णाइँ पुरन्दरु णिविया-जाणेँ ॥३॥
पासु पढुक्किउ राहव-घरिणिहेँ । मत्त-गइन्दु जेम पर-करिणिहेँ ॥४॥
उभय-करेँहिं संचालिय-थाणहोँ । णाइँ सरीर-हाणि अप्पाणहोँ ॥५॥
णाइँ कुलहोँ मविति हक्कारिय । लङ्कहेँ सङ्क णाइँ पइसारिय ॥६॥
णिसियर-लोयहोँ णं वज्जासणि । णाइँ भयङ्कर-राम-सरासणि ॥७॥
णं जस-हाणि खाणि बहु-दुक्खहुँ । णं परलोय-कुंडिणि किय दुक्खहुँ ॥८॥

घत्ता

तक्खणेँ रावणेण ढोइउ विमाणु आयासहोँ ।
कालेँ कुद्धएँण छिउ जीविउ णं वण-वासहोँ ॥९॥

[१३]

चलिउ विमाणु जं जेँ गयणङ्गणेँ । सीयएँ कलुणु पकन्दिउ तक्खणेँ ॥१॥
तं कुवारु सुणेवि महाइउ । धुणेँ वि सरीरु जडाइ पधाइउ ॥२॥
पहउ दसाणणु चञ्चू-घाएँहिं । पक्खुक्खेवेँहिं णहर-णिहाएँहिं ॥३॥
एक्क-वार ओससइ ण जावेँहिं । सयसय-वार भडप्पइ तावेँहिं ॥४॥
आउ विसण्ठुलु वइरि-वियारणु । चन्दहासु मणेँ सुमरइ पहरणु ॥५॥
सीय वि धरइ णियङ्गु वि रक्खइ । लज्जइ सव्वविसु णयणकडक्खइ ॥६॥
दुक्खु-दुक्खु तेँ धीरेँ वि अप्पउ । कर-णिट्ठुर-दढ-कढिण-तलप्पउ ॥७॥
पहउ विहङ्गु पडिउ समरङ्गणेँ । देवेँहिं कलयलु कियउ णहङ्गणेँ ॥८॥

गयी हैं, किसीने छल किया है।" ॥१-९॥

[१२] मरकतमणिके रंगवाले लक्ष्मणने फिर कहा, "मैंने नाद नहीं किया किसी दूसरेने किया है।" यह सुनकर राम जबतक वापस आते हैं तबतक सीताहरण आ पहुँचता है। दशानन पुष्पक विमानमें आया, जैसे इन्द्र अपने शिविकायानमें आया हो। वह रामकी पत्नीके निकट पहुँचा, जिस प्रकार मतवाला गजेन्द्र हथिनीके पास पहुँचता है। उसने दोनों हाथोंसे सीता को, अपनी शरीरहानिके समान उस स्थानसे उठा लिया, जैसे उसने अपने कुलकी भवितव्यताको ललकारा हो, जैसे लंका नगरीमें शंकाका प्रवेश कराया हो, मानो निशाचरलोकके लिए वज्राशनि हो। जैसे रामका भयंकर धनुष हो। मानो यशकी हानि और अनेक दुखोंकी खान हो। मानो मूर्खोंके लिए परलोककी पगडण्डी हो। रावण तत्काल विमानसे उसे ढोकर आकाशमें ले गया मानो क्रुद्ध कालने वनवासी रामका जीवन अपहृत कर लिया हो।॥१-९॥

[१३] जैसे आकाशके आँगनमें विमान चला सीता देवीने तत्क्षण आक्रन्दन शुरू कर दिया। उस आक्रन्दनको सुनकर आदरणीय जटायु अपना शरीर धुनता हुआ दौड़ा आया। उसने चोंचोंके आघात और नखोंके निघातसे दशाननको आहत कर दिया। एक बार वह जबतक आश्वस्त होता, तबतक वह उसपर सौ-सौ बार झपटता। शत्रुओंका विदारण करनेवाला रावण अस्त-व्यस्त हो जाता है, वह मनमें चन्द्रहास तलवारकी याद करता है। वह सीताको भी पकड़ता है और अपने अंगकी रक्षा करता है। चारों दिशाओंमें देखता है, और लज्जित होता है। उसने बड़ी कठिनाईसे अपनेको धीरज बँधाया और हाथका कठोर दृढ़ कठिन झापड़ मारा। पक्षी समरांगणमें गिर पड़ा। आकाशमें देवोंने कल-कल निनाद

घत्ता

पडिउ जडाइ रणें खर-पहर-विहुर-कन्दन्तउ ।
जाणइ-हरि-बलहुँ तिण्हि मि चित्तइँ पाडन्तउ ॥९॥

[१४]

पडिउ जडाइ जं जें कन्दन्तउ । सीयएँ किउ अक्कन्दु महन्तउ ॥१॥
'अहों अहों देवहों रणें दुव्वियड्ढहों । णिव परिहास ण पालिय सण्ढहों ॥२॥
वरि सुहडत्तणु जम्बू-जीवहों । जो अब्भिट्टु समरें दसगीवहों ॥३॥
धाउ तुम्हेंहिं रक्खिउ वड्डुत्तणु । सूरहों तणउ दिट्ठु सूरत्तणु ॥४॥
सच्चउ चन्दु वि चन्द-गहिल्लउ । धम्मु वि सोत्तिउ हुउ दुम्महिल्लउ ॥५॥
वाउ वि चवलत्तणेंण दमिज्जइ । धम्मु वि रण्ड-सएहिँ लइज्जइ ॥६॥
वरुणु वि होइ सहावें सीयलु । तासु कहि मि किं सक्कइ पर-बलु ॥७॥
इन्दु वि इन्दवहेण रमिज्जइ । को सुरवर-सएहिँ रक्खिज्जइ ॥८॥

घत्ता

जाउ किं अग्गिएँण जगें अप्पणु ण अब्भुद्धरणउ ।
राहउ इह-भवहों पर-लोयहों जिणवरु सरणउ' ॥९॥

[१५]

पुणु वि पलाउ करन्ति ण थक्कइ । 'कहिँ लग्गउ लग्गउ जो सक्कइ ॥१॥
हउँ पावेण एण अक्कमणें वि । णिय तिहुअणु अ-मणूसउ मणें वि' ॥२॥
पुणु वि कलुणु कन्दन्ति पयट्टइ । 'एँहु अवसरु सप्पुरिसहों वट्टइ ॥३॥
अहह मइँ कवणु णेइ कन्दन्ती । लक्खण-राम वे वि जइ हुन्ती ॥४॥
हा हा दसरह माम गुणोयहि । हा हा जणय जणय अवलोयहि ॥५॥
हा अपराइएँ हा हा केक्कइ । हा सुप्पहें सुमित्तें सुन्दर-मइ ॥६॥
हा सत्तुहण भरह भरहेसर । हा भामण्डल भाइ सहोयर ॥७॥
हा हा पुणु वि राम हा लक्खण । को सुमरमि कहों कहमि अ-लक्खण ॥८॥

किया। तीव्र प्रहारसे दुःखी और आक्रन्दन करता हुआ जटायु रणमें जानकी, लक्ष्मण और राम तीनोंके चित्तको गिराता हुआ गिर पड़ा ॥१–९॥

[१४] जब तड़पता हुआ जटायु गिर पड़ा तो सीताने खूब आक्रन्दन किया। अरे-अरे, दुर्विदग्ध धूर्त देवोंके युद्धमें अपने परिहासकी भी तुम रक्षा नहीं कर सके। इस चंचुजीवी पक्षीका सुभटत्व श्रेष्ठ है कि जो युद्धमें दशाननसे भिड़ गया। तुम अपने बड़प्पनकी रक्षा नहीं कर सके। मैंने सूर्यका भी सूर्यत्व देख लिया। सचमुच चन्द्रमा भी चन्द्रमहीत है, ब्रह्मा ब्राह्मण है, शिव दुष्ट महिला है (अर्ध नारीश्वर होनेके कारण), वायु भी चपलतासे दमित कर लिया जाता है। धर्म भी सैकड़ों साँड़ोंके द्वारा ले लिया जाता है। वरुण भी स्वभावसे शीतल होता है। शत्रुसेनाको उससे क्या शंका हो सकती है? इन्द्र भी आकाशपथसे रमण करता है, इस प्रकार देवसमूहके द्वारा किसकी रक्षा की जा सकती है? कहनेसे क्या, जगमें दूसरा अभ्युद्धार करनेवाला नहीं है। इस लोकमें मेरे राम शरण हैं, और परलोकमें जिनवर ॥१–९॥

[१५] फिर भी सीता प्रलाप करती हुई ठहर नहीं रही थी। "जो हो सके तो पीछे लगो, पीछे लगो।" मैं इस पापीके द्वारा अपमानित कर और त्रिभुवनमें मनुष्यहीन समझकर ले जायी गयी हूँ। वह फिर भी करुण विलाप करती हुई कह रही थी कि सत्पुरुषके लिए यही अवसर है। अथवा यदि राम और लक्ष्मण दोनों होते तो कौन मुझे क्रन्दन करते हुए इस प्रकार ले जाता! हा गुणसागर ससुर दशरथ, हा पिता जनक देखो। हा अपराजिता! हा कैकेयी! हा सुप्रभा! हा सुन्दर मति सुमित्रा! हा शत्रुघ्न, भरतेश्वर भरत। हा सहोदर भाई भामण्डल। हा-हा फिर राम, हा लक्ष्मण। किसे स्मरण करूँ और

घत्ता

को लंघवइ मइँ को सुहि कहोँ दुक्खु महन्तउ ।
जहिँ जहिँ जामि हउँ तं तं जि पएसु पलित्तउ' ॥९॥

[१६]

तहिँ अवसरेँ वट्टन्तेँ सु-विउलएँ । दाहिण-लवण-समुद्दहोँ कूलएँ ॥१॥
अत्थि पयण्डु एक्कु विज्जाहरु । वर-करवाल-हत्थु रणेँ दुद्धरु ॥२॥
भामण्डलहोँ चलिउ ओलग्गएँ । सुअ कन्दन्ति सीय णहमग्गएँ ॥३॥
वलिउ विमाणु तेण पडिवक्खहोँ । 'णं तिय का वि भणइ मइँ रक्खहोँ ॥४॥
लक्खण-राम वे वि हक्कारइ । भामण्डलहोँ णामु उच्चारइ ॥५॥
मच्छुडु एह सीय ऍहु रावणु । अण्णु ण पर-कलत्त-संतावणु ॥६॥
अच्छउ णियहोँ पासु जाएवउ । पुणु समाणु अज्जु जुज्झेवउ' ॥७॥
एम भणेवि तेण हक्कारिउ । 'कहिँ तिय लेवि जाहि' पच्चारिउ ॥८॥

घत्ता

'विहिँ मि भिडन्ताहुँ जिह हणइ एक्कु जिह भज्जइ ।
सेण्णहेँ वि जणय-सुय वलु वलु कहिँ रावण गम्मइ' ॥९॥

[१७]

वलिउ दसाणणु तिहुअण-कण्टउ । सीहहोँ सीहु जेम अब्भिट्टउ ॥१॥
जेम गइन्दु गइन्दहोँ धाइउ । मेहहोँ मेहु जेम उद्धाइउ ॥२॥
भिडिय महावल विज्जा-पाणेँहिँ । वे वि परिट्ठिय सिविया-जाणेँहिँ ॥३॥
वे वि पसाहिय णाणाहरणेँहिँ । वेण्णि जि भावरन्ति णिय-करणेँहिँ ॥४॥
वेण्णि वि घाय देन्ति अवरोप्परु । मणेँ विरुद्धु भामण्डल-किङ्करु ॥५॥
वर-करवालु करेप्पिणु करयलेँ । पहउ दसाणणु वियड-उरत्थलेँ ॥६॥
पडिउ घुलेप्पिणु अण्णुव-जोत्तेँहिँ । रुहिरु पदरिसिउ दसहिँ मि सोत्तेँहिँ ॥७॥
पुणु विज्जाहरेण पच्चारिउ । 'सुरवर-समर-सएँहिँ अ-णिवारिउ ॥८॥
तुहुँ सो रावणु तिहुवण-कण्टउ । एक्कहेँ घाएँ णवर पलोट्टिउ' ॥९॥

यह अलक्षण किसे बताऊँ। मुझे कौन सान्त्वना देता है? कौन सुधि है? किसे इतना बड़ा दुःख है। मैं जहाँ-जहाँ जाती हूँ, वह, वही प्रदेश जल रहा है ॥१-९॥

[१६] उस अवसरके आ पड़नेपर दक्षिण लवणसमुद्रके विशाल किनारेपर जिसके हाथमें श्रेष्ठ तलवार है ऐसे रणमें दुर्धर एक प्रचण्ड विद्याधर था। वह भामण्डलकी सेवामें जा रहा था। इसबीचमें आगे उसने सीताको आक्रन्दन करते हुए सुना। उसने शत्रुकी ओर विमान मोड़ा। मानो कोई स्त्री कह रही है कि मेरी रक्षा करो। वह राम और लक्ष्मण दोनोंको पुकारती है। भामण्डलका नाम लेती है। शायद यह सीता, और यह रावण है। क्योंकि पर-स्त्रीको सतानेवाला दूसरा नहीं हो सकता। राजा (भामण्डल) के पास जाना रहे आज इसके साथ मुझे लड़ना चाहिए—यह विचार कर उसने पुकारा और ललकारा कि तुम स्त्री लेकर कहाँ जाते हो? दोनोंके लड़नेपर, जिस प्रकार एक मारता है और जिस प्रकार दूसरा मारा जाता है। हे रावण, मुड़ो-मुड़ो, सीताको लेकर कहाँ जाते हो ॥१-९॥

[१७] त्रिभुवन कण्टक रावण मुड़ा, और जिस प्रकार सिंह सिंहसे भिड़ जाता है, जिस प्रकार गजेन्द्र गजेन्द्रपर आघात करता है, जिस प्रकार मेघके ऊपर मेघ दौड़ता है उसी प्रकार महाबली रावण और विद्याधर भिड़ गये। दोनों शिविकायानों-में प्रतिष्ठित थे। दोनों नाना आभरणोंसे प्रसाधित थे। दोनों अपने अस्त्रोंसे प्रहार कर रहे थे। दोनों एक दूसरेपर आक्रमण कर रहे थे। भामण्डलका अनुचर विद्याधर अपने मनमें विरुद्ध हो उठा। अपने हाथमें श्रेष्ठ तलवार लेकर उसने रावणके विशाल-वक्षःस्थलपर आघात कर दिया। घुटनोंके जोतोंसे(?)घूस-कर गिर पड़ा। दसों स्रोतोंसे रक्त बहता दिखाई दिया। विद्या-धर पुनः बोला; "क्या तुम सैकड़ों देवयुद्धोंमें दुर्निवार त्रिभुवन-

घत्ता

वेयणु लहेँवि रणेँ भडु उट्ठिउ कुरुदु स-मच्छरु ।
तहोँ विज्जाहरहोँ थिउ रासिहिँ णाइँ सणिच्छरु ॥१०॥

[१८]

उट्ठिउ चीसवाणि असि लेन्तउ । णाइँ स-विज्जु मेहु गज्जन्तउ ॥१॥
विज्जा-छेउ करेँवि विज्जाहरेँ । थक्किउ जम्बूदीवब्भन्तरेँ ॥२॥
पुणु दससिरु संचल्लु स-सीयउ । गहयलेँ णाइँ दिवायरु बीयउ ॥३॥
मज्झेँ समुद्दहोँ जयसिरि-माणणु । पुणु बोल्लेवएँ लग्गु दसाणणु ॥४॥
'काइँ गहिल्लिएँ मइँ ण समिच्छहि । किं महएवि-पट्टु ण समिच्छहि ॥५॥
किं तिकण्डइ रज्जु ण भुञ्जहि । किं ण वि सुरय-सोक्खु अणुहुञ्जहि ॥६॥
किं महु केण वि भग्गु मडप्फरु । किं कुरूउ किं कहिं मि असुन्दरु' ॥७॥
एम भणेँवि आलिङ्गइ जावेँहिँ । जणय-सुयएँ णिब्भच्छिउ तावेँहिँ ॥८॥

घत्ता

'दिवसेँहिं थोवएँहिँ तुहुँ रावण समरेँ जिणेवउ ।
अम्हहुँ वारियएँ राम-सरेँहिँ आलिङ्गेवउ' ॥९॥

[१९]

णिट्ठुर-वयणेँहिँ दोच्छिउ जावेँहिं । दहमुहु हुअउ विलक्खउ तावेँहिँ ॥१॥
'जइ मारमि तो एह ण पेच्छमि । बोल्लउ सव्वु हसेप्पिणु अच्छमि ॥२॥
अवसेँ कं दिवसु इ इच्छेसइ । सरहसु कण्ठ-ग्गहणु करेसइ ॥३॥
'अण्णु वि मइँ णिय-वउ पालेव्वउ । मणहरएँ पर-कलत्तु ण लएव्वउ' ॥४॥
एम भणेवि चल्लिउ सुर-डामरु । लङ्क पराइउ छत्त-महाधरु ॥५॥
सीयएँ वुत्तु 'ण पइसमि पट्टणेँ । अच्छमि एत्थु विउलेँ णन्दणवणेँ ॥६॥
जाव ण सुणमि वत्त भत्तारहोँ । ताव णिवित्ति मज्झु आहारहोँ' ॥७॥
तं णिसुणेँवि उववणेँ पइसारिय । सीसव-रुक्ख-मूलेँ बइसारिय ॥८॥

कण्टक यही रावण हो। एक ही आघातमें तुम केवल लोट-पोट हो गये!" चेतना पाकर कठोर और ईर्ष्यालु रावण उठा युद्धमें जैसे उस विद्याधरकी राशियोंमें शनिश्चर हो ॥१-१०॥

[१८] रावण तलवार लेकर इस प्रकार उठा जैसे बिजली सहित गरजता हुआ मेघ हो। विद्याधरकी शिखाका छेदन कर उसे जम्बूद्वीपके भीतर फेंक दिया। रावण फिर सीताके साथ चला, जैसे आकाशमें दूसरा चन्द्रमा हो। विजयश्रीको माननेवाला रावण समुद्रके मध्यमें फिर सीतासे कहने लगा—"हे पगली, तुम मुझे क्यों नहीं चाहती। महादेवीके पट्टकी इच्छा क्यों नहीं करतीं। निष्कण्टक राज्यका भोग क्यों नहीं करती। सुरत-सुखका भोग क्यों नहीं करतीं। क्या किसीने मेरे मानको भंग किया है? क्या मैं दुर्भग या असुन्दर हूँ।" यह कहकर जैसे ही वह आलिंगन करता है, वैसे ही जनकसुता सीताने उसकी भर्त्सना की—"हे रावण, तुम थोड़े ही दिनोंमें युद्धमें जीत लिये जाओगे। हमारे मना करनेपर भी तुम रामके तीरोंके द्वारा आलिंगित होओगे ॥१-९॥

[१९] जब उसने कठोर वचनोंमें निन्दा की तो रावण बहुत दुःखी हुआ। "यदि मैं इसे मार डालता हूँ तो मैं इसे देख नहीं सकूँगा। इसलिए सच बोलोंको हँसकर टालते रहता हूँ। अवश्य ही किसी दिन यह चाहेगी और हर्षपूर्वक कण्ठ ग्रहण करेगी। और मुझे भी अपने व्रतका पालन करना चाहिए। बलपूर्वक दूसरेकी स्त्रीको ग्रहण नहीं करना चाहिए।" यह कहकर देवताओंके लिए भयानक वह चला। जिसने महावर प्राप्त किये हैं ऐसा वह लंका पहुँचा। सीता बोली—"मैं नगरमें प्रवेश नहीं करती। मैं इसी विशाल नन्दन वनमें रहती हूँ। जबतक मैं अपने पतिकी वार्ता नहीं सुनती, तबतक मैं आहारसे निवृत्ति ग्रहण करती हूँ।" यह सुनकर रावणने उसे उपवनमें प्रवेश

घत्ता

मेल्लेँवि सीय वणेँ गउ रावणु घरहोँ तुरन्तउ ।
धवलेँहिँ मङ्गलेँहिँ थिउ रज्जु स इं भुञ्जन्तउ ॥९॥

एगुणचालीसमो संधि

कुढेँ लग्गेप्पिणु लक्खणहोँ वलु धाम पडीवउ आवइ ।
तं जि कयाहरु तं जि तरु पर सीय ण अप्पउ दावइ ॥

[१]

णीसीयउ वणु अवयच्छियउ । णं सरवरु छिण्ण-विसज्जियउ ॥१॥
णं मेह-विन्दु णिप्फिज्जलउ । णं मुणिवर-वयणु अ-वच्छलउ ॥२॥
णं भोयणु लवण-जुत्ति-रहिउ । अरहन्त-विम्बु णं अ-वसहिउ ॥३॥
णं दुसि-विवज्जिउ किविण-धणु । तिह सीय-विहूणउ दिट्ठु वणु ॥४॥
पुणु जोअइ गुहिलेँहिँ पइसरेँवि । थिय जागइ जाणइ ओसरेँवि ॥५॥
पुणु जोवइ गिरि-विवरन्तरेँहिँ । थिय जाणइ विहक्केँवि कन्दरेँहिँ ॥६॥
तावन्तरेँ दिट्ठु जडाइ वणेँ । संचुण्णिय-गत्तउ पडिउ रणेँ ॥७॥

घत्ता

पहर-विहुर-घुम्मन्त-तणु जं दिट्ठु पक्खि णिहलियउ ।
तावेँहिँ बुज्झिउ राहवेँण सिय जाणइ केण वि छलियउ ॥८॥

[२]

पुणु दिण्ण तेण सुह वसु-हारा । उच्चारेँवि पञ्च णमोक्कारा ॥१॥
जं सारभूय जिण-सासणहोँ । जे मरण-सहाय भव्व-जणहोँ ॥२॥

कराया और शिंशपा वृक्षके नीचे उसे बैठा दिया। सीताको वनमें छोड़कर, रावण तुरन्त अपने घर गया, तथा धवल और मंगल गीतोंके द्वारा संस्तुत वह स्वयं राज्यका भोग करने लगा ॥१-९॥

●

उनतालीसवीं सन्धि

लक्ष्मणकी खोज कर राम जब वापस आते हैं तो वहाँ लतागृह है, वही वृक्ष है। परन्तु सीता अपनेको नहीं दिखाती।

[१] बिना सीताका वह वन अपवर्जित दिखाई दिया, मानो लक्ष्मीसे विसर्जित कमल हो, मानो बिजलीके बिना मेघबिन्दु हों, मानो वात्सल्यभावसे रहित मुनिके वचन हों, मानो लवणयुक्तिसे रहित भोजन हो। मानो अवासित जिन-प्रतिबिम्ब हो, मानो दानसे रहित कृपणका धन हो। सीतासे रहित वन रामको इसी प्रकार दिखाई पड़ा। राम फिर लताओं-में घुसकर देखते हैं, वह जानते हैं कि जानकी इनमें छिपकर बैठी है। फिर वह पहाड़ोंके विवरोंके भीतर देखते हैं, वह जानते हैं कि जानकी गुफाओंमें छिपकर स्थित है। उसके बाद वनमें उन्हें जटायु दिखाई दिया, नष्ट हो गया है शरीर जिसका, ऐसा वह युद्धमें पड़ा हुआ था। प्रहारोंसे विधुर जिसका शरीर घूम रहा है, ऐसे निर्दलित जटायु पक्षीको जब रामने देखा तो वह तभी समझ गये कि जानकी हर ली गयी है, और किसीने छल किया है ॥१-८॥

[२] फिर उन्होंने उसे (पक्षीको) पाँच णमोकार मन्त्रका उच्चारण कर आठ मूलगुण दिये कि जो जिनशासनके सार-

लक्खेहिँ जेहिँ हिउ होइ मइ । लक्खेहिँ जेहिँ परलोय-गइ ॥३॥
लक्खेहिँ जेहिँ संभवइ सुहु । लक्खेहिँ जेहिँ णिज्जरइ दुहु ॥४॥
ते दिण्ण विहङ्गहों राहवेंण । किय-णिसियर-णियर-पराहवेंण ॥५॥
'माणुज्जहि परम-सुहावहेंण । अणरण्णाणन्तवीर-पहेँण' ॥६॥
तं वयणु सुणेंवि सउणाहिवेंण । लइय वय णिम्मलिय पक्खिवरेंण ॥७॥
जं मुउ जडाइ हिय जणय-सुअ । धाहाविउ उब्भा करेंवि भुअ ॥८॥

घत्ता

'कहिँ हउँ कहिँ हरि कहिँ घरिणि कहिँ घरु कहिँ परियणु छिण्णउ ।
भूय-बलि व्व कुडुम्बु जगेँ हय-दइवें कह विक्खिण्णउ' ॥९॥

[३]

वलु एम भणेवि पमुच्छियउ । पुणु चारण-रिसिहिँ णियच्छियउ ॥१॥
चारण वि होन्ति अट्ठविह-गुण । जे णाण-पिण्ड सीलाहरण ॥२॥
फल-फुल्ल-पत्त-णह-गिरि-गमण । जल-तन्तुअ-जङ्घा-संचरण ॥३॥
तहिँ धीर सुधीर विसुद्ध-मण । णह-चारण आइय बेण्णि जण ॥४॥
तें अवही-णाणें जोइयउ । रामहों कलत्तु विच्छोइयउ ॥५॥
आऊरेंवि गल-गम्भीर-झुणि । पुणु लग्ग सबोहएँ जेट्ठ-मुणि ॥६॥
'भो चरम-देह सासय-गमण । कें कज्जें रोवहि मूढ-मण ॥७॥
तिय दुक्खहुँ खाणि विओय-णिहि । तहेँ कारणें रोवहि काइँ विहि ॥८॥

घत्ता

किं पइँ ण सुयइ एह कह छज्जीव-णिकाय-दयावरु ।
जिह गुणवइ-अणुअत्तणेंण जिणयासु जाउ वणेँ वाणरु' ॥९॥

[४]

जं णिसुणिउ को वि चवन्तु णहेँ । मुच्छा-विहलङ्घलु धरणि-वहेँ ॥१॥
'हा सीय' भणन्तु समुट्ठियउ । चउ-दिसउ णियन्तु परिट्ठियउ ॥२॥

भूत हैं और भव्यजनोंके लिए मृत्युके समय अत्यन्त सहायक हैं। जिनको अंगीकार करनेसे मति दृढ़ होती है, जिनको ग्रहण करनेसे परलोक गति मिलती है, जिनको ग्रहण करनेसे सुख सम्भव होता है, जिनको ग्रहण करनेसे दुःखकी निर्जरा होती है, ऐसे मूलगुण, जिन्होंने निशाचर समूहका नाश किया है, ऐसे रामने उस पक्षीको दिये (और कहा), तुम परम सुखावह अनरण्य और अनन्तवीर्यके पथपर जाना। समस्त आदरके साथ उन वचनोंको सुनकर उस पक्षिराजने शीघ्र अपने प्राणोंको छोड़ दिया।" जब जटायु मर गया और सीता अपहृत कर ली गयी तो राम अपने दोनों हाथ ऊपर कर धाड़ मारकर रोने लगे। मैं कहाँ? लक्ष्मण कहाँ? गृहिणी कहाँ, घर कहाँ? परिजन छिन्न-भिन्न हो गये। हत दैवने भूतबलिकी तरह मेरा कुटुम्ब जगमें तितर-बितर कर दिया ॥१-९॥

[३] यह विचार कर, राम मूच्छित हो गये। फिर उन्हें चारण मुनियोंने देखा। चारण मुनि भी, वे जो आठ गुणोंवाले होते हैं। जो ज्ञान शरीर और शीलाभरण वाले होते हैं। ऐसे वीर सुधीर और विशुद्ध मन आकाशमें विचरण करनेवाले दो मुनिजन आये। उन्होंने अवधिज्ञानसे जान लिया कि रामको स्त्रीका वियोग हो गया है। (आकाशसे) उतरकर गलेसे गम्भीर ध्वनिमें जेठे मुनि कहने लगे, "हे मोक्षगामी चरम शरीर और मूढ़मन राम, तुम किस कारण रोते हो। स्त्री दुःखकी खान और वियोगकी निधि होती है। उसके कारण तुम क्यों रोते हो। क्या तुमने यह कथा नहीं सुनी कि किस प्रकार छहों निकायोंके जीवोंके प्रति दया रखनेवाला जिनदास गुणवतीकी अनुपीड़ासे वनमें बन्दर हुआ ॥१-९॥

[४] जब रामने किसीको कहते हुए सुना तो धरती तल पर मूर्च्छासे विह्वल वह 'हा सीता' यह कहते हुए उठे। और चारों

णं करि करिणिहेँ विच्छोइयउ । पुणु गयण-मग्गु अवलोइयउ ॥३॥
तहिँ ताव णिहालिय तिण्णि रिसि । संगहिय जेहिँ परलोय-किसि ॥४॥
ते गुरु गुरु-भत्ति करेवि थुय । 'हो धम्म-रिद्धि सिरि-णमिय-भुय ॥५॥
गिरि-मेरु-समाणउ जेत्थु दुहु । तहेँ कारणेँ रोवहि काइँ तुहुँ ॥६॥
खलु तियमइ जेण ण परिहरिय । तहोँ णरय-महाणइ दुत्तरिय ॥७॥
रोवन्ति एम पर कापुरिस । तिण-समु गणन्ति जे सप्पुरिस ॥८॥

घत्ता

तियमइ वाहिहेँ अणुहरइ खणेँ खणेँ दुक्खन्ति ण थक्कइ ।
छम्मइ जिण-वयणोसहेँण जेँ जम्म-सए वि ण ढुक्कइ ॥९॥

[५]

तं वयणु सुणेप्पिणु भणइ बलु । मेल्लन्तु णिरन्तरु अंसु-जलु ॥१॥
'लब्भन्ति गाम-वरपट्टणइँ । सीयल-विउलइँ णन्दण-वणइँ ॥२॥
लब्भन्ति तुरङ्गम मत्त गय । रह कणय-दण्ड-धुव्वन्त-धय ॥३॥
लब्भन्ति णिसायर आण-कर । लब्भइ अणुहुञ्जेँ वि स-भर धर ॥४॥
लब्भइ घरु परियणु बन्धु-जणु । लब्भइ सिय सम्पय दव्वु धणु ॥५॥
लब्भइ तम्बोलु विलेवणउ । लब्भइ हियइच्छिउ भोयणउ ॥६॥
लब्भइ भिङ्गारोलम्बियउ । पाणिउ कप्पूर-करम्बियउ ॥७॥
हियइच्छिउ मणहरु पियवयणु । पर एक्कु ण लब्भइ णिय-रयणु ॥८॥

घत्ता

तं जोव्वणु तं मुह-कमलु तं सुरउ सयड्डण-हत्थउ ।
जेण ण माणिउ एत्थु जगेँ तहोँ जीविउ सव्वु णिरत्थउ ॥९॥

दिशाओंमें देखते हुए ऐसे स्थित हो गये, मानो हाथी हथिनीसे वियुक्त हुआ हो, फिर उन्होंने आकाशमार्गको देखा। तब उन्होंने उन दो मुनियोंको देखा कि जिन्होंने पगलोककी ठेनी संगृहीत की थी। उन गुरुओंकी गुरुभक्ति कर रामने स्तुति की। (उन्होंने कहा) जिसकी भुजाएँ श्रीसे नमित हैं ऐसे हे राम तुम्हारी धर्मवृद्धि हो, जहाँ सुमेरु पर्वतके समान दुःख है, उस कारणके लिए तुम क्यों रोते हो ? दुष्ट स्त्री बुद्धिको जिसने नहीं छोड़ा उसके लिए नरक रूपी महानदी दुस्तर हो जायेगी। इस प्रकार केवल कापुरुष रोते हैं परन्तु सत्पुरुष इसे तृणके बराबर समझते हैं। स्त्रीमति व्याधिका अनुकरण करती है, वह क्षण-क्षणमें दुःख देती है, जरा भी नहीं थकती। वह जिनवचन रूपी औषधिसे मारा जाता है, और फिर सैकड़ों जन्मों भी नहीं आती ॥१-९॥

[५] यह वचन सुनकर राम, निरन्तर अश्रुधारा छोड़ते हुए बोले—"ग्राम और श्रेष्ठ नगर प्राप्त किये जा सकते हैं, शीतल विशाल नन्दन वन प्राप्त किये जा सकते हैं। घोड़े और मतवाले महागज प्राप्त किये जा सकते हैं, रथ स्वर्णदण्ड और उड़ते हुए ध्वज प्राप्त किये जा सकते हैं, आज्ञाकारी भृत्यवर प्राप्त किये जा सकते हैं, उपभोग करनेके लिए पर्वतों सहित धरती प्राप्त की जा सकती है, घर-परिजन और बन्धुजन प्राप्त किये जा सकते हैं, स्त्री, सम्पत्ति द्रव्य और धन प्राप्त किया जा सकता है, ताम्बूल और विलेपन प्राप्त किया जा सकता है, हृदय-इच्छित भोजन प्राप्त किया जा सकता है, भृंगारमें रखा हुआ कपूरसे मिश्रित जल प्राप्त किया जा सकता है, मनपसन्द प्रियवचन प्राप्त किये जा सकते हैं, परन्तु यह स्त्रीरत्न नहीं प्राप्त किया जा सकता। वह यौवन, वह मुखकमल वह सुरत और वर्तुल हाथ, जिसने नहीं माने, इस दुनियामें उसका

[६]

परमेसरु पभणइ मलेंवि मुहु । 'तिय-रयणु पसंसहि काइँ सुहुँ ॥१॥
पेक्खन्तहुँ पर वण्णुज्जलउ । अब्भन्तरें रुहिर-चिलिच्चिलउ ॥२॥
दुग्गन्ध-देहु विणि-विट्टलउ । पर चम्में मक्कुहुँ पोट्टलउ ॥३॥
मासामे जन्तें परिभमइ । मिण्णउ णव-णाडिहिँ परिसवइ ॥४॥
कम्मट्ठ-गण्ठि-सय-सिक्किरिउ । रस-वस-सोणिय-कद्दम-भरिउ ॥५॥
बहु-मंस-रासि किमि-कोड-हरु । ण्हारुहिँ वद्धरिउ भूमीहिँ भरु ॥६॥
आहारहों पिसियउ सीवियउ । णिसि मडउ दिवसें संजीवियउ ॥७॥
णीसासूसासु करन्ताहुँ । गउ जम्मु जियन्त-मरन्ताहुँ ॥८॥

घत्ता

मरण-कालें किमि-कप्परिउ जें पेक्खेंवि मुहु मक्किज्जइ ।
चिमिचिमिन्तु मक्खिय-सएँहिं तं तेहउ केम रमिज्जइ ॥९॥

[७]

तं चलण-जुअलु गइ-मन्थरउ । सउणहिँ खज्जन्तु भयङ्करउ ॥१॥
तं सुरय-णियम्बु सुहावणउ । किमि-विलविलन्तु चिलिसावणउ ॥२॥
तं णाहि-पएसु किसोयरउ । खज्जन्त-माणु थिउ भासुरउ ॥३॥
तं जोव्वणु अवरुण्डण-मणउ । सुज्जन्तु णवर भीसावणउ ॥४॥
तं सुन्दरु वयणु जियन्ताहुँ । किमि-कविउ णवर मरन्ताहुँ ॥५॥
तं अहर-बिम्बु वण्णुज्जलउ । लुञ्चन्तु सिवाहिँ विणि-विट्टलउ ॥६॥
तं णयण-जुअलु विब्भम-भरिउ । विच्छायउ काएँहिं कप्परिउ ॥७॥
सो चिहुर-भारु कोड्डावणउ । उड्डन्तु णवर भीसावणउ ॥८॥

घत्ता

तं माणुसु तं मुह-कमलु ते थण तं गाढालिङ्गणु ।
णवर भरेप्पिणु णासउड्डु मोल्लेवउ "धिधि चिलिसावणु" ॥९॥

समस्त जीवन निरर्थक है ॥१-९॥

[६] तब परमेश्वर अपना मुँह मोड़कर कहते हैं—"तुम स्त्रीरत्नकी प्रशंसा क्यों करते हो, ऊपरसे केवल रंग गोरा होता है, परन्तु भीतर रक्तसे लिपटा हुआ है। घृणित और अस्पृश्य दुर्गन्धित देह जो केवल चमड़ेके द्वारा हड्डियोंकी पोटली है। मायामय यन्त्रसे यह घूमता है, नौ नाड़ियोंसे रचित वह स्खलित होता रहता है। आठ कर्मोंकी सैकड़ों गाँठों-से गुथा हुआ। रस, वसा और रक्तकर्दमसे भरा हुआ। प्रचुर मांसका ढेर तथा कृमियों और कीटोंको धारण करनेवाला। खाटकी दुश्मन, और भूमिका भार। भोजनके लिए पोषण और सन्धान करता है। रातमें मृतक और दिनमें जीवित है। निःश्वास और श्वास लेते हुए जीते और मरते हुए जन्म चला जाता है। मृत्युकालमें कृमियोंसे काटे गये जिसे देखकर मुख टेढ़ा कर लिया जाता है, जो सैकड़ों मक्खियोंसे घिनघिनाता हुआ है ऐसे उस शरीरका किस प्रकार रमण किया जाता है ॥१-९॥

[७] गतिसे मन्थर वह चरणयुगल पक्षियोंके द्वारा खाया जाता हुआ भयंकर हो उठता है। वह सुहावना सुरतिनितम्ब कृमियोंसे किलबिलाता हुआ है। वह कृशोदर और नाभिप्रदेश खाया जाता हुआ भयावना हो जाता है। आलिंगनके मनवाला वह यौवन क्षीण होता हुआ केवल भीषण हो जाता है। जीते समयका वह सुन्दर मुख मरते समय केवल कृमियोंसे काटा जाता है, रंगमें उजला वह अधरबिम्ब सियारोंके द्वारा लुंचित किया जाता है। विभ्रमसे भरित वह कान्तिहीन नेत्रयुगल कौओंसे खाया जाता है। कुतूहल उत्पन्न करनेवाला वह केश-भार उड़ता हुए केवल भयंकर होता है। वह मनुष्य, वह मुख-कमल, वे स्तन, वह प्रगाढ़ आलिंगन? (इन सबको देखकर) लोग अपनी नाक (नासापुट) बन्द कर कहते हैं—छिः छिः,

[८]

तहिँ तेहएँ रस-वस-पूय-भरेँ ।　णउ मास वसेवउ देह-धरेँ ॥१॥
णव-णाहि-कमलु उप्पज्जइ जहिँ ।　पहिलउ जें पिण्ड-सम्बन्धु तहिँ ॥२॥
दस-दिवसु परिट्ठिउ रुहिर-जलेँ ।　कणु जेम पइण्णउ धरणियलेँ ॥३॥
विहिँ दसरत्तेहिँ समुट्ठियउ ।　णं जलेँ डिण्डीरु परिट्ठियउ ॥४॥
तिहिँ दसरत्तेहिँ बुब्बुउ घडिउ ।　णं सिसिर-बिन्दु कुसुमेँ पडिउ ॥५॥
दसरत्तेँ चउत्थएँ वित्थरिउ ।　णावइ पवलङ्कुरु णीसरिउ ॥६॥
पञ्चमेँ दसरत्तेँ जाव वलिउ ।　णं सूरण-कन्दु चउप्फलिउ ॥७॥
दस-दसरत्तेँ हिँ कर-चरण-सिरु ।　वीसहिँ णिप्पण्णु सरीरु थिरु ॥८॥
णवमासिउ देहहोँ णीसरिउ ।　वड्ढन्तु पडीवउ वीसरिउ ॥९॥

घत्ता

जेण दुवारेँ आइयउ जो तं परिहरेँ हि ण सक्कइ ।
पन्तिहिँ जुत्तु वइल्लु जिह भव-संसारेँ भमन्तु ण थक्कइ ॥१०॥

[९]

एँउ जाणेँ वि धीरहिँ अप्पणउ ।　करेँ कङ्कणु जीवहिँ दप्पणउ ॥१॥
चउगइ-संसारेँ भमन्तएँण ।　आवन्तेँ जन्त-मरन्तएँण ॥२॥
कवणेँ जोणिँ को ण रुआवियउ ।　को गरुअ धाह ण मुआवियउ ॥३॥
को कहि मि णाहिँ संताविया ।　को कहिँ मि ण आवइ पावियउ ॥४॥
को कहिँ ण दड्ढु को कहिँ ण मुउ । को कहिँ ण भमिउ को कहिँ ण गउ॥५॥
कहिँ ण वि भोयणु कहिँ ण वि सुरउ । जगेँ जीवहोँ किं पि ण वाहिरउ ॥६॥
तइलोक्कु वि असिउ असन्तएँण ।　महि सयल दड्ढ डज्झन्तएँण ॥७॥

घत्ता

सायरु पीउ पियन्तएँण अंसुएँ हिँ रुअन्तेँ भरियउ ।
हड्डु-कलेवर-संचएँण गिरि मेरु सो वि अन्तरियउ ॥८॥

घिनौना है ॥१-९॥

[८] उस वैसे रस, वसा और पीपसे भरे हुए देहरूपी घरमें (जीवको) नौ माह बसना पड़ता है। जहाँ नवनाभिरूपी कमल उभरता है (नरा) पहला शरीरसम्बन्ध यही होता है। दस दिन तक रुधिररूपी जलमें रहता है, उसी प्रकार, जिस प्रकार धरतीपर कण पड़ा रहता है। फिर बीस रातमें वह अंकुरित होता है, मानो जलमें फेन उत्पन्न हुआ हो, तीस रात में वह बुद्बुद बन जाता है, मानो केशरमें कफकण जम गया हो। चालीस दिनमें उसका विस्तार होता है, जैसे प्रवालका अंकुर निकल आया हो। पचास दिनमें वह मुड़ता है तो जैसे मानो चारों ओरसे सूक्ष्म जमीकन्द फल गया हो। फिर सौ दिनमें कर, चरण और सिर बनते हैं, फिर चार सौ रातोंमें शरीर स्थिर होता है, इस प्रकार नौ माहमें शरीरसे बाहर निकल आता है। और बड़ा होकर उलटा उसे भूल जाता है। यह मनुष्य जिस द्वारसे आता है, उसे भी वह छोड़ नहीं सकता। पंक्तिमें जुते हुए बैलकी तरह वह भवसंसारमें भ्रमण करता हुआ थकता नहीं है ॥१-१०॥

[९] यह जानकर अपनेको धीरज दो। हाथका कंगन और दर्पण देखो। चार गतिवाले संसारमें घूमते हुए, आते हुए, उत्पन्न होते और मरते हुए, जीवके द्वारा जगमें कौन नहीं रुलाया गया, किसके द्वारा भारी धाड़ नहीं छोड़ी गयी। कौन कहाँ बिलकुल नहीं सताया गया। किसने कहाँ आपत्ति नहीं पायी। कौन कहाँ नहीं दग्ध हुआ, और कौन कहाँ मरा नहीं? किसने कहाँ भोजन नहीं किया? और कहाँ सुरति नहीं की। इस प्रकार जगमें जीवसे कुछ भी बाहर नहीं है। खाते हुए उसने त्रिलोक खा डाला और जलते हुए समस्त धरती जला डाली। पीते हुए समुद्र पी डाला, और रोते हुए आँसुओंसे

[१०]

अहवइ किं बहु-चविएण राम । भवे भमिउ भयङ्करे तुहु मि ताम ॥१॥
णडु जिह तिह बहु-रूवन्तरेहिँ । जर-जम्मण-मरण-परम्परेहिँ ॥२॥
सा सीय वि जोणि-सएहिँ आय । तुहुँ कहि मि बप्पु सा कहि मि माय ॥३॥
तुहुँ कहि मि भाउ सा कहि मि बहिणि । तुहुँ कहि मि दइउ सा कहि मि घरिणि ॥४॥
तुहुँ कहि मि णरएँ सा कहि मि सग्गेँ । तुहुँ कहि मि महिहिँ सा गयण-मग्गेँ ॥५॥
तुहुँ कहि मि णारि सा कहि मि जोहु । किं सविणा-रिद्धिहेँ करहि मोहु ॥६॥
उम्मेट्ठु विओअ-गइन्दएसु । जगडन्तु भमइ जगु णिरवसेसु ॥७॥
जइ ण धरिउ जिण-वयणङ्कुसेण । तो खमइ माणुसु माणुसेण ॥८॥

घत्ता

एम भणेप्पिणु बे वि मुणि गय कहि मि णहङ्गण-पन्थेँ ।
रामु परिट्ठिउ किविणु जिह धणु कुक्कु लएवि स-हत्थेँ ॥९॥

[११]

विरहाणल-जाल-पलित्त-तणु । चिन्तेवएँ लग्गु विसण्ण-मणु ॥१॥
सच्चउ संसारेँ ण अत्थि सुहु । सच्चउ गिरि-मेरु-समाणु दुहु ॥२॥
सच्चउ जर-जम्मण-मरण-भउ । सच्चउ जीविउ जल-बिन्दु-सउ ॥३॥
कहोँ घरु कहोँ परियणु बन्धु-जणु । कहोँ माय-बप्पु कहोँ सुहि-सयणु ॥४॥
कहो पुत्तु मित्तु कहोँ किर घरिणि । कहोँ भाय सहोयर कहोँ बहिणि ॥५॥
फलु जाव ताव बन्धव सयण । आवासिय पायवेँ जिह सउण ॥६॥
बलु एम भणेप्पिणु णीसरिउ । रोवन्तु पडीवउ वीसरिउ ॥७॥

उसे भर दिया। हड्डियों और कलेवरके संचयसे सुमेरु पर्वतको भी उसने ढक दिया।" ॥१-८॥

[१०] हे राम, अथवा बहुत कहनेसे क्या? इस भयंकर संसारमें, जिस प्रकार नट बहुरूपान्तरोंमें, उसी प्रकार तुम जरा, जन्म और मरणकी परम्पराओंमें घूमे हो। वह सीता सैकड़ों योनियोंमें आयी है। कहीं तुम उसके पिता बने हो, कहीं वह तुम्हारी माँ बनी है। तुम कहीं भाई बने हो, और वह कहीं बहन भी बनी है। तुम कहीं भी उसके पति बने हो, और वह कहीं तुम्हारी गृहिणी बनी है। तुम कहीं भी नरकमें थे, और कहीं वह स्वर्गमें थी। तुम कहीं भी धरती पर थे और वह कहीं भी आकाशमार्गमें थी। वह कहीं भी नारी थी, और तुम कहीं भी योद्धा थे। तुम स्वप्नकी ऋद्धिपर मोह क्यों प्रकट करते हो? बिना महावतका यह वियोगरूपी गजेन्द्रेश झगड़ा करता हुआ समस्त जगमें घूम रहा है। यदि इसे जिनवचन-रूपी अंकुशसे नहीं पकड़ा जाये तो मनुष्यके द्वारा मनुष्य खा लिया जायेगा।" यह कहकर वे दोनों आकाशमार्गसे कहीं चले गये। केवल राम ही कृपणकी भाँति एक, धन ही (धन्या और रुपया-पैसा) अपने हाथमें लेकर बैठे रह गये ॥१-९॥

[११] तब विरहानलकी ज्वालासे सन्तप्त शरीर राम उदास मनसे विचार करने लगे कि सच है कि "संसारमें सुख नहीं है। सच है कि संसारमें दुःख सुमेरु पर्वतकी तरह है। सच है कि जरा, जन्म और मृत्युका भय है। सच है कि जीवन जल-की बूँद बराबर है। किसका घर, किसके बन्धुजन-परिजन? किसके माँ-बाप। और किसके सुधी सज्जन? किसके पुत्र और मित्र, और किसकी गृहिणी। किसका सहोदर भाई और किसकी बहन। जबतक फल (कर्मफल) है, तब तक बन्धु और स्वजन हैं जिस प्रकार वृक्षपर पक्षी बसे हुए हैं।" राम यह

घत्ता

णिसुणु लक्खण-वज्जियउ अण्णु मि ताइ-वसणेंहिँ भुत्तउ ।
राहउ भमइ भुअङ्गु जिह वणेँ 'हा हा सीय' भणन्तउ ॥८॥

[१२]

हिण्डन्तें भग्ग-मडप्फरेंण । वण-देवय पुच्छिय हलहरेंण ॥१॥
'खणेँ खणेँ वेयारहि काइँ महँ । कहेँ कहि मि दिट्ठ जइ कन्त पइँ' ॥२॥
वलु एम भणेप्पिणु संचलिउ । तावग्गएँ वण-गइन्दु मिलिउ ॥३॥
'हे कुञ्जर कामिणि-गइ-गमण । कहेँ कहि मि दिट्ठ जइ मिगणयण' ॥४॥
णिय-पडिरवेण वेयारियउ । जाणइ सीयएँ हक्कारियउ ॥५॥
कत्थइ दिट्ठइँ इन्दीवरइँ । जाणइ धण-णयणइँ दीहरइँ ॥६॥
कत्थइ असोय-तरु हल्लियउ । जाणइ धण-वाहा-डोल्लियउ ॥७॥
तणु सयलु गवेसेँ वि सयल महि । पल्लट्टु पडीवउ दासरहि ॥८॥

घत्ता

तं जि पराइउ णिय-भवणु जहिँ अच्छिउ आसि लयत्थले ।
चाव-सिलिमुह-मुक्क-करु वलु पडिउ स इं भु व-मण्डलेँ ॥९॥

●

चालीसमो संधि

दसरहे-तव-कारणु सव्वुद्धारणु नवजोव्वण-सम्मय-भरिउ ।
जिणवर-गुण-कित्तणु सीय-सइत्तणु तं णिसुणहु राहव-चरिउ ॥

[१]

ध्रुवकं

तं सम्मत्तं गयागासं धीसं संताव-पाव-संतासं (?) ।
चारु-हत्ता-रयणं वंदे देवं संसार-घोर-सोसं ॥१॥

कहकर निकल गये। परन्तु रोते हुए फिर उसे उलटे भूल गये। निर्धन, लक्ष्मणसे रहित और भी अनेक दुःखोंसे युक्त राम भुजंगकी तरह वनमें 'हा सीता, हा सीता' कहते हुए भ्रमण करते हैं ॥१-८॥

[१२] भग्नमान और भ्रमण करते हुए रामने वनदेवतासे पूछा—"मुझे क्षण-क्षणमें क्यों दुखी कर रहे हो। बताओ यदि तुमने मेरी कान्ता देखी हो।" यह कहकर वह आगे बढ़े ही थे कि उन्हें एक मत्त गज मिला। उन्होंने कहा "अरे मेरी कामिनी की तरह सुन्दर गतिवाले गज, क्या तुमने मेरी मृगनयनीको देखा है?" अपनी ही प्रतिध्वनिसे प्रताड़ित होकर वह यही समझते थे कि मानो सीता देवीने ही उन्हें पुकारा है। कहीं वह नील कमलोंको अपनी पत्नीके विशाल नयन समझ बैठते, कहीं हिलते हुए अशोक वृक्षको वे यह समझ लेते कि सीतादेवीकी बाँह हिल-डुल रही है। इस प्रकार समस्त धरती और वनकी खोज करके राम वापस आ गये, और वह अपने सुन्दर लता-गृहमें पहुँचे। अपना धनुष-बाण (उतारकर) एक ओर रखकर वह धरतीपर गिर पड़े ॥१-९॥

●

चालीसवीं सन्धि

जो दशरथके तपका कारण है, जिसमें सबका उद्धार है, जो वज्रकर्णके सम्यक्त्वसे भरित है, जिसमें जिनवरका गुण कीर्तन है, सीताका सतीत्व है, ऐसे उस 'राघवचरित'को सुनो।

[१] जो शान्त हैं, दोषोंसे रहित हैं, बुद्धिके अधीश हैं, सन्ताप और पापको सन्त्रास देनेवाले हैं, जो सुन्दर कान्तसे रत हैं, घोर संसारका शोषण करनेवाले हैं, ऐसे उन देव (मुनि-

असाहणं । कसाय-सीय-साहणं ॥२॥
अवाहणं । पमाय-माय-वाहणं ॥३॥
अवन्दणं । तिलोय-लोय-वन्दणं ॥४॥
अपुज्जणं । सुरिन्दराय-पुज्जणं ॥५॥
असासणं । तिलोय-खेय-सासणं ॥६॥
अवारणं । अणेय-भेय-वारणं ॥७॥
अणिन्दियं । जय-प्पहुं अणिन्दियं ॥८॥
महन्तयं । पचण्ड-वम्महन्तयं ॥९॥
रवण्णयं । पणालि-चार-वण्णयं ॥१०॥

घत्ता

मुणि-सुब्बय-सामिउ सुह-गइ-गामिउ तं पणवेप्पिणु दिढ-मणेण ।
पुणु कहमि महब्बलु खर-दूसण-बलु जिह आयामिउ लक्खणेण ॥११॥

[२]

दुवई

हिय एत्तहें वि सीय एत्तहें वि विओउ महन्तु राहवे ।
हरि एत्तहें वि भिडिउ एत्तहें वि विराहिउ मिलिउ आहवो ॥१॥

ताव तेत्थु भीसावणे वणे । एक्कमेक्क-हक्कारणे रणे ॥२॥
कुरुड-दिट्ठि-चरणुब्भडे भडे । विरइए महा-विरुद्धे थडे ॥३॥
वावरन्त-मय-भासुरे सुरे । सुरे अमरङ्ग-रहराउरे उरे ॥४॥
असि-सबाहु-पडियप्फरे फरे । जप्पमाण-कडुअक्खरे खरे ॥५॥
दलिय-कुम्भ-विअलङ्गए गए । सिद भुणाविए आहए हए ॥६॥
रुहिर-बिन्दु-चच्चिक्किए किए । सायरे व्व सुर-मन्थिए थिए ॥७॥
छत्त-दण्ड सय-खण्ड-खण्डिए । रुण्ड-रुण्ड-विच्छड्ड-मण्डिए ॥८॥
तहिं महाहवे घोर-दारुणे । दिट्ठु वीरु पहरन्तु साहणे ॥९॥

सुव्रत) की मैं वन्दना करता हूँ। जो साधनरहित हैं, जो कषाय और शोकका नाश करनेवाले हैं, जो बाधारहित हैं, प्रमाद और मायाके बाधक हैं, जो दुष्टोंसे अवन्दनीय हैं और त्रिलोक-लोक द्वारा वन्दनीय हैं। जो दुष्टोंसे अपूज्य हैं, परन्तु इन्द्रराजके द्वारा पूज्य हैं। जो शासन (उपाध्याय) से रहित हैं, फिर भी त्रिलोकके पण्डितोंके शासक हैं। जो वर्जनाओंसे रहित हैं, फिर भी अपेय पेयों (मद्य मधु) का वारण करनेवाले हैं। जो निद्रारहित हैं, विश्वके प्रभु हैं, अनिन्दित हैं, जो महान् अन्तवाले हैं, और प्रचण्ड कामदेवका हनन करनेवाले हैं। जो सुन्दर हैं, जो मेघ, अलि और केशके रंगके समान हैं। ऐसे जो शुभगतिगामी मुनिसुव्रत स्वामी हैं उन्हें प्रणाम कर, अब पुनः कहता हूँ, कि किस प्रकार लक्ष्मणने महाबलवाले खरदूषणके बलको परास्त किया ॥१-११॥

[२] यहाँ सीताका अपहरण कर लिया गया। और यहाँ रामको महान् वियोग हुआ। यहाँ लक्ष्मण युद्धमें भिड़ गया, और यहाँ युद्धमें विराधित मिला। तबतक इस भयंकर वनमें, जिसमें एक दूसरेको हंकारा जा रहा है, जिसमें कठोर दृष्टि और वचनोंसे योद्धा उद्भट हैं, जिसमें विस्तृत सैन्य समूह रचित हैं, जिसमें चेष्टा करते हुए देव भयसे भास्वर हैं, जर्जर अंग होनेपर भी, जो प्रहारके लिए अपने हृदयमें आतुर हैं। जिसमें तलवार और बाहुओं सहित तलवारें पड़ी हुई हैं, जिसमें अत्यन्त कठोर और तीव्र शब्द बोले जा रहे हैं, जिसमें गजोंके मस्तक टूट चुके हैं और शरीर विगलित हैं, सिरोंके काँपनेसे जिसमें अश्व आहत हैं, जो रक्त बिन्दुओंसे इस प्रकार लग रहा है, जैसे देवोंके द्वारा मथा गया समुद्र हो, जिसमें छत्रों और दण्डोंके सौ-सौ टुकड़े हो चुके हैं। जो हड्डियों और धड़ोंके समूहसे आच्छादित है, ऐसे उस घोर भयंकर महायुद्धमें

घत्ता

तिलु तिलु कप्परियइँ उरेँ जज्जरियइँ रत्तुप्फइँ फुरियाणणइँ ।
दिट्ठइँ गम्भीरइँ सुहड-सरीरइँ सर-सल्लियइँ सवाहणइँ ॥१०॥

[३]

दुवई

को वि सुभडु स-तुरङ्गमु को वि स-जाणु सल्लिओ ।
को वि पडन्तु दिट्ठु आयासहोँ लक्खण-सर-विरल्लिओ ॥१॥
भडो को वि दिट्ठो परिच्छिन्न-गत्तो । स-दन्ती स-मन्ती स-चिन्धो स-छत्तो ॥२॥
भडो को वि णाराय-भल्लेहिँ भिण्णो । मओ को वि कप्पद्दुमो जेम छिण्णो ॥३॥
भडो को वि तिक्खग्ग-णाराय-विद्धो । महा-सत्थवन्तो व्व सत्थेहिँ विद्धो ॥४॥
भडो को वि कुद्धाणणो विप्फुरन्तो । मरन्तो वि हक्कार-हक्कार देन्तो ॥५॥
भडो को वि भिण्णो स-देहो समत्थो । पमुच्छाविओ को वि कोवण्ड-हत्थो ॥६॥
मुओ को वि कोन्तुब्भडो जीवमाणो । चलच्चामर-च्छोह-विज्जिज्जमाणो ॥७॥
वसा-कद्दमे मद्दवे को वि खुत्तो । खलन्तो वलन्तो णियन्तेहिँ गुत्तो ॥८॥
भडो को वि भिण्णो खुरुप्पेहिँ छुत्तो । णियन्तो कुसिद्धो व्व सिद्धिं ण पत्तो ॥९॥

घत्ता

लक्खण-सर-भरियउ अद्धुव्वरियउ खर-दूसण-बलु दिट्ठु किह ।
साहारु ण बन्धइ गमणु ण सन्धइ पच्चलउ कामिणि-पेम्मु जिह ॥१०॥

[४]

दुवई

परधण-परकलत्त-परिसेसहुँ परबल-सणिणचायहुँ ।
एक्कें लक्खणेण विणिवाइय सत्त सहास रायहुँ ॥१॥
जीवन्तएँ भडएँ वइरि-सेण्णेँ । अद्धएँ दलवट्टिएँ महि-णिसण्णेँ ॥२॥
तहिँ अवसरेँ पवर-जसाहिवेण । जोक्कारिउ पिहु विराहिएण ॥३॥

सेनाके भीतर, वह वीर प्रहार करता हुआ दिखाई दिया। जो तिल-तिल काट दिये गये हैं, जो डरमें जर्जर हैं, जो लाल-लाल आँखोंवाले और स्फुरित मुखवाले हैं, जो तीरोंसे भेदे गये हैं, ऐसे वाहन सहित गम्भीर सुभट-शरीर दिखाई दिये ॥९-१०॥

[३] कोई सुभट अश्वरहित, कोई गजरहित पीड़ित हो गया। कोई लक्ष्मणके तीरोंसे खण्डित होकर आकाशसे गिरता हुआ दीख पड़ा। कोई सुभट अपने हाथी, मन्त्री, चिह्न और छत्रके साथ छिन्न शरीर दिखाई दिया। कोई योद्धा वावल्ल और भालोंसे विदीर्ण हो गया। कोई भट कल्पवृक्षकी तरह छिन्न हो गया। कोई भट तीखे अग्रिम तीरोंसे विद्ध हो गया। महा-शस्त्रोंवाला भी कोई सुभट शस्त्रोंसे विद्ध हो गया। क्रुद्धमुख और विस्फुरित होता हुआ कोई भट मरते हुए भी हुक्कार-हुक्कार दे रहा था। कोई समर्थ योद्धा अपने शरीर सहित छिन्न हो गया। कोई धनुष हाथमें लिये हुए मूर्च्छित हो गया। कोपसे उद्भट चंचल चामरोंकी कान्तिसे हवा किया जाता हुआ जीवित ही मर गया। कोई घनी वसा-कीचड़में फँस गया, उसमें स्खलित होता और मुड़ता हुआ अपनी आँतोंमें ही उलझ गया। कोई आता हुआ सुभट खुरुपोंसे काट दिया गया। अन्तको प्राप्त होता हुआ भी कुसिद्धके समान सिद्धिको प्राप्त नहीं हो रहा था। लक्ष्मणके तीरोंसे आक्रान्त आधा बचा हुआ सैन्य इस प्रकार दिखाई दे रहा था कि मानो वह नवल कामिनी-प्रेमके समान, न तो अपने-आपमें ढाँढस बाँध पा रहा था, और न जानेका सन्धान कर रहा था ॥१-१०॥

[४] परधन और परस्त्रियोंको समाप्त करनेवाले शत्रुसैन्यके लिए सन्निपातके समान सात हजार राजाओंके सैन्यको अकेले लक्ष्मणने मार गिराया। आधे शत्रुसैन्यके जीवित रहने और आधेके चकनाचूर होकर धरतीपर सो जानेपर, उस अवसर-

'पायालहोँ वट्टइ एहु कालु । हउँ भिच्चु देव तुहुँ सामिसालु ॥४॥
कहिओ सि आसि जो चारणेहिँ । सो लक्खिओ सि लइ लक्खणेहिँ ॥५॥
तं सयलु मणोरहु अज्जु जाय । जं दिट्ठ तुहारा बे वि पाय ॥६॥
णिय-जणणिहेँ हउँ गब्भत्थु जइउ । णिण्णाइउ पिउ महु तणउ तइउ ॥७॥
सहुँ ताएँ महु पाइक्क-पवरु । उद्दालिउ तमलङ्कार-णयरु ॥८॥
तं समर-सहासभय-भीसणेहिँ । सहुँ पुव्व-वइर खर-दूसणेहिँ' ॥९॥

घत्ता

जय-लच्छि-पसाहिउ भणइ विराहिउ 'पहु पसाउ महु पेसणहोँ ।
तुहुँ खरु आयामहि रणउहेँ णामहि हउँ अब्भिट्टमि दूसणहोँ' ॥१०॥

[५]

दुवई

तं णिसुणेवि वयणु विज्जाहरु सम्भीसिउ कुमारेँण ।
'वइसरु ताव जाव रिउ पाडमि एक्कें सर-पहारेँण ॥१॥
एउ सेण्णु खर-दूसण-केरउ । बाणेंहिँ करमि अज्जु विवरेरउ ॥२॥
स-धउ स-वाहणु स-पहु स-हत्थें । लायमि सम्बु-कुमारहोँ पन्थें ॥३॥
तुज्झु वि जम्म-भूमि दरिसावमि । तमलङ्कार-णयरु भुञ्जावमि' ॥४॥
हरि-वयणेंहिँ हरिसिउ विज्जाहरु । चलणेंहिँ पडिउ सीसेँ लाएँवि करु ॥५॥
ताव खरेण समरेँ णिव्वूढेँ । पुच्छिउ मन्ति विमाणारूढें ॥६॥
'दीसइ कवणु एहु वीसत्थउ । णरु पणमन्तु किय-अञ्जलि-हत्थउ ॥७॥
बाहुबलेण बलेण विवलियउ । णं खय-कालु कियन्तहोँ मिलियउ' ॥८॥
पभणइ मन्ति विमाणेँ पइट्ठउ । 'किं पइँ वइरि कयाइ ण दिट्ठउ ॥९॥

घत्ता

णामेण विराहिउ पवर-जसाहिउ वियड-वच्छु थिर-थोर-भुउ ।
अणुराहा-णन्दणु स-बलु स-सन्दणु एहु सो चन्दोअरहोँ सुउ' ॥१०॥

पर, प्रवर यशके अधिपति विराधितने लक्ष्मणका जय-जयकार किया, "यह अब सेवकका समय है, हे देव! मैं भृत्य हूँ और आप स्वामीश्रेष्ठ हैं, चारण मुनियोंके द्वारा जो कहा हुआ था, उसे आज मैंने अपने नेत्रोंसे देख लिया है। आज मेरा मनोरथ सफल हो गया है कि जो मैंने तुम्हारे दो चरण देखे। जब मैं अपनी माँके गर्भमें था, तब मेरे पिता मार डाले गये। तातके साथ, मेरा आज्ञाकारी श्रेष्ठ तमलंकार नगर छीन लिया गया। इस कारण, समरके महाभयसे भीषण खरदूषणके साथ मेरा पूर्व वैर है।" इस (प्रकार) विजयलक्ष्मीसे प्रसाधित विराधित कहता है—'मुझ सेवकपर प्रसाद हो! युद्धमुखमें तुम खरको पराजित करना, मैं दूषणसे लड़ूँगा" ॥१–१०॥

[५] इन शब्दोंको सुनकर कुमारने विद्याधरको अभय वचन दिया—"तुम तबतक बैठो कि जबतक मैं एक सर-प्रहारमें शत्रुको मार गिराता हूँ। खरदूषणके इस सैन्यको आज मैं तीरों-से छिन्न-भिन्न करता हूँ। अपने हाथसे मैं ध्वज, वाहन और स्वामी सहित उसे शम्बुकुमारके पथपर लाता हूँ। तुम्हारी जन्मभूमि भी दिखाऊँगा और उस तमलंकार नगरका भोग कराऊँगा।" लक्ष्मणके इन शब्दोंसे विद्याधर हर्षित हो गया। वह अपने हाथ सिरपर रखकर चरणोंपर गिर पड़ा। तब युद्धका निर्वाह करनेवाले (समर्थ) विमानपर बैठे हुए खरने मन्त्रीसे पूछा—"यह कौन मनुष्य है जो विश्वस्त होकर हाथों-की अंजलि बाँधकर प्रणाम कर रहा है। बाहुबल और बलसे विशिष्ट बलशाली वह इस प्रकार मिल गया है, मानो क्षयकाल कृतान्तसे मिल गया हो।" तब विमानमें बैठा हुआ मन्त्री कहता है—"क्या तुमने शत्रुको कभी नहीं देखा? नामसे विराधित, यह प्रवर यशका स्वामी है। विशाल वक्षःस्थल

[६]

दुवई

मन्ति-णिवाण विहि मि अवरोप्परु एं आलाव जावँ हिँ ।
विण्हु-विराहिएहिँ आयामिउ पर-बलु सयलु तावँ हिँ ॥१॥

तो खरोऽरिमद्दणेण । कोक्किओ जणद्दणेण ॥२॥
एत्तहे स-सन्दणेण । सोऽणुराह-णन्दणेण ॥३॥
आहवे समत्थएण । चाव-बाण-हत्थएण ॥४॥
गुञ्ज-वण्ण-लोयणेण । भीसणावलोयणेण ॥५॥
कुम्भि-कुम्भ-दारणेण । पुण्ड-चड्ड-कारणेण ॥६॥
दूसणो जसाहिवेण । कोक्किओ विराहिएण ॥७॥
पहु वे (?) हओ हयस्स । चोइओ गओ गयस्स ॥८॥
वाहिओ रहो रहस्स । धाइओ णरो णरस्स ॥९॥

घत्ता

स-गुड-स-सण्णाहइँ कवय-सणाहइँ सप्पहरणइँ स-वाहणइँ ।
णिय-पहु सरेप्पिणु हक्कारेप्पिणु भिडियइँ वेण्णि मि साहणइँ ॥१०॥

[७]

दुवई

सेण्णहोँ भिडिउ सेण्णु दूसणहोँ विराहिउ खरहोँ लक्खणो ।
हय पडु पडह तूर किउ कलयलु गल-गम्भीर-भीसणो ॥१॥

तहिँ रण-संगमेँ । खुण्ण-तुरङ्गमेँ ॥२॥
रह-गय-गोन्दलेँ । वलिय-मन्दलेँ ॥३॥
भड-कडमद्दणेँ । मोडिय-सन्दणेँ ॥४॥
णरवर-दण्डिएँ । किय-किलिविण्डिएँ ॥५॥
चाला-लुञ्छिएँ । रह-सय-खञ्चिएँ ॥६॥
तहिँ अपराइय । खर-णारायण ॥७॥
भिडिय महब्बल । वियड-उरत्थल ॥८॥
वे वि समच्छर । वे वि भयङ्कर ॥९॥

और स्थिर स्थूल बाहुवाला। अनुराधाका पुत्र, सेना और रथ सहित यह चन्द्रोदरका वह पुत्र है ॥१-९॥

[६] मन्त्री और राजामें जब इस प्रकार आपसमें बातचीत हो रही थी तबतक लक्ष्मण और विराधितने समस्त शत्रुसैन्यको घेर लिया। तब शत्रुओंका सफाया करनेवाले लक्ष्मणने खरको ललकारा। और यहाँ जिसके पास रथ है, जो अनुराधाका पुत्र है, जो युद्धमें समर्थ है, धनुष और तीर जिसके हाथमें हैं, जिसके नेत्र गुंजाफलकी तरह लाल हैं, जिसका अवलोकन भयंकर है, जो गजकुम्भोंका विदारण करनेवाला है; जो यशका राजा है, ऐसे विराधितने पूर्व वैरके कारण दूषणको ललकारा। आओ, घोड़ेपर घोड़े, गजपर गज प्रेरित कर दिये गये। रथपर रथ चला दिये गये, आदमीपर आदमी दौड़े। अस्त्रकवचोंमें तैयार, कवचोंसे सन्नद्ध, प्रहरणों और वाहनोंसे सहित दोनों सैन्य अपने शत्रुको यादकर और हुंकारकर भिड़ गये ॥१-९॥

[७] सैन्यसे सैन्य भिड़ा, विराधित दूषणसे और लक्ष्मण खरसे। पटु, पटह, तूर्य बज उठे। गम्भीर-गम्भीर और भीषण कोलाहल होने लगा। जिसमें अश्व त्रस्त हैं, रथों और हाथियों-की भीड़ है, मृदंग बज रहे हैं, योद्धाओंका संहार हो रहा है, रथ मोड़े जा रहे हैं, श्रेष्ठ नर दण्डित किये जा रहे हैं, किलिकिंचर्यां(?) की जा रही हैं, केश खींचे जा रहे हैं, सैकड़ों रथ खचे हुए हैं, ऐसे उस रण-संग्राममें अपराजित खर और लक्ष्मण भिड़ गये। दोनों महाबली और विकट उरस्थलवाले थे। दोनों ईर्ष्यासे भरे हुए थे। दोनों भयंकर थे। दोनों अकायर (बहादुर) थे।

बे वि अकायर । बे वि जसायर ॥१०॥
बे वि महक्कमक । बे वि अणुक्कमक ॥११॥
बे वि धणुद्धर । बेण्णि वि दुद्धर ॥१२॥

घत्ता

बेण्णि वि जस-लुद्धा अमरिस-कुद्धा तिहुयण-मल्ल समावडिय ।
अमरिन्द-दसाणण विप्फुरियाणण णाइँ परोप्परु अब्भिडिय ॥१३॥

[८]

दुवई

ताम जणद्दणेण अक्केन्दु विसज्जिउ रणेँ भयङ्करो ।
णं खय-कालेँ कालु उव्वाइउ तिहुअण-जण-खयङ्करो ॥१॥
संचल्लु बाणु । णहयल-समाणु ॥२॥
रिउ-रहहों ढुक्कु । सउ कह वि चुक्कु ॥३॥
सारहि वि भिण्णु । धय-दण्डु छिण्णु ॥४॥
धणुहरु वि भग्गु । करु वि ण लग्गु ॥५॥
पाडिउ विमाणु । विजएँ समाणु ॥६॥
खरु विरहु जाउ । थिउ असि-सहाउ ॥७॥
धाइउ तुरन्तु । मुह-विप्फुरन्तु ॥८॥
एत्तहेँ वि तेण । णारायणेण ॥९॥
तं सूरहासु । किउ करेँ पगासु ॥१०॥
अब्भिडु बे वि । असिवरइँ लेवि ॥११॥

घत्ता

णाणाविह-थाणेँहिं पिय-विण्णाणेँहिं वावरन्ति असि-वाहिय-कर ।
कसणब्भय दीसिय विज्जु-विहूसिय णं णव-पाउसेँ अम्बुहर ॥१२॥

[९]

दुवई

हत्थि व उद्ध-सोण्ड सीह व लङ्गूल-वलग्ग-कन्धरा ।
णिट्ठुर महिहर व्व अइ-सार समुद्द व अहि व दुद्धरा ॥१॥

दोनों यशके आकर थे। दोनों ही महाभट थे। और अनुद्धत थे। दोनों धनुर्धर थे। दोनों दुर्धर थे। दोनों ही यशके लोभी अमर्षसे क्रुद्ध और त्रिभुवनमल्ल इस प्रकार भिड़ गये, मानो तमतमाते हुए मुखवाले अमरेन्द्र और दशानन आपसमें भिड़ गये हों ॥१-१३॥

[८] तब लक्ष्मणने युद्धमें भयंकर अर्धेन्दु शस्त्र छोड़ा, मानो त्रिभुवनजनका क्षय करनेवाला काल ही क्षयकालमें दौड़ा हो। आकाशके समान बाण चला। शत्रुके रथके पास पहुँचा। खर किसी प्रकार बच गया। सारथि आहत हो गया। ध्वजदण्ड छिन्न-भिन्न हो गया। धनुष भी भग्न हो गया। किसी प्रकार लगा-भर नहीं। विमान गिरा दिशा विद्याके साथ। खर रथ-हीन हो गया। केवल तलवार है सहायक जिसकी, ऐसा रह गया। वह तुरन्त दौड़ा अपना मुख तमतमाता हुआ। यहाँ भी इस लक्ष्मणने उस सूर्यहासको प्रकाशरूपमें अपने हाथमें ले लिया। दोनों तलवार लेकर आपसमें भिड़ गये। नाना प्रकार-के स्थानों और अपने-अपने विज्ञानोंके साथ, जिन्होंने हाथमें तलवारें ग्रहण कर रखी हैं, ऐसे वे दोनों युद्ध करने लगे। वे ऐसे जान पड़ रहे थे, मानो नवपावसमें बिजलीसे विभूषित, श्याम अंगवाले मेघ दिखाई दे रहे हों ॥१-१२॥

[९] ऊपर जिसकी सूँड़ उठी है ऐसे हाथीके समान, जिसकी पूँछ कन्धेसे लगी हुई है, ऐसे सिंहके समान, निष्ठुर पहाड़के समान, अत्यन्त खारे समुद्रके समान, साँपके समान अत्यन्त

अब्भिट्ट बे वि सोण्डीर वीर । संगाम-धीर ॥२॥
एत्थन्तरेँ अमर-वरङ्गणाहँ । हरिसिय-मणाहँ ॥३॥
अवरोप्परु बोल्लालाव हूय । 'कहोँ गुण पहूय' ॥४॥
तं णिसुणेँवि कुवलय-णयणियाएँ । ससि-वयणियाएँ ॥५॥
णिब्भच्छिय अच्छर अच्छराएँ । बहु-मच्छराएँ ॥६॥
'खरु मुएँ वि अण्णु किं को वि सूरु । पर-सिमिर-चूरु ॥७॥
अण्णेक पजम्पिय तक्खणेण । 'सहुँ लक्खणेण ॥८॥
खरु गरहु किह किज्जइ समाणु । जो अप्पमाणु ॥९॥
एत्थन्तरेँ णिसियर-कुल-पईवेँ । खरु पहउ गीवेँ ॥१०॥

घत्ता

कोवाणल णालउ कडि-कण्टालउ दसण-सकेसरु अहर-दलु ।
महुमहण-सरग्गेँ असि-णहरग्गेँ खुण्टेँवि घत्तिउ सिर-कमलु ॥११॥

[१०]

दुवई

एत्तहेँ लक्खणेण विणिवाइउ णिसियर-सेण्ण-सारओ ।
एत्तहेँ दूसणेण किउ विरहु विराहिउ विण्णि वारओ ॥१॥
छुडु छुडु समरेँ परज्जिउ वाहणु । रह-गय-वाहणु ॥२॥
छुडु छुडु जीव-गाहि आयामिउ । पर-बल-सामिउ ॥३॥
छुडु छुडु चिहुरहँ हत्थु पसारिउ । कह वि ण मारिउ ॥४॥
ताव खरहोँ सिरु खुडेँवि महाइउ । लक्खणु धाइउ ॥५॥
णिय-साहणेँ मम्मीस करन्तउ । रिउ कोक्कन्तउ ॥६॥
दूसण पहरु पहरु जइ सक्कहि । अहिमुहु थक्कहि ॥७॥
तं णिसुणेँवि वयणु आरुट्ठउ । चित्तेँ दुट्ठउ ॥८॥
वलिउ णिसिम्भु गइन्दहु व सीहहोँ । रण-सय-लीहहोँ ॥९॥

दुर्धर वे दोनों भिड़ गये। दोनों ही प्रचण्ड वीर और संग्राम-धीर थे। इसी बीच जिनका मन हर्षित है, ऐसी देवांगनाओंमें परस्पर वार्तालाप होने लगा कि किसमें अधिक गुण हैं? यह सुनकर, जिसके नेत्र कुवलयके समान हैं, जिसका मुख चन्द्रमाके समान है, ऐसी अत्यन्त ईर्ष्यासे भरी हुई एक अप्सराने दूसरीकी भर्त्सना की कि शत्रुशिविरको चूर-चूर करनेवाले खरको छोड़कर क्या कोई दूसरा वीर है? एक औरने फौरन कहा—"लक्ष्मणके साथ खर (गधे)की समानता किस प्रकार की जा सकती है, जो कि कभी घटित नहीं हो सकती।" इसी बीच निशाचर कुलका प्रदीप खर गरदनमें आहत हो गया। कोपरूपी अनल जिसकी नाल है, कंठ जिसका कण्टालय है, दशन जिसका पराग है, अधर जिसके पत्ते हैं ऐसा सिररूपी कमल, लक्ष्मणके सरोमने असिरूपी नखके अग्रभागसे काटकर फेंक दिया ॥१-११॥

[१०] यहाँ लक्ष्मणने निशाचर सेनाके श्रेष्ठ व्यक्ति (खर) को धराशायी कर दिया। इधर दूषणने विराधितको विरथ कर दिया और उसे हटा दिया। शीघ्र ही उसने युद्धमें सेना, रथ, गज और वाहनोंको पराजित कर दिया। जीवका ग्राहक और शत्रुसेनाका स्वामी दूषण शीघ्र ही झुका। शीघ्र ही उसने केशोंके लिए हाथ फैलाया? किसी प्रकार उसे मारा-भर नहीं। तबतक खरका सिर काटकर आदरणीय लक्ष्मण दौड़ा। अपनी सेनाको अभयदान देता हुआ, शत्रुको ललकारता हुआ कि "दूषण, यदि हो सके तो प्रहार करो, प्रहार करो, या नीचा मुख करके रहो।" यह वचन सुनकर दूषण क्रुद्ध हो गया, वह चित्तमें दुष्ट हो गया। निशाचरराज मुड़ा ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार गजेन्द्र सैकड़ों युद्धोंमें प्रसिद्ध सिंहके ऊपर मुड़ा हो।

घत्ता

दससन्दण-जाएं वर-णाराएं विवक्ख-उरत्थलेँ भिन्नु अरि ।
रेवा-जल-वाहेँ मयर-सणाहेँ णाइँ वियारिउ विञ्झइरि ॥१०॥

[११]

दुवई

उद्धुअ-पुच्छ-दप्प-वेयण्ड-रसन्तय-मत्त-वाहणं ।
पाडिएँ अतुल-मल्लेँ खरेँ दूसणेँ पडियमसेस-साहणं ॥१॥

सत्त सहास भिडन्तेँ मारिय । दूसणेण सहुँ सत्त वियारिय ॥२॥
चउदह सहस णरिन्दहुँ घाइय । णं कप्पद्दुम व्व विणिवाइय ॥३॥
मण्डिय मेइणि णरवर-सीसेँहिँ । णावइ सरय-लच्छि सयवत्तेँहिँ ॥४॥
कत्थइ रत्तारत्त पदोसिय । णाइँ विलासिणि घुसिण-विहूसिय ॥५॥
तो एत्थन्तरेँ रहु-णाय-वाहणेँ । कलयलु घुट्ठु विराहिय-साहणेँ ॥६॥
दिण्णाणन्द-भेरि अणुराएँ । रणु परिअञ्चिउ दसरह-जाएँ ॥७॥
'चन्दोअर-सुअ मइँ करेँ वुत्तउ । ताम महाहवेँ अच्छु मुहुत्तउ ॥८॥
जाव गवेसमि भाइ महारउ । सहुँ वइदेहिएँ पाण-पियारउ' ॥९॥

घत्ता

खर-दूसण मारेँवि जिणु जयकारेँवि लक्खणु रामहोँ पासु गउ ।
णं तिहुअणु घाएँवि जम-पहेँ लाएँवि कालु कियन्तहोँ सम्मुहउ ॥१०॥

[१२]

दुवई

हलहरु लक्खणेण लक्खिज्जइ सीया-सोय-णिब्भरो ।
घत्तिय तोण-बाण महि-मण्डलेँ कर-परिचत्त-धणुहरो ॥१॥

विओय-सोय-तत्तओ । करि व्व भग्ग-दन्तओ ॥२॥
तरु व्व छिण्ण-डालओ । फणि व्व णिप्फणालओ ॥३॥
गिरि व्व वज्ज-चूडिओ ससि व्व राहु-पीडिओ ॥४॥
अपाणिउ व्व मेहओ । वणे विसण्ण-देहओ ॥५॥
वलो सुमित्ति-पुत्तेणं । पपुच्छिओ तुरन्तेणं ॥६॥

दशरथके पुत्र लक्ष्मणने श्रेष्ठ तीरसे शत्रुको उसके विशाल वक्षःस्थलपर आहत कर दिया, मानो मगरोंसे युक्त रेवानदीके जलप्रवाहने विन्ध्याचलको विदीर्ण कर दिया हो ॥१-१०॥

[११] अतुल मल्ल खर और दूषणके गिर जानेपर, जिसमें उठे हुए पुच्छदण्डवाले मत्त वाहन जोर-जोरसे चिल्ला रहे हैं ऐसा अशेष सैन्य भी पराजित हो गया। लड़ते हुए उसके साथ सात हजार लोग मारे गये, और दूषणके साथ सात हजार विदारित हुए। इस प्रकार चौदह हजार राजा मारे गये, मानो वे कल्पद्रुमोंके समान गिरा दिये गये हों। राजाओंके छत्रोंसे धरती ऐसे मण्डित हो गयी, जैसे कमलोंसे शरद् लक्ष्मी शोभित होती है। कहीं भूमि रक्तसे आरक्त दिखाई दी मानो केशरसे विभूषित विलासिनी हो। तो इसी बीचमें, जिसके रथ और गज वाहन हैं ऐसी विराधितकी सेनामें कल-कल उठा। जिसमें आनन्दकी भेरी बजायी गयी है ऐसे रणकी, लक्ष्मणने परिक्रमा की। (वह बोला) "हे चन्द्रोदर पुत्र, तुम मेरा कहा करो। एक मुहूर्तके लिए तुम युद्धमें तबतक रहो कि जब-तक मैं वैदेही सहित अपने प्राणप्यारे भाई को खोज लूँ।" खर-दूषणको मारकर, जिनका जयकार कर लक्ष्मण रामके पास गया, मानो त्रिभुवनका घात कर उसे यमपथपर लाकर काल-कृतान्तके सम्मुख गया हो ॥१-१०॥

[१२] लक्ष्मणने रामको सीताके शोकसे परिपूर्ण देखा। धरतीमण्डलपर तूणीर, बाण और हाथसे छोड़ा गया धनुष पड़ा हुआ था। वियोग शोकसे सन्तप्त वह भग्नदन्त गजके समान, छिन्नडाल पेड़के समान, फणसमूहसे रहित सर्पके समान, वज्रसे नष्ट गिरिके समान, राहुसे पीड़ित चन्द्रमाके समान, बिना पानीके मेघके समान वनमें विषण्ण देह थे।

'ण दीसए विहङ्गओ । स-सीयओ कहिँ गओ' ॥७॥
सुणेवि तस्स अप्पियं । समप्पियं ण जं प्रियं ॥८॥
'वणे विणट्ठु जाणई । ण को वि वत्त जाणई ॥९॥

घत्ता

जो पक्खि रणेऽज्जउ दिण्णु सहेज्जउ सो वि समरेँ संघारियउ ।
केणावि पचण्डेँ दिढ-भुअ-दण्डेँ णेवि तलप्पएँ मारियउ' ॥१०॥

[१३]

दुवई

ए आलाव जाव वट्टन्ति परोप्परु राम-लक्खणे ।
ताव विराहिओ वि बल-परिमिउ पत्तु तर्हि जि तक्खणे ॥१॥
तो ताव कियञ्जलि-हत्थएण । महिवीढोणामिय-मत्थएण ॥२॥
वलएउ णमिउ विज्जाहरेण । जिणु जम्मणेँ जेम पुरन्दरेँण ॥३॥
आसीस देवि गुण-गणहरेण । सोमित्ति पपुच्छिउ हलहरेण ॥४॥
'सहुँ सेण्णेँ पणमिउ कवणु एहु । णं तारा-परिमिउ हरिणदेहु' ॥५॥
तं वयणु सुणेप्पिणु पुरिस-सीहु । थिर-थोर-महाभुअ-फलिह-दीहु ॥६॥
सब्भावेँ रामहोँ कहइ एम । 'चन्दोयर-णन्दणु एहु देव ॥७॥
खर-दूसणारि महु परम-मित्तु । गिरि मेरु जेम थिर-थोर-चित्तु' ॥८॥
तो एम पसंसेँवि तक्खणेण । 'प्रिय आणइ' अक्खिउ लक्खणेण ॥९॥

घत्ता

कहिँ कुढेँ लग्गेसमि कहि मि गवेसमि दइवेँ परम्मुहेँ किं करमि ।
वलु सीया-सोएं मरइ विओएं एण मरन्तेँ हउँ मरमि' ॥१०॥

[१४]

दुवई

तं णिसुणेवि वयणु चिन्ताविउ चन्दोयरहोँ णन्दणो ।
विमणु विसण्ण-देहु गह-पीडिउ णं सारङ्ग-लञ्छणो ॥१॥

सुमित्राके पुत्रने तुरन्त रामसे पूछा, "जटायु दिखाई नहीं देता, सीताके साथ वह कहाँ गया हुआ है।" उसके कथनको सुनकर रामने जो कुछ कहा, वह प्रिय नहीं था। सीता वनमें नष्ट हो गयी है। उसकी वार्ता कोई भी नहीं जानता। जो रणमें अजेय था और जिसने सहायता की थी, वह पक्षी भी युद्धमें मारा गया। किसीने प्रचण्ड दृढ़ भुजदण्डसे ले आकर तल प्रदेश पर मार दिया है ॥१-१०॥

[१३] जब राम और लक्ष्मणमें परस्पर यह वार्तालाप हो रहा था तबतक विराधित भी अपनी सेनासे घिरा हुआ तत्काल वहाँ पहुँचा। तब जिसने हाथोंकी अंजलि की है तथा महीपीठ-पर अपना मस्तक झुकाया है ऐसे विद्याधरने बलदेवको उसी प्रकार नमन किया, जिस प्रकार जन्मके समय इन्द्रके द्वारा जिनभगवान्को नमन किया जाता है। भारी मलको हरनेवाले रामने आशीर्वाद देकर लक्ष्मणसे पूछा—"जिसने सेना सहित प्रणाम किया है यह कौन है, मानो तारोंसे घिरा हुआ पर्वत हो।" यह सुनकर, स्थिर और स्थूल महाभुजरूपी फलकसे विशाल पुरुषश्रेष्ठ लक्ष्मण सद्भावके साथ रामसे इस प्रकार कहता है—"हे देव, यह चन्द्रोदरका पुत्र है। खरदूषणका शत्रु और मेरा परम मित्र, पहाड़की तरह स्थिर और स्थूल चित्त। तब इस प्रकार प्रशंसा कर तत्काल लक्ष्मणने कहा कि सीताका अपहरण कर लिया गया है। कहाँ पीछे लगूँ? कहाँ खोजूँ, दैवके विमुख होनेपर क्या करूँ, राम सीताके वियोगमें मरते हैं, इनके मरनेपर मैं मरता हूँ॥१-१०॥

[१४] यह सुनकर चन्द्रोदरका पुत्र चिन्तामें पड़ गया। विमन और मलिन देह वह ऐसा लगता था मानो राहुसे पीड़ित

'जं जं किं पि वत्थु आसङ्कमि । तं तं णिप्फलु कहिँ अवडम्भमि ॥२॥
एय सुघुवि कालु किह सेविउ । णिहुणो वि वरि वङ्कउ सेविउ ॥३॥
होउ म होउ तो वि ओलग्गमि । सुणि जिह जिण दिट्ठु चलणहिँ लग्गमि ॥४॥
णिहि केत्तडउ कालु विणडेसइ । अत्तहेँ णं णिहलु णि णिउ होसइ' ॥५॥
एम भणेवि सुत्तु णारायणु । 'कुवेँ लग्गेवउ केत्तिउ कारणु ॥६॥
ताव गवेसहुँ जाम णिहालिय' । लहु सण्णाह-भेरि अप्फालिय ॥७॥
साहणु दस-दिसेहिँ संचलिउ । आउ पडीवउ जय-सिरि-मेल्लिउ ॥८॥
जोइस-चक्कु णाइँ परियत्तउ । णं णिहुवणु सिद्धि ण पत्तउ ॥९॥

घत्ता

विज्जाहर-साहणु स-धउ स-वाहणु थिउ हेट्ठामुहु विमण-मणु ।
हिम-वाएँ दड्ढउ मयरन्दड्ढउ णं कोमाणउ कमल-वणु ॥१०॥

[१५]

दुवई

वुत्तु विराहिएण 'सुर-डामरेँ तिहुअण-जण-भयावणे ।
वणेँ णिवसहुँ ण होइ खर-दूसणेँ मुएँ जीवन्तेँ रावणे ॥१॥
सम्बुक्कु महँ वि असि-रयणु लेवि । को जीवइ जम-मुहेँ पइसरेवि ॥२॥
जहिँ अच्छइ इन्दइ भाणुकण्णु । पच्चामुहु मउ मारिच्चिव अण्णु ॥३॥
घणवाहणु जहिँ अक्खय-कुमारु । सहसमइ तिसिरंसगु दुण्णिवारु ॥४॥
हणुवन्तु णीलु णलु जम्बवन्तु । सुग्गीउ समर-भर-उव्वहन्तु ॥५॥
अङ्गङ्गय-गवय-गवक्ख जेत्थु । तहोँ वन्धु वहेँ वि को वसइ एत्थु' ॥६॥
वयणेण तेण लक्खणु णिरुद्धु । गय-गन्धेँ णाइँ मइन्दु कुद्धु ॥७॥
'सुट्ठु वि रुट्ठेहिँ मयङ्गएहिँ । किं हम्मइ सीहु कुरङ्गएहिँ ॥८॥

चन्द्रमा हो। "मैं जिस-जिस किसी भी प्रभुकी शरणमें जाता हूँ वह-वह निष्फल हो जाती है, मैं कहाँ सहारा लूँ। इसे छोड़कर समय किस प्रकार बिताऊँ? निर्धन होते हुए भी बड़े-की सेवा करना अच्छा। हो या न हो, तो भी मैं इनकी सेवा करूँगा। जिस प्रकार मुनि जिनकी सेवा करते हैं, उसी प्रकार मैं दृढ़तासे इनके चरणोंमें लगता हूँ। विधाता कितने समय तक प्रताड़ित करेगा? अवश्य ही किसी दिन लक्ष्मी होगी?" यह विचारकर नारायणने कहा—"खोज करना कितना काम है? तबतक हम खोजें कि जबतक मिल जाये।" शीघ्र संग्राम भेरी बजवा दी गयी। सेना दसों दिशाओंमें चली। विजयश्रीसे मेल करनेवाला वह (विराधित) वापस आ गया, जैसे ज्योतिषचक्र वापस आया हो, मानो सिद्धत्व सिद्धि प्राप्त नहीं हुआ हो। ध्वज और वाहनों सहित विराधित सैन्य विमन मन होकर नीचा मुख करके इस प्रकार रह गया मानो हिमवानसे आहत मकरन्दसे भरा मुरझाया हुआ कमल वन हो ॥१–१०॥

[१५] विराधितने कहा—'खरदूषणके मरनेपर, और देवोंके लिए भयंकर, त्रिभुवनजनके लिए भयावह रावणके जीवित रहनेपर वनमें रहना सम्भव नहीं है। शम्बूकका वध कर, असिरत्न लेकर, तथा यमके मुखमें प्रवेश कर कौन जीवित रह सकता है, जहाँ इन्द्रजीत, भानुकर्ण, पंचमुख, मय, मारीच, दूसरा मेघवाहन और अक्षयकुमार हैं। सहस्रमति और दुर्निवार विभीषण, हनुमान्, नील, नल, जाम्बवन्त और समरभार उठानेवाला सुग्रीव है। जहाँ अंग, अंगद, गवय, गवाक्ष हैं, वहाँ उसके भाईका वध करनेके लिए यहाँ कौन रहता है।" इन शब्दोंसे लक्ष्मण विरुद्ध हो उठा, जैसे गजगन्धसे सिंह विरुद्ध हो उठा हो। क्या अच्छी तरह क्रुद्ध गजों और हरिणोंके द्वारा सिंह

रोसग्गु वि वक्कु ण होइ जेहिं । किं णिसियर-सण्डेहिं गहणु तेहिं ॥९॥

घत्ता

जे णरवइ अक्किलय रावण-पक्खिलय ते वि रणङ्गणें णिट्ठवमि ।
सुहु दिन्तु णिरुत्तउ जुज्झु महन्तउ दूसण-पन्थें पट्ठवमि' ॥१०॥

[११]

दुवई

भणइ पुणो वि एम विहसेवि 'आरूढेवि णरेसहुँ ।
तमलङ्कार-णयरु पइसेप्पिणु जाणइ तहिं णरेसहुँ' ॥१॥
बलु वयणेण तेण, सहुँ साहणेण, संचल्लिउ ।
णाइँ महासमुद्दु, जलयर-रउद्दु, उत्थल्लिउ ॥२॥
दिण्णाणन्द-भेरि, पडिवक्ख-खेरि, खर-वज्जिय ।
णं मयरहर-वेल, कल्लोलवोल, गलगज्जिय ॥३॥
उब्भिय कणय-दण्ड, धुव्वन्त धवल, धुअ-धयवड ।
रसमसकसमसन्त-, तडतडयडन्त-, कर गय-घड ॥४॥
कत्थइ खिलिखिलन्त, हय हिलिहिलन्त, णीसरिया ।
चञ्चल-चडुल-चवल, चलवलिय पवल, पक्खरिया ॥५॥
कत्थइ पहेँ पयट्ट, दुग्घोट्ट-थट्ट, मय-भरिया ।
सिरेँ गुमुगुमुगुमन्त,-चुमुचुमुचुमन्त,-चच्चरिया ॥६॥
चन्दण-बहल-परिमलामोय-सेय-किय-कद्दमेँ ।
रह-खुप्पन्त-चक्क-णिट्ठक्क-छडय-मड-मद्दमेँ ॥७॥
एम पयट्टु सिमिरु, णं बहल-तिमिरु, उद्दाइउ ।
तमलङ्कार-णयरु णिमिसन्तरेण संपाइउ ॥८॥
पिय-विरहेण रामु, अइ-खाम-खामु, झीणङ्गउ ।
विस-मग्गेण तेण, कन्तहेँ तणेण, णं लग्गउ ॥९॥

घत्ता

दहवयणु स-सीयउ पाणहँ भीयउ मच्छुडु एत्तहेँ णट्ठु खलु ।
मेइणि विद्दारेँवि मग्गु समारेँवि णं पायालेँ पइट्ठु बलु ॥१०॥

अवरुद्ध किया जा सकता है? जिनके द्वारा रोमका अग्रभाग भी टेढ़ा नहीं किया जा सकता, उन निशाचर समूहोंके द्वारा क्या ग्रहण? जो राजा रावण पक्षके कहे जाते हैं, उन्हें भी मैं युद्धके प्रांगणमें नष्ट करूँगा। शीघ्र ही निश्चयसे उन्हें महान् युद्ध देता हुआ दूपणके पथपर भेज दूँगा। ॥१-१०॥

[१६] विद्याधर विराधित फिर इस प्रकार कहता है, "यहाँ रहकर हम क्या करेंगे? तमलंकार नगरमें प्रवेश कर, जानकी की वहाँ खोज करेंगे।" इन शब्दोंसे, राम सेनाके साथ वहाँ इस प्रकार चले जैसे जलचरोंसे रौद्र महासमुद्र ही उछल पड़ा हो। खरसे रहित ? शत्रुको क्षोभ उत्पन्न करनेवाली आनन्द-भेरी बजा दी गयी मानो लहरोंके समूहवाली समुद्रकी बेला ही गरज उठी हो। स्वर्णदण्ड उठा लिये गये। धवल ध्वजपट फहने लगे। गजघटाएँ रसमसाती और कसमसाती हुई तड़-तड़ करने लगीं। कहीं खिलखिलाते और हिनहिनाते हुए घोड़े निकलने लगे। चंचल, चटुल और चपल चल-वलयसे प्रबल उन्हें कवच पहना दिये गये। कहीं मदसे भरी हुई, जिसके सिरपर भ्रमर गुन-गुन और घुम-घुम कर रहे हैं ऐसी गजघटा पथपर चल पड़ी। जिसमें चन्दनवल परिमलके आमोदके पसीनेसे कीचड़ मची हुई है, तथा रथके गड़ते हुए चक्रोंसे निरुद्ध भटोंका मर्दन किया जा रहा है, ऐसे पथपर शिविर चला, मानो प्रचुर अन्धकार दौड़ा हो। वह उस तमलंकार नगर एक पलके भीतर पहुँच गया। अत्यन्त क्षम राम प्रियाके विरहसे क्षीणशरीर होकर ऐसे लगते थे, मानो कान्ताके उसी मार्गसे जा लगे हों। प्राणोंसे भयभीत सीता सहित दुष्ट रावण शायद यहाँ तो नहीं भाग आया, मानो इसीलिए धरती विदीर्ण कर रास्ता बनाकर रामने पातालोकमें प्रवेश किया ॥१-१०॥

[१७]

दुवई

ताव पचण्डु वीरु खर-दूसण-णन्दणु सण्णिसारणो ।
सो सण्णहेँ वि सुन्दु पुर-बारेँ परिट्ठिउ गहिय-पहरणो ॥१॥
जं थक्कु सुन्दु रणमुहेँ रउद्दु । उच्छाहिउ राहव-बल-समुद्दु ॥२॥
णवर कलयलारावु उट्ठिउ दोहिँ मि सेण्णेहिँ अब्भिडमाणेहिँ
जायं च जुज्झं महा-गोन्दलुद्दाम-घोरारुणं मुक्क-हक्कारवं ॥३॥
विरसिय-सय-सङ्ख-कंसाल-कोलाहलं काहलं-ढड्ढरी-झल्लरी-
मद्दलुल्लोल-वज्जन्त-भम्भीस-भेरी-सरुआ-हुडुक्काउलं ॥४॥
पसरिय-गय-गिल्ल-कल्लोल-गज्जन्त-गम्भीर-भीसावणोरालि-
मेल्लन्त-रुप्पन्त, घटा-जुअं पाडियं मेड-पाइक्कयं भिण्ण-चक्कलयलं ॥५॥
सललिय-रह-चक्क-खोणी-पखुप्पन्त-धुप्पन्त-चिन्धावलि-हेम-
दण्डुज्जलं-चामरुप्पीड-विज्जिज्जमाणं स-जोहं महासन्दणावीढयं ॥६॥
हिलिहिलिय-तुरङ्ग-मुक्खुण्ण-कप्पणं चलं चञ्चलङ्गं महा-दुज्जयं
दुद्धरं दुण्णिरिक्खं मही-मण्डलावत्त-देन्तं हयाणं बलं ॥७॥
हुलि-हल-मुसलग्ग-कोन्तेहिँ अद्धेन्दु-सूलेहिँ णावल्ल-भल्लेहिँ णाराय-
सव्वेहिँ भिण्णं करालं ललन्तन्त-मालं अ-सीसं कबन्धं पणच्चावियं ॥८॥

घत्ता

तहिँ सुन्द-विराहिय समर-जसाहिय अवरोप्परु वलग्गन्त-कलि ।
पहरन्ति महा-रणेँ मेइणि-कारणेँ णं भरहेसर-बाहुबलि ॥९॥

[१८]

दुवई

चन्दणहाएँ ताव जुज्झन्तु णिवारिउ णियय-णन्दणो ।
'दीसइ ओहु ओहु खर-दूसण-सम्बुकुमार-मद्दणो ॥१॥
जुज्झेवउ सुन्द ण होइ कज्जु । जीवन्तहँ होसइ अण्णु रज्जु ॥२॥

[१७] तबतक खरदूषणका जो प्रचण्ड वीर पुत्र सुण्ड था, उनका निवारण करनेवाला, वह तैयार होकर अस्त्र लेकर नगरके द्वारपर स्थित हो गया। जब भयानक युद्ध-मुखमें सुण्ड स्थित हो गया तो रामका बलरूपी समुद्र दौड़ा। कल-कल शब्द उठा। युद्ध करती हुई दोनों सेनाओंके बीच जिसमें हा-हा शब्द किया जा रहा है, जो बजाये गये शतशंखों और कंसालोंके कोलाहलसे पूर्ण है, काहल, टट्टरी, झल्लरी, मर्दल, उत्कट बजती हुई भंभीस, भेरी, सकंजा और हुडुक्कासे व्याप्त है, प्रसाधित गजोंके गण्डस्थलसमूह गरजते हुए गम्भीर भयानक आवाज छोड़ते हुए और बजते हुए घण्टोंसे जो युक्त हैं, जिसमें महावत और पैदल सैनिक गिरा दिये गये हैं, वक्षःस्थल छेद दिये गये हैं, जो लीलापूर्वक रथचक्रों, धरतीमें गड़ते और हिलते हुए चिह्नावलियों, स्वर्णदण्डोंसे उज्ज्वल है, जिसमें चामरसे हवा की जा रही है, जो योद्धाओं सहित है, जिसमें रथोंकी बड़ी-बड़ी पीठें हैं ऐसा युद्ध होने लगा। जो हिलते हुए अश्वोंके ऊँचे कानोंवाला है, जो चल, चंचलांग और अत्यन्त दुर्जेय है, दुर्धर दुदर्शनीय है, अश्वोंका ऐसा बल महीमण्डलपर आवर्त दे रहा था। हुलिहल—मूसलाग्र, कोंतों, अर्धेन्दु, शूलों, सावल्ल और भालों, तीरों, शल्योंसे जो विदीर्ण और भयंकर है, जिसमें आँतोंकी माला झूल रही है, और बिना सिरके धड़ जिसमें नचाये जा रहे हैं। जिसमें एक दूसरेपर कलह बढ़ रहा है, ऐसे युद्धयशके अधिपति सुण्ड और विराधित, उस महायुद्धमें धरतीके लिए प्रहार करने लगे मानो भरत और बाहुबलि ही प्रहार कर रहे हों ॥१-९॥

[१८] तब चन्द्रनखाने युद्ध करते हुए अपने पुत्रको मना किया कि "खरदूषण और शम्बुकुमारका वध करनेवाला योद्धा यह है। हे सुण्ड, युद्ध करनेसे काम नहीं होगा। जीवित रहनेपर

घरें गम्पिणु सुर-पञ्चाणणासु । कुवारउ करहु दसाणणासु ॥३॥
ओसरिउ सुण्ढु वयणेण तेण । गउ लङ्क पराइउ तक्खणेण ॥४॥
एत्थु वि विरहिउ पइट्ठु रामु । णं कामिणि-जणु मोहन्तु कामु ॥५॥
खर-दूसण-मन्दिरें पइसरेवि । चन्दोयर-पुत्तहों रज्जु देवि ॥६॥
साहारु ण बन्धइ कहि मि रामु । सइदेहि-विओएँ खामु खामु ॥७॥
रह-तिक्क-चउक्कें हिं परिभमन्तु । दीहिय-विहार-मढ परिहरन्तु ॥८॥
गउ ताम जाम जिण-भवणु दिट्ठु । परिअञ्चेंवि अब्भन्तरें पइट्ठु ॥९॥

घत्ता

जिणवर णिज्झाएँ वि चित्तें झाएँ वि जाइ णिरारिउ विउलमइ ।
माहुट्ठेंहिं भासेंहिं थोत्त-सहासेंहिं थुणइ स यं भु सणाहियइ ॥१०॥

●

एक्कचालीसमो संधि

खर-दूसण गिलेंवि चन्दणहिहें चित्ति ण माइय ।
णं खय-काल-छुह रावणहों पडीवी धाइय ॥

[१]

सम्बुकुमार-वीरें अत्थमिएँ । खर-दूसण-संगामें समत्तएँ ॥१॥
दूरोसारिएँ सुन्द-महब्बलें । तमलङ्कार-णयरु गएँ हरि-बलें ॥२॥
पत्थएँ असुर-मल्लें सुर-डामरें । लङ्काहिवें बहु-लक्ख-महाथरें ॥३॥
पर-बल-चल-पवणाहिन्दोलणें । सइरि-समुद्द-रवद्द-विरोलणें ॥४॥
सुरकुक्कुस-मयगल-गलथल्लणें । दाण-रणङ्गणें हत्थुत्थल्लणें ॥५॥

दूसरा राज्य मिल जायेगा। अच्छा है जाकर देवसिंह रावणसे तुम पुकार करो।" इन शब्दोंसे कुमार सुण्ड हट गया। वह लंका गया, वहाँ तत्काल पहुँच गया। यहाँ विराधितके साथ राम प्रविष्ट हुए मानो कामिनीजनको मुग्ध करता हुआ काम हो। खरदूषणके भवनमें प्रवेश कर चन्द्रोदरके पुत्र विराधितको राज्य देकर, राम किसी भी प्रकार ढाढ़स नहीं बाँधते। वैदेही-के वियोगमें वह अत्यन्त क्षीण थे। रथ्या, तिमुहानी, चौमुहा-नियोंमें परिभ्रमण करते हुए, लम्बे विहार और मठ छोड़ते हुए वह जब गये तो उन्हें जिनमन्दिर दिखाई दिया। उसकी परिक्रमा कर वह भीतर प्रविष्ट हुए। जिनवरके दर्शन कर, चित्तमें ध्यान कर उनकी अत्यन्त विमल मति हो गयी। अपभ्रष्ट (आकृष्ट) भाषाओं तथा हजारों स्तोत्रोंसे बलपति रामने स्वयं स्तुति की ॥१–१०॥

●

इकतालीसवीं सन्धि

खरदूषणको नष्ट करके भी चन्द्रनखाको तृप्ति नहीं हुई, मानो वह फिर क्षयकालकी भूखके समान रावणके पास दौड़ी।

[१] शम्बुकुमार वीरका अन्त और खरदूषण-संग्राम समाप्त होनेपर, सुण्डके महाबलको दूर हटा दिये जानेपर, लक्ष्मण और रामके तमलंकार नगर जानेपर, यहाँ असुरोंमें मल्ल, देवोंके लिए भयानक, बहुत-से महावरोंको प्राप्त करनेवाले, शत्रुबलके बलरूपी पवनको आन्दोलित करनेवाले, शत्रुरूपी समुद्रका विरोलन करनेवाले, अंकुशसे मुक्त मतवाले गजोंको गर्दनियाँ

विहडिय-भड-थड-किय-कडमद्दणेँ । कामिणि-जण-मण-णयणाणन्दणेँ ॥६॥
सीयएँ सहु सुरवर-संतावणेँ । छुडु छुडु लङ्क पइट्ठएँ रावणेँ ॥७॥
तहिँ अवसरेँ चन्दणहि पराइय । णिवडिय कम-कमलेँहिँ दुह-धाइय ॥८॥

घत्ता

सुम्बुकुमारु मुउ खर-दूसण जम-पहेँ लाइय ।
पइँ जीवन्तएँ ण एही अवस्थ हउँ पाइय ॥९॥

[२]

तं चन्दणहिहेँ वयणु दयावणु । णिसुणेँवि थिउ हेट्ठामुहु रावणु ॥१॥
णं मयलञ्छणु णिप्पहु जायउ । गिरि व दवग्गि-दड्ढु विच्छायउ ॥२॥
णं मुणिवरु चारित्त-विभट्ठउ । भविउ व भव-संसारहोँ तट्ठउ ॥३॥
थाइ भरन्त-णयणु मुह-कायरु । गहेँण गहिउ णं हूउ दिवायरु ॥४॥
दुक्खु दुक्खु दुक्खेणामेल्लिउ । सयण-सणेहु सरन्तु पवोल्लिउ ॥५॥
'घाइउ जेण सम्बु खरु दूसणु । तं पट्ठवमि भवणु जमसासणु ॥६॥
अहवइ एण काइँ माहप्पेँ । को ण मरइ अपूरेँ अप्पेँ ॥७॥
धीरी होहि पमायहि सोओ । कासु ण जम्मण-मरण-विओओ ॥८॥

घत्ता

को वि ण वज्जमउ आएँ जीवेँ मरिएव्वउ ।
अम्हेँहिँ तुम्हेँहि मि खर-दूसण-पहेँ जाएव्वउ ॥९॥

[३]

धीरेँवि णियय बहिणि सिय-माणणु । रयणिहिँ गउ सोवणएँ दसाणणु ॥१॥
वर-पल्लङ्केँ चडिउ लङ्केसरु । णं गिरि-सिहरेँ मइन्दु स-केसरु ॥२॥
णं विसहरु णीसासु मुअन्तउ । णं सज्जणु खल-वेड्ढिज्जन्तउ ॥३॥

देनेवाले, दान और युद्धके प्रांगणमें हाथ उठानेवाले, विघटित भटसमूहको चूर-चूर करनेवाले, कामिनीजनोंके मनोंके लिए आनन्ददायक, सीताके साथ, सुरवरको सन्ताप पहुँचानेवाले लंकाराज रावणके शीघ्र लंकामें प्रवेश करनेपर, ठीक इस अवसरपर चन्द्रनखा पहुँची। दुःखकी मारी वह (रावणके) चरण कमलोंपर गिर पड़ी। शम्बुकुमार मर गया। खरदूषण यम-पथपर पहुँचा दिये गये, आपके जीते हुए मेरी यह अवस्था, रक्षा कीजिए॥१–९॥

[२] चन्द्रनखाके दया उत्पन्न करनेवाले वचन सुनकर रावण अपना मुख नीचा करके ऐसा रह गया, मानो चन्द्रमा निष्प्रभ रह गया हो, मानो दावानलसे दग्ध कान्तिहीन गिरि हो, मानो चारित्रसे भ्रष्ट मुनिवर हो। भवसंसारसे ग्रस्त भव्य जीवके समान, जिसकी आँखें आँसुओंसे भरी हुई हैं ऐसा कातर मुख हो गया मानो राहु ग्रहसे ग्रसित दिवाकर हो। बड़ी कठिनाईसे वह अपनेको दुःखसे छुड़ा सका। स्वजनके स्नेहको स्मरण करते हुए वह बोला—"जिसने शम्बुकुमार, खर और दूषणका घात किया है, उसे आज मैं यमशासनके लिए भेज दूँगा। अथवा इस बड़प्पनसे क्या? अथवा अधूरे माप (समयमान) में कौन नहीं मरता? तुम धीरज धारण करो, और शोक छोड़ो। जन्म, मरण और वियोग किसे नहीं होते। (संसारमें) कोई भी वज्रका बना नहीं है। उत्पन्न हुआ जीव मरेगा ही। हमें और तुम्हें भी खरदूषणके पथपर जाना होगा।" ॥१–९॥

[३] लक्ष्मीको माननेवाला दशानन अपनी बहनको समझा-कर रात्रिमें सोनेके लिए गया। लंकेश्वर उत्तम पलंगपर चढ़ा, मानो गिरिशिखरपर अयाल सहित सिंह चढ़ा हो, मानो निःश्वास छोड़ता हुआ विषधर हो, मानो दुष्टके द्वारा खेद

सीया-मोहें मोहिउ रावणु । गायइ णच्चइ पढइ सुभासिउ ॥४॥
णच्चइ हसइ वियारें हिं भज्जइ । णिय-भुअहुँ जि पडीवउ कज्जइ ॥५॥
दंसण-णाण-चरित्त-विरोहउ । इह-लोयहों पर-लोयहों द्रोहउ ॥६॥
मरण-परव्वसु एउ ण जाणइ । जिह संघारु करेसइ जाणइ ॥७॥
अच्छइ मयण-सरें हिं जज्जरियउ । खर-दूसण-णाउ मि वीसरियउ ॥८॥

घत्ता

चिन्तइ दहवयणु 'धणु धण्णु सुवण्णु समत्तउ ।
रज्जु वि जीविउ वि विणु सीयएँ सव्वु णिरत्थउ' ॥९॥

[४]

तहिँ अवसरें आइय मन्दोयरि । सीहहों पासु व सीह-किसोयरि ॥१॥
वर-गणियारि व लीला-गामिणि । पियमाहविय व महुरालाविणि ॥२॥
सारङ्गि व विप्फारिय-णयणी । सत्तावीसंजोयण-वयणी ॥३॥
कलहंसि व थिर-मन्थर-गमणी । लच्छि व तिय-रूवें जुव्वणी ॥४॥
अह पोमाणिहँ अणुहरमाणी । जिह सा तिह एह वि पउराणी ॥५॥
जिह सा तिह एह वि बहु-जाणी । जिह सा तिह एह वि बहु-माणी ॥६॥
जिह सा तिह एह वि सुमणोहर । जिह सा तिह एह वि पिय-सुन्दर ॥७॥
जिह सा तिह एह वि जिण सासणें। जिह सा तिह एह वि ण कु-सासणें॥८॥

घत्ता

किं बहु जम्पिएँण उवमिज्जइ काहें किसोयरि ।
णिय-पडिछन्दएँण थिय सइँ जें णाइँ मन्दोयरि ॥९॥

[५]

तहिँ पहएँ पइसेंवि रज्जेसरि । पभणिय लङ्कापुर-परमेसरि ॥१॥
'अहों दहमुह दहवयण दसाणण । अहों दससिर दसास सिय-माणण ॥२॥
अहों तइलोक्क-चक्क-चूडामणि । वइरि-महीहर-खर-वज्जासणि ॥३॥

प्राप्त हुआ सज्जन हो। सीताके मोहमें मोहित रावण सुहावन। गाता है, बजाता है और पढ़ता है। नाचता है, हँसता है, विकारोंसे नष्ट होता है, अपने ही से वह लज्जित होता है। दर्शन, ज्ञान और चारित्रका विरोधी, इहलोक और परलोकमें दुर्भाग्यजनक कामदेवके अधीन वह यह नहीं जानता कि जानकी किस प्रकार उसका संहार कर देगी। वह कामदेवके तीरोंसे जर्जर था। वह खरदूषणका नाम भी भूल गया। दशानन सोचता है कि धन-धान्य स्वर्ण-सामर्थ्य राज्य और जीवन भी, सीताके बिना सब व्यर्थ है ॥१–९॥

[४] उस अवसरपर मन्दोदरी आयी, जैसे सिंहके पास सिंहनी आती हो। जैसे हथिनीकी तरह लीलाके साथ चलने-वाली, कोयलकी तरह मधुर बोलनेवाली, हरिणीकी तरह, बड़ी-बड़ी आँखोंवाली और चन्द्रमाके समान मुखवाली, कलहंसिनी-की तरह स्थिर और मन्द गमन करनेवाली, अपने स्त्रीरूपसे लक्ष्मीको उत्पीड़ित करनेवाली, अथवा इन्द्राणीका अनुकरण करती हुई, जैसी वह, वैसी ही यह प्रमुख रानी थी। जैसी वह, वैसी यह बहुत ज्ञानवाली थी, जैसी वह, वैसी यह बहुत अभिमानिनी थी। जैसी वह, वैसी यह मनोरम थी, जैसी वह वैसी यह अपने प्रियके लिए सुन्दर थी, जिस प्रकार वह, उसी प्रकार यह जिनशासनमें थी। जिस प्रकार वह, उसी प्रकार यह कुशासनमें नहीं थी। बहुत कहनेसे क्या? उस कृशोदरीकी उपमा किससे दी जाए? मन्दोदरी जैसे अपने प्रति-उपमानके समान स्थित थी ॥१–९॥

[५] वहाँ पलंगपर चढ़कर राजेश्वरी लंकापरमेश्वरी बोली, "अहो दशमुख, दशवदन, दशानन, अरे दशशिर, दशमुख और श्रीको माननेवाले, अहो त्रिलोकचक्रचूड़ामणि, शत्रुरूपी

वीसपाणि णिसियर-णरकेसरि । सुर-मिग-वारण दारण-अरि-करि ॥४॥
पर-णरवर-पायार-पलोट्टण । दुद्दम-दाणव-बल-दलवट्टण ॥५॥
जइयहुँ भिडिउ रणङ्गणे इन्दहों । जाउ कुल-क्खउ सज्जण-विन्दहों ॥६॥
तहिँ वि कालेँ पइँ दुक्खु ण णायउ । जिह खर-दूसण-मरणेँ जायउ’ ॥७॥
णासइ पलोयए णिसियर-णाहें । ‘सुन्दरि णिहु ण करइ अवराहो ॥८॥

घत्ता

तो हउँ कहमि तउ णउ खर-दूसण-सुक्खुउब्भइ ।
पुच्छिउ डाहु पर जं मइँ वइदेहि ण इच्छइ’ ॥९॥

[६]

तं णिसुणेवि वयणु ससिवयणएँ । पुणु वि हसेवि वुत्तु मिगणयणएँ ॥१॥
‘अहों दहगीव जीव-संतावण । एहु अजुत्तु वुत्तु पइँ रावण ॥२॥
किं जगेँ अयस-पडहु अप्फालहि । अमल णिसुद्ध वंस किं मइलहि ॥३॥
किं णारइयहों णरएँ ण णीहहि । पर-धणु पर-कलत्तु जं ईहहि ॥४॥
जिणवर-सासणेँ पञ्च विरुद्धइँ । दुग्गइ जाइ णिन्ति अविसुद्धइँ ॥५॥
पहिलउ वहु छज्जीव-णिकायहुँ । बीयउ गम्मइ मिच्छावायहुँ ॥६॥
तइयउ जं पर-दव्वु लइज्जइ । चउथउ पर-कलत्तु सेविज्जइ ॥७॥
पञ्चमु णउ पमाणु घरसारहों । जायहिँ गम्मइ भव-संसारहों ॥८॥

घत्ता

पर-लोएँ वि ण सुहु इह-लोएँ वि अयस-पडाइय ।
सुन्दर होइ ण तिय एँव-वेसें अमडरि आइय’ ॥९॥

[७]

पुणु पुणु पिहुल-णियम्ब किसोयरि । भणइ हिमयत्तणेण मन्दोयरि ॥१॥
‘जं सुहु कालकूड विसु खन्तहुँ । जं सुहु पलयाणलु पइसन्तहुँ ॥२॥

पर्वतके लिए तीव्र वज्राशनि, बीस हाथवाले निशाचर सिंह, देवरूपी मृगोंका निवारण करनेवाले, शत्रुरूपी गजको विदीर्ण करनेवाले, शत्रुमनुष्योंके प्राकारोंको नष्ट करनेवाले, दुर्दम दानव बलका दलन करनेवाले रावण, जब तुम इन्द्रसे युद्धके प्रांगणमें लड़े थे तब सज्जनसमूहका नाश हुआ था। उस समय भी तुम्हें इतना दुःख नहीं हुआ था कि जितना खरदूषणके मरनेके समय हुआ।" इसपर निशाचरनाथ उलटा कहता है—"हे सुन्दरी, यदि इसे अपराध न मानो तो मैं तुमसे कहता हूँ कि खरदूषणका दुःख नहीं है। मुझे तो केवल इस बातका दाह है कि सीता मुझे नहीं चाहती" ॥१-५॥

[६] यह वचन सुनकर चन्द्रमुखी और मृगनयनी मन्दोदरी-ने हँसकर कहा, "अहो जीवोंको सतानेवाले दशग्रीव, रावण! तुमने यह अत्यन्त अनुचित बात कही। दुनियामें अपने अप-यशका डंका क्यों बजवाते हो, दोनों विशुद्ध कुलोंको क्यों मैला करते हो, क्या नारकियोंके नरकसे तुम्हें डर नहीं लगता कि जो तुम दूसरोंके धन और स्त्रीकी इच्छा करते हो, जिनवरके शासनमें पाँच चीजें अत्यन्त निरुद्ध और अविशुद्ध मानी गयी हैं। इनसे (जीव) निश्चयरूपसे दुर्गतिमें जाता है। पहली है छह निकायके जीवोंका वध करना। दूसरी मिथ्यावादमें जाना। तीसरी है कि जो दूसरेका धन लिया जाता है, चौथा है कि परकलत्रका सेवन किया जाता है। पाँचवीं है कि गृह-द्वारको प्रमाण लिया जाना। इन चीजोंसे जीवको भवसंसारमें घूमना पड़ता है। परलोकमें भी सुख नहीं है और इस लोकमें अपयशकी पताका फैलती है। स्त्री सुन्दर नहीं होती इसके रूपमें यमनगरी ही आ गयी है" ॥१-९॥

[७] विशाल नितम्बोंवाली कृशोदरी बार-बार हृदयसे कहती है—"जो सुख कालकूट विष खानेमें है, जो सुख मलया-

जं सुहु भव-संसारेँ भमन्तहुँ । जं सुहु णायरएहिँ णिवसन्तहुँ ॥३॥
जं सुहु जम-सासणु पेक्खन्तहुँ । जं सुहु असि-पञ्जरेँ अच्छन्तहुँ ॥४॥
जं सुहु पलयाणल-मुहँ-कन्दरेँ । जं सुहु पञ्चाणण - दाढन्तरेँ ॥५॥
जं सुहु फणि-माणिक्कु खुडन्तहुँ । तं सुहु पर णारि भुञ्जन्तहुँ ॥६॥
जाणन्तो वि तो वि जइ वञ्छहि । तो कज्जेण केण मइँ पुच्छहि ॥७॥
सच पासिउ किं कोइ वि वलियउ । जेण पुरन्दरो वि पक्खलियउ ॥८॥

घत्ता

जं जसु भावइ तहोँ तं अणुराउ ण भज्जइ ।
अइ वि असुन्दरउ जं पइँ कोइ तं छज्जइ' ॥९॥

[८]

तं णिसुणेवि वयणु दहवयणेँ । पभणिय णारि विरिक्खिय-णयणेँ ॥१॥
'जइयहुँ गयउ आसि अचलिन्दहोँ । वन्दण-हत्तिएँ परम-जिणिन्दहोँ ॥२॥
तइयहुँ दिट्ठु एक्कु मइँ मुणिवरु । णाउँ अणन्तवीरु परमेसरु ॥३॥
तासु पासेँ वउ लइउ ण भज्जमि । मण्डएँ पर-कलत्तु णउ भुञ्जमि ॥४॥
अहवइ पुणु काइँ मन्दोयरि । जइ णच्चन्ति णियहि लङ्काउरि ॥५॥
जइ मग्गहि धणु धण्णु सुवण्णउ । राउलु रिद्धि- विद्धि-संपण्णउ ॥६॥
जइ आरुहहि तुरङ्ग-गइन्देँहिँ । जइ वन्दिज्जइ वन्दिण-वन्देँहिँ ॥७॥
जइ मग्गहि णिक्कण्टउ रज्जु । जइ किर मइँ वि जियन्तेँण कज्जु ॥८॥

घत्ता

सयलन्तेउरहोँ जइ इच्छहि णउ रण्डत्तणु ।
तो वरि जाणइहेँ मन्दोयरि करेँ दूअत्तणु' ॥९॥

[९]

तं णिसुणेवि वयणु दहवयणहोँ । पभणिय मन्दोयरि पुरि मयणहोँ ॥१॥
'हो हो सच्चु लोउ जगेँ दूहउ । पइँ मेल्लेवि अण्णु ण सूहउ ॥२॥

नलमें प्रवेश करनेमें है, जो सुख भवसंसारमें परिभ्रमण करनेमें है, जो सुख नारकियोंके बीच निवास करनेमें है, जो सुख यम-शासनको देखनेमें है, जो सुख असिपंजरपर है, जो सुख प्रलया-नलकी मुखगुहामें है, जो सुख सिंहकी दाढ़के भीतर है, जो सुख नागफनसे मणि तोड़नेमें है, वही सुख इस नारीका भोग करनेमें है। जानते हुए भी यदि तुम इसकी इच्छा करते हो, तो मुझसे किस कारण पूछते हो। तुम्हारी तुलनामें कौन बलवान् है कि जिसने पुरन्दरको भी प्रतिस्खलित कर दिया। जिसको जो आ पड़ता है (अच्छा लगता है) उससे उसका अनुराग कम नहीं होता। यद्यपि असुन्दर ही हो लेकिन राजा जो करता है वह शोभा देता है" ॥१-९॥

[८] यह वचन सुनकर विशालनयन रावणने अपनी पत्नीसे कहा—"जब मैं सुमेरु पर्वतपर गया हुआ था परम जिनेन्द्रकी वन्दना-भक्तिके लिए, तब मैंने वहाँ एक मुनिके दर्शन किये थे उनका नाम अनन्तपरमेश्वर था। उनके पास जो व्रत लिया था, उसे नष्ट नहीं करूँगा। मैं बलपूर्वक दूसरेकी स्त्रीका भोग नहीं करूँगा। अथवा हे मन्दोदरी, इससे क्या? यदि तुम लंका नगरीको आनन्दित देखना चाहती हो, यदि तुम धन-धान्य और स्वर्ण माँगती हो, तथा ऋद्धि और वृद्धिसे सम्पन्न राजकुल माँगती हो, यदि घोड़ों और गजेन्द्रोंपर चढ़ना चाहती हो, यदि तुम वन्दीजनोंसे वन्दनीय होना चाहती हो, यदि निष्कंटक राज्य चाहती हो और यदि तुम्हें मेरे जीवित रहनेसे काम है? यदि तुम समूचे अन्तःपुरको राँड़ नहीं देखना चाहती तो हे मन्दोदरी, तुम जानकीसे मेरा दूतकार्य करो।" ॥१-९॥

[९] रावणसे उन शब्दोंको सुनकर कामदेवकी नगरी मन्दो-दरी बोली, "हो-हो, संसारमें सब लोग दुर्भग हैं, तुम्हें छोड़कर

सुरकरि-अहिसिञ्चिय-सिय-सेविहेँ । जो आएसु देहि महएविहेँ ॥३॥
एव वि करमि तुम्हारउ वुत्तउ । पहु-छन्देण असुन्दु वि जुत्तउ' ॥४॥
ए आलाव परोप्परु आवेँहिँ । रयणिहेँ चउ पहरा हय जावेँहिँ ॥५॥
अरुणुग्गमेँ अच्चन्त-किसोयरि । सीयहेँ दूई गय मन्दोयरि ॥६॥
सहुँ अन्तेउरेण उद्धूसिय । गणियारि व गणियारि-विहूसिय ॥७॥
वणु णिव्वाणरवणु संपाइय । राहव-घरिणि जेत्थु णिज्झाइय ॥८॥

घत्ता

वे वि मणोहरिउ रावण-रामहुँ पिय-णारिउ ।
दाहिण-उत्तरेँण णं दिस-गइन्द-गणियारिउ ॥९॥

[१०]

राम-घरिणि जं दिट्ठ किसोयरि । हरिसिय णिय-मणेण मन्दोयरि ॥१॥
'अहिणव-णारि-रयणु अवइण्णउ । एउ ण जाणहुँ कहिँ उप्पण्णउ ॥२॥
सुट्ठु मि कामुक्कोयण-गारउ । मुणि-मण-मोहणु णयण-पियारउ ॥३॥
साहु साहु णिउणाउसि पयावइ । तुह विण्णाण-सत्ति को पावइ ॥४॥
अह किं चिरधरेण बहु-बोल्लएँ । सइँ कामो वि पडइ कामिल्लएँ ॥५॥
कवणु गहणु तो लङ्का-राएं' । एम पसंसेँ वि रूएँ अणुराएं ॥६॥
पिय-वयणेहिँ दसाणण-पत्तिएँ । वुच्चइ राम-घरिणि विहसन्तिएँ ॥७॥
'किं बहु-जम्पिएण परमेसरि । जीविउ एक्कु सहलु तउ सुन्दरि ॥८॥

घत्ता

सुरवर-डमर-करु तइलोक्क-चक्क-संतावणु ।
काइँ ण अत्थि तउ जहेँ आणवडिच्छउ रावणु' ॥९॥

[११]

इन्दइ-भाणुकण्ण-घणवाहण । अक्खय-मय-मारिच्च-विहीसण ॥१॥
जं चलणेहिँ चिवहि आरूसेँ वि । तं सीसेण लयन्ति असेस वि ॥२॥

दूसरा कोई सुन्दर नहीं है, जो ऐरावतसे अभिषिक्त श्रीसे सेवित है ऐसी इस महादेवीके लिए जो आदेश देते हो इस समय तुम्हारा कहा करूँगी, क्योंकि कभी स्वार्थके कारण अयुक्त भी युक्त होता है।" इस प्रकार जब उनमें वार्तालाप हो रहा था कि तबतक रात्रिके चार प्रहर समाप्त हो गये। सूर्योदय होनेपर अत्यन्त कृशोदरी मन्दोदरी सीता देवीकी दूती बनकर गयी। अन्तःपुरके साथ विभूषित वह हथिनियोंसे शोभित हथिनीके समान थी। वह देवोंके लिए सुन्दर नन्दनवनमें पहुँची और रामकी गृहिणी सीता देवीको देखा। रावण और राम, दोनोंकी प्रिय स्त्रियाँ सुन्दर थीं, मानो दक्षिण और उत्तर दिशाओंके दिग्गजोंकी हथिनियाँ हों ॥१-९॥

[१०] जब कृशोदरी रामकी स्त्रीको देखा तो मन्दोदरी अपने मनमें बहुत हर्षित हुई। (वह सोचती है) यह अभिनव नारीरत्न अवतीर्ण हुआ है, नहीं मालूम यह कहाँ उत्पन्न हुआ है, यह देवताको काम-कुतूहल उत्पन्न करनेवाली, मुनिमनको मोहित करनेवाली और नेत्रोंके लिए प्रिय है। साधु-साधु ! प्रजापति तुम बहुत निपुण हो। तुम्हारी निर्माणशक्तिको कौन पा सकता है ? अथवा विस्तार और बहुत बोलनेसे क्या ? स्वयं कामदेव कामातुरतामें पड़ जाता है तो लंकाराजकी तो बात क्या है? इस प्रकार अपने मनमें प्रशंसा कर, अनुरागपूर्वक प्रिय शब्दोंमें हँसते हुए, दशाननकी पत्नी रामकी गृहिणीसे कहती है—"हे परमेश्वरी, बहुत कहनेसे क्या ? हे सुन्दरी, केवल तुम्हारा ही एक जीवन सफल है। सुरवरोंको भय उत्पन्न करनेवाला, त्रिलोकचक्रके लिए सन्तापदायक, रावण जहाँ तुम्हारी आज्ञाकी इच्छा रखता है, वहाँ तुम्हारे पास क्या नहीं है ? ॥१-९॥

[११] इन्द्रजीत, भानुकर्ण, घनवाहन, अक्षय, मय, मारीच और विभीषण, जो तुम रूठकर अपने चरणोंसे ठुकरा दोगी,

अण्णु वि सयलु एउ अन्तेउरु । सालङ्कारु सन्दोरु स-णेउरु ॥३॥
अट्ठारह सहास वर-विलयहुँ । णिच्च-पसाहिय-सोहिय-तिलयहुँ ॥४॥
आयहुँ सव्वहुँ तुहुँ परमेसरि । णीसावण्णु रज्जु करि सुन्दरि ॥५॥
रावणु मुएँवि अण्णु को चङ्गउ । रावणु मुएँवि कवणु-तणु-अङ्गउ ॥६॥
रावणु मुएँवि अण्णु को सूरउ । पर-बल-मद्दणु कुलासा-पूरउ ॥७॥
रावणु मुएँवि अण्णु को बलियउ । सुरवर-णियरु जेण पडिखलियउ ॥८॥
रावणु मुएँवि अण्णु को भल्लउ । जो तिहुयणहों मल्लु एक्कल्लउ ॥९॥
रावणु मुएँवि अण्णु को सूहउ । जं आपेक्खेंवि मयणु वि दूहउ ॥१०॥

घत्ता

तहों दसासरहों कुवलय-दल-दीहर-णयणहों ।
भुञ्जहि सयल महि महएवि होहि दहवयणहों' ॥११॥

[१२]

तं तहें कडुअ-वयणु आयण्णेंवि । रावणु जीविउ तिण-समु मण्णेंवि ॥१॥
सील-बलेण वलिय णउ कम्पिय । रूसेंवि णिट्ठुर वयण पजम्पिय ॥२॥
'हलें हलें काइँ काइँ पइँ वुत्तउ । उत्तिम-णारिहिँ एउ ण जुत्तउ ॥३॥
किह दुहयहों दूअत्तणु किज्जइ । एण णाइँ महु हासउ दिज्जइ ॥४॥
मच्छुडु तुहुँ पर-पुरिस-पइट्ठी । तें कज्जें महु देहि दुबुद्धि ॥५॥
मत्थएँ पडउ वज्जु तहों जारहों । हउँ पुणु भत्तिवन्त भत्तारहों' ॥६॥
सीयहें वयणु सुणेंवि मणे डोल्लिय । णिसियर-णाह-णारि पडिबोल्लिय ॥७॥
'जइ महएवि-पट्टु ण पडिच्छहि । जइ लङ्काहिउ कह वि ण इच्छहि ॥८

घत्ता

तो कन्दन्ति पइँ तिलु तिलु करवत्तेंहिँ कप्पइ ।
अण्णु मुहुत्तएँण णिसियरहँ विहज्जेंवि अप्पइ' ॥९॥

वह ये सब अपने माथेपर लेंगे। और भी यह समूचा अलंकार, हार और डोर सहित अन्तःपुर है, जो नित्य प्रसाधित और शोभित तिलक अट्ठारह हजार श्रेष्ठ स्त्रियाँ हैं, इन सबकी तुम परमेश्वरी हो। हे सुन्दरी, असामान्य राज्य करो। रावणको छोड़कर और कौन अच्छा है। रावणको छोड़कर और कौन शरीरसे कामदेव है। रावणको छोड़कर और कौन शूरवीर, शत्रुसेनाका नाश करनेवाला और कुलाशाको पूरा करनेवाला है? रावणको छोड़कर दूसरा कौन बलवान् है, कि जिसने सुरवरसमूहको प्रतिस्खलित कर दिया। रावणको छोड़कर और कौन भला है कि जो त्रिभुवनमें अकेला मल्ल है। रावणको छोड़कर दूसरा कौन सुभग है कि जिसे देखकर काम भी दुर्भग है? कुवलयदलके समान दीर्घ नेत्रवाले लंकेश्वर दशाननकी तुम महादेवी बन जाओ और समस्त धरतीका भोग करो" ॥९–११॥

[१२] उसके इन कटु वचनोंको सुनकर, रावण और अपने जीवनको तिनकेके बराबर समझकर, शीलके बलसे बलवती वह जरा भी नहीं काँपी। क्रुद्ध होकर वह निष्ठुर वचन बोली—"हला-हला, तुमने क्या-क्या कहा। उत्तम स्त्रियोंके लिए यह उपयुक्त नहीं है। तुम्हारे द्वारा रावणका दूतत्व कैसे किया जा रहा है, इससे जैसे मुझे हँसी आती है। शायद तुम किसी परपुरुषमें इच्छा रखती हो, उसी कारण मुझे यह दुर्बुद्धि दे रही हो। उस यारके सिरपर वज्र पड़े। मैं अपने पतिमें भक्ति रखती हूँ।" सीताके वचन सुनकर मन्दोदरीका मन काँप गया, निशाचरनाथकी वह पत्नी बोली, "यदि तुम महादेवी पट्टकी इच्छा नहीं रखती, यदि लंकाराजको किसी भी तरह नहीं चाहती तो आक्रन्दन करती हुई तुम करपत्रोंसे तिल-तिल काटी जाओगी, और भी एक मुहूर्तमें विभक्त कर निशाचरोंको सौंप दी जाओगी ॥१–९॥

[१३]

पुणुपुणुवयणेँ हिँ जणयहों धीयएँ । णिब्भच्छिय मन्दोयरि सीयएँ ॥१॥
'केत्तिउ वारवार बोल्लिज्जइ । जं चिन्तिउ मणेण तं किज्जइ ॥२॥
जइ वि अज्जु करयलें हिँ कप्पहोँ । जइ वि धरेँ वि सिव-सायहोँ अप्पहोँ ॥३॥
जइ वि वइसणरेँ हुआसणेँ मेल्लहोँ । जइ वि महग्गय-दन्तेँ हिँ पेल्लहोँ ॥४॥
तो वि खलहोँ तहोँ कुच्छिय-कम्महोँ । पर-पुरिसहोँ णिवित्ति इह जम्महोँ ॥५॥
एक्कु जि णिय-भत्तारु पहुच्चइ । जो जय-कच्छिएँ खणु वि ण मुच्चइ ॥६॥
जो असुरा-सुर-जण-मण-वल्लहु । तुम्हारिसहुँ कुणारिहिँ दुल्लहु ॥७॥
जो णरवर-मइन्दु भीसावणु । धणु-लङ्गूल-लील-दरिसावणु ॥८॥

घत्ता

सर-णहराउण्णेँण धणुवेय-उल्लाविय-जीहें ।
दहमुह-मय-गउ फाडेवउ राहव-सीहें' ॥९॥

[१४]

रावण-रामचन्द-रमणीयहुँ । जाम चवन्ति मन्दोयरि-सीयहुँ ॥१॥
ताव दसाणणु सयमेवाइउ । हत्थि व गङ्गा-वेणि पराइउ ॥२॥
भसलु व गन्ध-लुद्धु विहलङ्घलु । जाणइ-वयण-कमल-रस-लम्पडु ॥३॥
करयल धुणइ लुणइ सुकारइ । खेड्डु करेवि देवि पच्चारइ ॥४॥
विण्णत्तिएँ पसाउ परमेसरि । हउँ कवणेण हीणु सुर-सुन्दरि ॥५॥
किं सोहग्गेँ भोग्गेँ ऊणउ । किं विरूयउ किं अत्थ-विहूणउ ॥६॥
किं लायण्णेँ वण्णेँ हीणउ । किं संगामेँ दाणेँ रणेँ दीणउ ॥७॥
काइँ कज्जेण केण ण समिच्छहि । जें महएवि-पट्टु ण पडिच्छहि' ॥८॥

घत्ता

राहव-गेहिणिएँ णिब्भच्छिउ णिसियर-राणउ ।
'ओसरु दहवयण तुहुँ अम्हहुँ जणय-समाणउ ॥९॥

[१३] जनककी बेटी सीताने बार-बार उक्तियोंसे मन्दोदरीकी भर्त्सना की—"बार-बार तुम कितना बोल रही हो" मनमें तुमने जो सोचा है वह तुम करो। यद्यपि आज करपत्रोंसे काटो, यद्यपि पकड़कर शृगाल और श्वानोंको सौंप दो, यद्यपि जलती हुई आगमें डाल दो, यद्यपि महागजके दाँतोंसे कुचल दो, तो भी, उस दुष्ट पापकर्मा परपुरुषसे इस जन्ममें मेरी निवृत्ति है। मुझे एक ही अपना पति पर्याप्त है कि जो विजयलक्ष्मीके द्वारा एक पलके लिए भी नहीं छोड़ा जाता। जो असुर, सुर और जनोंके मनका प्रिय है, वह तुम-जैसी खोटी स्त्रियोंके लिए दुर्लभ है, जो भीषण नरवररूपी सिंह हैं, जो धनुषरूपी पूँछकी लीलाका प्रदर्शन करनेवाला है, जो तीररूपी नखोंसे अरुण हैं, जिसकी धनुषरूपी लपलपाती हुई जीभ है, ऐसे रामरूपी सिंहसे, रावणरूपी मत्तगज चीर दिया जायेगा" ॥१-९॥

[१४] रावण और रामचन्द्रकी रमणियों (स्त्रियों) मन्दोदरी और सीता देवीमें जब बातें हो रही थीं तभी रावण स्वयं आया, उसी प्रकार, जिस प्रकार गंगाके तटपर हाथी आ गया हो। गन्धलुब्ध व्याकुल भ्रमरके समान जानकीके मुखरूपी कमलरसका लम्पट, वह अपने करतल धुनता है, ध्वनि करता है, बुदबुदाता है, क्रीड़ा कर देवीको पुकारता है—"हे देवी, विनतासे प्रसाद करो, हे सुरसुन्दरी, मैं किससे हीन हूँ, क्या भोग और सौभाग्यमें कम हूँ। क्या कुरूप हूँ या अर्थ रहित हूँ? क्या सौन्दर्य और वर्णमें हीन हूँ? क्या सम्मान, दान और रणमें दीन हूँ? बताओ किस कारणसे तुम मुझे नहीं चाहतीं, किस कारण तुम महादेवीपट्टकी प्रतिइच्छा नहीं करतीं। "रावणकी पत्नीने निशाचरराजाकी भर्त्सना की—" हे रावण, तुम हट जाओ, तुम मेरे पिताके समान हो।" ॥१-९॥

[१५]

जाणन्तो वि सो वि सं सुज्झहि । गेण्हहुँ वि पर-कलत्तु कहिं सुज्झहि ॥१॥
जाम ण अयस-पडहु उब्भासइ । जाम ण लङ्काणयरि विणासइ ॥२॥
जाम ण लक्खण-सीहु विरुज्झइ । जाम ण राम-कियन्तु विरुज्झइ ॥३॥
जाम ण सरवर-धोरणि सन्धइ । जाम ण तोणा-जुअलु णिबन्धइ ॥४॥
जाव ण विसम-उरत्थलु भिन्दइ । जाव ण बाहुदण्ड तउ छिन्दइ ॥५॥
सरवरेँ हंसु जेम दल-णिम्मलइँ । जाव ण तोडइ दस-सिर-कमलइँ ॥६॥
जाम ण गिद्ध-पन्ति णिव्वडइ । जाम ण णिसियर-बलु आवडइ ॥७॥
जाम ण दरिसावइ भय-चिन्धइँ । जाम ण रणेँ णच्चन्ति कबन्धइँ ॥८॥

घत्ता

जाम ण आहयणेँ कप्पिज्जहि वर-णारायहिँ ।
ताव पसाहिवइ पडु राहवचन्दहों पायहिँ ॥९॥

[१६]

तं णिसुणेंवि आरुट्ठु दसाणणु । णं वणेँ गज्जमाणेँ पञ्चाणणु ॥१॥
कोवाणल-पलित्तु लङ्केसरु । चिन्तइ विज्जाहर-परमेसरु ॥२॥
'किं जग-सासण-पन्थेँ लायमि । किं उवसग्गु किं पि दरिसावमि ॥३॥
अवसेँ भय-वसेण इच्छेसइ । महु मयणग्गि समुल्हावेसइ' ॥४॥
तहिं अवसरेँ स-तुरङ्गु स-रहवरु । गउ अत्थवणहों ताम दिवायरु ॥५॥
आय रत्ति णाणाविह-रूवेंहिं । अट्टहास मेल्लन्तेंहिं भूएँहिं ॥६॥
खर-साणउल-विराल-सियालेंहिं । बहु-चामुण्ड-रुण्ड-वेयालेंहिं ॥७॥
रक्खस-सीह-वग्घ-गय-गण्डेंहिं । मेस-महिस-वस-तुरय-णिसण्डेंहिं ॥८॥
तं उवसग्गु णिएवि भयावणु । तो वि ण सीयहेँ सरणु दसाणणु ॥९॥
घोर रउद्दु झाणु संचूरेंहिं । थिय मणेँ धम्म-झाणु आऊरेंवि ॥१०॥

घत्ता

'जाव ण णीसरिय उवसग्ग-भयहों गम्भीरहों ।
ताव णिवित्ति महु चउविह-आहार-सरीरहों ॥११॥

[१५] जानते हो, तो भी मोहको प्राप्त होते हो, परस्त्रीको ग्रहण कर क्या शुद्धि होती है। जबतक तुम्हारा अपयशका डंका नहीं बजता, जबतक लंका नगरी नाशको प्राप्त नहीं होती, जबतक लक्ष्मणरूपी सिंह विरुद्ध नहीं होता, जबतक रामरूपी यम नहीं आने पाता, जबतक वे तीरोंकी पंक्तिका सन्धान नहीं करते, जबतक वे तरकस युगल नहीं बाँधते, जबतक विकट उर:स्थलका वे भेदन नहीं करते, जबतक उनका बाहुदण्ड तुम्हारा छेदन नहीं करता, जबतक सरोवरमें हंसके समान दलोंसे विमल दससिररूपी कमलोंको वे नहीं तोड़ते, जबतक गीध-पंक्ति नहीं झपटती, जबतक निशाचर बल नहीं नष्ट होता, जबतक वे ध्वजचिह्नोंको नहीं दरसाते, और जबतक रणमें कबन्ध नहीं नचते, जबतक श्रेष्ठ तीरोंसे युद्धमें काटे नहीं जाते, तबतक हे नराधिप, तुम राघवचन्द्रके पैर पड़ लो।" ॥१-९॥

[१६] यह सुनकर रावण क्रुद्ध हो गया। मानो मेघके गरजनेपर पंचानन हो। क्रोधरूपी ज्वालासे प्रदीप्त लंकेश्वर विद्याधर-परमेश्वर दशानन सोचता है—क्या यमशासनके पथपर भेज दूँ? क्या कुछ भी उपसर्ग दिखाऊँ? अवश्य ही यह भयके वशसे मुझे चाहने लगेगी, और मेरी कामज्वालाको शान्त कर देगी। उस अवसरपर तबतक अपने अश्व और रथवर सहित दिवाकर अस्तको प्राप्त हो गया। नाना रूपोंवाले अट्टहास करते हुए भूतों, खर, श्वानकुल, बिडाल, शृगालों, अनेक चामुण्ड-रुण्डों और बेतालों, राक्षस, सिंह, बाघ, हाथी, गैंडों, मेष, महिष, वृषभ, तुरग और नृसमूहोंके साथ रात आयी। उस भयानक उपसर्गको देखकर, तो भी सीताके लिए रावण शरण नहीं था। घोर रौद्र ध्यानको चूर-चूर कर अपने मनको धर्मध्यान आपूरित कर (प्रतिज्ञा ले ली)—जबतक गम्भीर उपसर्ग-भयसे मैं मुक्त नहीं होती, तबतक मेरा चार प्रकार

[१७]

पहुय पओस पणासेंवि णिग्गय । हत्थि-हड व्व सूर-पहराहय ॥१॥
णिसियरि व्व गय दोसालिङ्गिय । भग्ग-मडप्फर माण-कलङ्किय ॥२॥
सूर-भएण णाइँ रणु मेल्लेंवि । पइसइ गयहु कवाडइँ पेल्लेंवि ॥३॥
दीवा पज्जलन्ति जे सयणेंहिँ । णं णिसि मलेंवि णिहालइ णयणेंहिँ ॥४॥
उट्ठिउ रवि अरविन्दाणन्दउ । णं महि-कामिणि-केरउ अन्दुउ ॥५॥
णं सञ्झाएँ तिलउ दरिसाविउ । णं सुकइहेँ जस-पुञ्जु पहाविउ ॥६॥
णं मम्भीस दिण्णु वर-पत्तिहेँ । पच्छलें णाइँ पधाइउ रत्तिहेँ ॥७॥
णं जग-भवणहों बोहिउ दीवउ । णाइँ पुणु वि पुणु सो जे पलीवउ ॥८॥

घत्ता

तिहुअण-रक्खसहों दारेंवि दिसि-वहु-मुह-कन्दरु ।
उवरें पइसरें वि णं सीय गवेसइ दिणयरु ॥९॥

[१८]

रयणिहेँ तिमिर-णियर-रएँ भग्गएँ । णिव रावणहों आय ओलग्गएँ ॥१॥
मय-मारिच्च-विहीसण-राणा । अवरें वि भुवणेक्केक्क-पहाणा ॥२॥
खर-दूसण-सोएण णयाणण । णं णिक्केसर वर पञ्चाणण ॥३॥
णिय-णिय-आसणेहिँ थिय अविचल । भग्ग-विसाण णाइँ वर मयगल ॥४॥
मन्ति-महल्लएहिँ एत्थन्तरें । णिसुणिय सीय रुअन्ति पडन्तरें ॥५॥
भणइ विहीसणु 'एहु को रोवइ । वारवार अप्पाणउ सोयइ ॥६॥
णावइ पर-कलत्तु विच्छोइउ' । पुणु दहवयणहों वयणु पलोइउ ॥७॥
'मम्भुडु एउ कलत्तु तुह केरउ । अण्णहों कासु चित्तु विसरेरउ' ॥८॥
तं णिसुणेवि सीय आसासिय । कलयण्ठि व पिय-वयणेंहिँ भासिय ॥९॥
एहु दुज्जणहों मज्झें को सज्जणु । णिम्ब-वणहों अब्भन्तरें चन्दणु ॥१०॥

आहार शरीरसे निवृत्ति ॥१–११॥

[१७] सूर्यके प्रहारोंसे आहत होकर हस्तिघटाके समान रात्रिके प्रहर नष्ट होकर चले गये। निशाचरोंके समान घोड़े- की नाकके समान वक्र, भग्नमानवाली और मानसे कलंकित रात्रि सूरके भयसे जैसे रण छोड़कर किवाड़ोंको खोलकर नगरप्रवेश करती है। शयनकक्षोंमें जो दीप जल रहे थे, मानो रात्रि अपने नेत्रोंसे मुड़कर देख रही थी। कमलोंको आनन्द देनेवाला सूर्य उठा मानो धरतीरूपी कामिनीका दर्पण हो? मानो सन्ध्याने अपना तिलक प्रदर्शित किया हो, मानो सुकवि- का यश चमक रहा हो, मानो रामकी पत्नीको अभय देते हुए जैसे रात्रिके पीछे दौड़ा हो, मानो विश्वरूपी भवनमें दीपक जला दिया गया हो। जैसे यह बार-बार वहीं प्रदीप्त हो रहा हो। त्रिभुवनरूपी राक्षसको दिशारूपी वधूकी मुखरूपी गुफाको फाड़कर और उदरमें प्रवेश कर मानो दिनकर सीतादेवीको खोज रहा है ॥१–९॥

[१८] रात्रिके अन्धकारसमूहरूपी रजके नष्ट होनेपर राजा रावणकी सेवामें आये। मय, मारीच, विभीषण राजा, और भी दूसरे विश्वके एकसे एक प्रधान राजा, खरदूषणके शोकसे नतानन ऐसे लगते थे मानो बिना अयालवाले श्रेष्ठ सिंह हों। सब अपने-अपने आसनोंपर निश्चल बैठ गये मानो जिनके दाँत टूट गये हैं, ऐसे मतवाले गज हों। इसी बीच मन्त्रियोंसे महान् राजाओंने पटके भीतर सीता देवीको रोते हुए सुना। विभीषण कहता है—"यह कौन रो रहा है, बार-बार अपनेको शोकमें डाल रहा है, जान पड़ता है यह कोई वियुक्त पत्नी है।" फिर उसने रावणका मुख देखा, (और कहा) "शायद यह तुम्हारा कर्म है? और किसका चित्त विपरीत हो सकता है?" यह सुनकर सीता आश्वस्त हुई, और कोयलके समान मीठे

घत्ता

विहुरें समावडिएँ एँहु को साहम्मिय-वच्छलु ।
जो महँ धीरवइ एवड्डु कासु स इँ सु य-वलु' ॥११॥

●

बायालीसमो संधि

पुणु वि विहीसणेण दुम्मयणें हिँ रावणु दोच्छइ ।
तेरथु पवन्तरेण आसण्णउ होएँ वि पुच्छइ ॥

[१]

'अक्खहि सुन्दरि वत्त णिभन्ती । कहिँ आणिय तुहुँ एत्थु रुवन्ती ॥१॥
कासु धीय कहि को तुम्हहँ पइ' । अवस महन्तु विहीसणु ज[illegible] ॥२॥
'कवणु ससुरु कहि को तुह देवरु । अत्थि पसिद्धउ को तुह भायरु ॥३॥
सप्परियण कहि तुहुँ एक्कल्ली । अक्खहि केम वणन्तरेँ भुल्ली ॥४॥
कें कज्जेण वणवासु पइट्ठी । चक्केसरेँण केम तुहुँ दिट्ठी ॥५॥
किं माणुसि किं खेयर-णन्दिणी । किं कुमारि किं सोलहाँ भायणि ॥६॥
अण्णु वि कवणु तुम्ह देसन्तरु । कहहि विथारें वि णियय-कहन्तरु' ॥७॥
एम विहीसण-वयणु सुणेविणु । लग्ग कहेवएँ जिम णिसुणइ जणु ॥८॥

घत्ता

'अहु किं बहुएण लहुअ बहिणि भामण्डलहों ।
हउँ सीयाएवि जणयहों सुअ गेहिणि बलहों ॥९॥

[२]

वन्धेँ वि राय-पट्टु भरहेसहों । तिण्णि वि संचल्लिय वणवासहों ॥१॥
सीहोयरहों मडप्फरु भञ्जेँ वि । दसउर-णाहहों णिय-मणु र[illegible] ॥२॥

शब्दोंमें बोली—"दुर्जनोंके बीच, यह सज्जन कौन है; नीमके वनके बीचमें चन्दन। संकट आ पड़नेपर साधर्मीजन वत्सल यह कौन है? जो मुझे धीरज देता है, इतना स्वयम्भूबल किसका है?" ॥१-११॥

•

बयालीसवीं सन्धि

फिर भी विभीषण बुरे शब्दोंमें रावणकी निन्दा करता है, और वह परदेके निकट होकर पूछता है—

[१] "हे सुन्दरी! तुम निर्भ्रान्त होकर बात कहो। यहाँ, रोती हुई तुम्हें कौन लाया। तुम किसकी बेटी हो। तुम्हारा पति कौन है?" चिन्ता धारण करता हुआ विभीषण कहता है—"कौन तुम्हारा ससुर है, बताओ कौन तुम्हारा देवर है, तुम्हारा प्रसिद्ध भाई कौन है; तुम अपने परिजनोंके साथ हो, या अकेली। बताओ वनमें तुम अकेली किस प्रकार भूल गयी। किस कारण तुम वनवासके लिए प्रविष्ट हुई। चक्रेश्वर रावण-ने तुम्हें किस प्रकार देखा? तुम मनुष्यनी हो या विद्याधर-पुत्री। क्या दुराचारिणी हो, या शीलकी भाजन। और भी तुम्हारा कौन-सा देशान्तर है? विस्तारसे अपनी कहानी बताओ।" विभीषणके वचन सुनकर, वह इस प्रकार कहने लगी कि जिससे लोग सुन लें। "अब बहुत कहनेसे क्या? मैं भामण्डलकी छोटी बहन हूँ। मैं सीता देवी, जनककी पुत्री और रामकी गृहिणी हूँ ॥१-९॥

[२] भरतेशको राजपट्ट बाँधकर तीनों वनवासके लिए चल दिये। सिंहोदरका मान भंग कर दशपुर राजाका नृपमन रंजित

पुणु कल्लाणमाल मम्भीसेँ वि । णम्मय मेल्लेँ वि विञ्झु पईसेवि ॥३॥
रुद्दभुत्ति णिय-चलणेँ हिँ पाडेँ वि । वालिखिल्लु णिय-णयरहों धाडेँ वि॥४॥
रामउरिहिँ चउ मास वसेप्पिणु । धरणीधरहों धीय परिणेप्पिणु ॥५॥
फेडेँ वि अइवीरहों मोरत्तणु । पइसरेवि खेमञ्जलि-पट्टणु ॥६॥
तेत्थु वि पञ्च पडिच्छेँ वि सत्तिउ । सत्तुदवणु मसि-वण्णु पवित्तिउ ॥७॥

घत्ता

हरि-सीय-वलाइँ आयइँ सज्जइँ आइयइँ ।
णं मत्त-गयाइँ दण्डारण्णु पराइयइँ ॥८॥

[३]

तहिँ मि कालेँ मुणि-गुत्त-सुगुत्तहँ । संजम-णियम-धम्म-संजुत्तहँ ॥१॥
वणेँ आहार-दाणु दरिसावेँ वि । सुरवर-रयण-वरिसु वरिसावेँ वि॥२॥
पविरइहेँ पक्ख सुवण्ण समारेँ वि । सम्बुकुमारु वीरु संघारेँ वि ॥३॥
अच्छहुँ जाव तेत्थु वण-कीलएँ । एक्क कुमारि आय णीय-लीलएँ॥४॥
पासु वलुक्किय करिणि व करिणहों । पुणु णिल्लज्ज भणइ 'महुँ परिणहों'॥५॥
वल-णारायणेहिँ उवलक्खिय । पुणु थोवन्तरेँ जाय विलक्खिय ॥६॥
गय खर-दूसणाहुँ कूवारेँ हिँ । भिडिय ते वि सहुँ समरेँ कुमारेँ हिँ॥७॥

घत्ता

किं मुक्कु ण मुक्कु सीहणाउ रणेँ लक्खणेण ।
तं सद्दु सुणेवि रामु पधाइउ तक्खणेण ॥८॥

[४]

गउ लक्खणहों गवेसउ जावेँ हिँ । हउँ अवहरिय णिसिन्देँ तावेँ हिँ ॥१॥
अज्जु वि अण-मण-णयणाणन्दहों । पासु णेहु महँ राहवचन्दहों' ॥२॥
लइउ णाउँ जं दसरह-जणयहुँ । हरि-हलहर-भामण्डल-तणयहुँ ॥३॥
चित्तु विहीसण-रायहों डोल्लिउ । 'तुम्हेँ हि सुयउ सुयउ जं वोल्लिउ ॥४॥
ते हउँ अंउ आसि णिमित्ताएँ वि । णावर जियन्ति मन्ति उप्पाएँ वि ॥५॥
मुक्कु पमाणहों मुणिवर-भासिउ । जिह "सउ लक्खण-रामहों पासिउ"॥६॥

कर फिर कल्याणमालाको अभय वचन देकर, नर्मदा छोड़कर, विन्ध्याचलमें प्रवेश कर, रुद्रभूतिको अपने चरणोंमें झुकाकर, बालिखिल्यको उसके नगरमें स्थापित कर, रामपुरीमें चार माह बसकर, धरणीधरकी बेटीसे विवाह कर, अतिवीर्यकी वीरता चूर-चूर कर, क्षेमांजलि नगरमें प्रवेश कर, वहाँपर भी पाँच शक्तियोंको स्वीकार कर, अरिदमन राजाका मुख काला कर, लक्ष्मण-सीता और राम विजयके साथ इस प्रकार आये और दण्डकारण्यमें पहुँचे, मानो मत्तगज हों ॥१-९॥

[३] उसी समय, संयम नियम और धर्मसे संयुक्त मुनि-गुप्त और सुगुप्तको वनमें आहार दान देकर, देवरत्नोंकी वर्षा करवाकर, पक्षी (जटायु) के पंख स्वर्णमय कराकर, वीर सम्बुकुमारको मारकर जब हम लोग वहाँ (दण्डकारण्यमें) क्रीड़ाके लिए रह रहे थे, एक कुमारी अपनी लीलासे आयी। जैसे हथिनी हाथीके पास, वैसे ही वह पास पहुँची। फिर वह निर्लज्ज बोली—'मुझसे विवाह करो।' राम और लक्ष्मणके द्वारा तिरस्कृत होकर, फिर थोड़ी दूर जाकर, वह बिलख उठी। वह अपने विलापोंके साथ खरदूषणके पास गयी। वे भी कुमारोंके साथ युद्धमें लड़े। युद्धमें लक्ष्मणने सिंहनाद किया या नहीं, वह शब्द सुनकर राम उसी क्षण दौड़े ॥१-८॥

[४] जब तक वह लक्ष्मणकी खोज करने गये, तबतक निशाचरेन्द्रके द्वारा मैं हर ली गयी। आज भी जनोंके मनों और नेत्रोंको आनन्द देनेवाले राघवचन्द्रके पास मुझे ले जाओ।" इस प्रकार जब सीता देवीने दशरथ और जनक, लक्ष्मण-राम और भामण्डलका नाम लिया तो विभीषण राजाका मन काँप उठा, (वह बोला)—कि "जो कुछ कहा गया है, वह तुम लोगों-ने सुना। सुना। मैं उन्हें मारकर आया था, लेकिन नहीं, वे तो भ्रम उत्पन्न कर जीवित हैं। लो मुनिवरके कथनका प्रमाण आ

एव वि करहि महारउ वुत्तउ । उत्तिम-पुरिसहुँ एउ ण जुत्तउ ॥७॥
एक्कु विणासु अण्णु लज्जिज्जइ । धिद्धिक्कारु लोएँ पाविज्जइ ॥८॥

घत्ता

णिय-कित्तिहेँ राय सायर-रसण-सलग्गियहेँ ।
मं मइलहि पाय तिहुयणेँ परिसक्कन्तियहेँ ॥९॥

[५]

रावण जे रमन्ति परदारइँ । दुक्खइँ ते पावन्ति अपारइँ ॥१॥
जहिँ ते सत्त णरय भय-भीसण । हसहसहसहसन्त स-हुवासण ॥२॥
डुहुडुहुडुहुडुहन्त स-उपद्दव । सिमिसिमिसिमिसिमन्त-किमि-कद्दम ॥३॥
रयणि-सक्कर-वालुय-पङ्क-प्पह । धूमप्पह-तमपह-तमतमपह ॥४॥
तहिँ असरालु कालु अच्छेवउ । पहिलएँ उवहि-पमाणु जिवेवउ ॥५॥
तिण्णि सत्त वीसद्ध रउद्दइँ । सत्तारह वावीस समुद्दइँ ॥६॥
पुणु तेत्तीस-जलहि-परिमाणइँ । जहिँ दुक्खइँ गिरि-मेरु-समाणइँ ॥७॥
जो पुणु णरउ णिगोउ सुणिज्जइ । मेइणि जाव ताव तहिँ छिज्जइ ॥८॥
तेँ कज्जेँ पर-दारु ण रम्मइ । तं किज्जइ जं सुगइहिँ गम्मइ' ॥९॥

घत्ता

आरुट्ठु दसासु 'किं पर-दारहोँ एह किय ।
तिहुँ खण्डहुँ मज्झेँ अवसु पराइय कवण तिय' ॥१०॥

[६]

तो अवहेरि करेवि विहीसणेँ । चडिउ महग्गएँ तिजगविहूसणेँ ॥१॥
सीय वि पुप्फ-विमाणेँ चडाविय । पट्टणेँ हट्ट-सोह दरिसाविय ॥२॥
संचल्लिउ णिय-मण-परिओसेँ । झल्लरि-पडह-तूर-णिग्घोसेँ ॥३॥
'सुन्दरि पेक्खु महारउ पट्टणु । वरुण-कुबेर-वीर-दलवट्टणु ॥४॥
सुन्दरि पेक्खु पेक्खु चउ-वारइँ । णं कामिणि-वयणइँ स-वियारइँ ॥५॥

पहुँचा। चूँकि तुम्हारा विनाश राम और लक्ष्मणके पास है इसलिए इस समय भी तुम हमारा कहा हुआ करो। उत्तम पुरुषोंके लिए यह अच्छी बात नहीं। एक तो विनाश होगा और दूसरे लजाये जाओगे, और लोक द्वारा धिक्कार पाओगे। हे राजन्! त्रिभुवनमें फैलती हुई, समुद्रसे लेकर पृथ्वी तक स्खलित होती हुई, अपनी कीर्तिके आधारको नष्ट मत करो।" ॥१-९॥

[५] "हे रावण, जो परस्त्रीका रमण करते हैं, वे अपार दुखको पाते हैं। जहाँ अग्नि सहित हस-हस करते हुए भय-भीषण सात नरक हैं, हु-हु करते हुए उपद्रव सहित, तथा सिम-सिमाते हुए कृमि-कर्दमसे युक्त, रत्न, शर्करा, बालुका, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और तम-तमःप्रभा नरक हैं वहाँ बहुत समय रहना पड़ता है, पहले नरकमें एक सागर प्रमाण जीना होता है। उसके बाद तीन, सात, दस, ग्यारह, सत्तरह और बाईस सागर प्रमाण, फिर तैंतीस सागर प्रमाण। वहाँ सुमेरु पर्वतके समान दुःख होते हैं। और फिर जो नरक निगोद सुना जाता है, वहाँ जबतक धरती है तबतक जीना पड़ता है। इस कारण परस्त्रीका रमण नहीं करना चाहिए। वह करना चाहिए जिससे सुगतियोंमें जाया जाये।" (इसपर) दशानन क्रुद्ध हो उठा, "क्या परस्त्रीकी यह क्रिया है; बताओ तीन खण्डोंके मध्य, कौन स्त्री परायी है? ॥१-१०॥

[६] तब विभीषणकी उपेक्षा कर रावण महागज त्रिजग-भूषणपर आरूढ़ हो गया। सीताको भी पुष्पक विमानपर चढ़ा लिया, और उसने नगरमें उसे बाजारकी शोभा दिखायी। वह अपने मनके परितोष और झल्लरी, पटह तथा तूर्यके निर्घोषके साथ चला। बोला—"हे सुन्दरी! हमारा नगर देखो, जो वरुण, कुबेर आदि वीरोंका नाश करनेवाला है। हे सुन्दरी!

सुन्दरि पेक्खु पेक्खु घय-छत्तइँ । पप्फुल्लियइँ णाइँ सयवत्तइँ ॥६॥
सुन्दरि पेक्खु महारउ राउलु । हीर-गहणु मणि-खम्भ-रमाउलु ॥७॥
सुन्दरि करहि महारउ वुत्तउ । लइ चूडउ कण्ठउ कडिसुत्तउ ॥८॥
सुन्दरि करि पसाउ लइ चेलिउ । चीणउ लाडु चोडु हरिकेलिउ ॥९॥

घत्ता

मह जीविउ देहि बोल्लहि वयणु सुहावणउ ।
चडु गयवर-खन्धें लइ महएवि-पसाहणउ' ॥१०॥

[७]

सम्पइ दहवयणु इय लेच्छएँ । दोच्छिउ रावणु राहव-भज्जएँ ॥१॥
'केत्तिउ णियय-रिद्धि महु दावहि । अप्पउ जणहों मज्झें दरिसावहि ॥२॥
एउ जं रावण रज्जु तुहारउ । तं महु तिण-समाणु हलुआरउ ॥३॥
एउ जं पट्टणु सोमु सुदंसणु । तं महु मणहों णाइँ जमसासणु ॥४॥
एउ जं राउलु णयण-सुहङ्करु । तं महु णाइँ मसाणु भयङ्करु ॥५॥
एउ जं दावहि रयणें जोव्वणु । तं महु मणहों णाइँ विस-भोयणु ॥६॥
एउ जं कण्ठउ कडउ स-मेहलु । सील-विहूणहों तं मलु केवलु ॥७॥
रहवर-तुरय-गइन्द-सयाइ मि । अम्हहिँ मसु पुणु गण्णु ण काइ मि॥८॥

घत्ता

सम्भोग वि काइँ जहिँ चारित्तहों खण्डणउ ।
किं समलहणेण महु पुणु सीलु जेँ मण्डणउ' ॥९॥

[८]

जिह जिह जिणवय आसण पूरइ । तिह तिह रावणु हियएँ विसूरइ ॥१॥
'जिहिँ तेत्तडउ णेहु जं विहडियउ । किं मउं जाइ णिलाडएँ लिहियउ॥२॥
हउँ कम्मेण केण संखोहिउ । जाणन्तो वि तो वि जं मोहिउ ॥३॥
धिधि अहिलसिय कुमारि विलीणी । वुण्ण-कुरङ्गि जेम मुह-दीणी ॥४॥

बारबार देखो, जैसे ये विकार-सहित कामिनीके मुख हों। सुन्दरी! देखो-देखो ध्वजछत्र, जैसे खिले हुए कमल हों। सुन्दरी! देखो-देखो हमारा राजकुल जो हीरोंसे गम्भीर और मणि खम्भोंकी शोभासे युक्त है। हे सुन्दरी! तुम हमारा कहना करो, यह चूड़ा, कण्ठा और करधनी लो। हे सुन्दरी! प्रसाद करो और चीनी, लाट, घोट और हरिकेल वस्त्र लो। मुझे जीवन दो। सुहावने वचन बोलो, गजवरके कन्धेपर चढ़ो और महादेवीका प्रसाधन स्वीकार करो" ॥१–१०॥

[७] इस प्रकार सम्पत्ति दिखाते हुए उस रावणकी, आर्या रामपत्नीने भर्त्सना की—"तुम अपनी कितनी ऋद्धि मुझे दिखाते हो? इसे अपने लोगोंके मध्य दिखाओ। हे रावण, यह जो तुम्हारा राज्य है वह मेरे लिए तिनकेके समान हलका है। यह जो सौम्य और सुदर्शनीय नगर है, वह मेरे लिए यमशासनके समान है। यह जो नेत्रोंके लिए शुभंकर राजकुल है, वह मेरे लिए मानो महा भयंकर मरघट है। यह जो क्षण-क्षणमें यौवन दिखाते हो, वह मेरे मनके लिए मानो विष-भोजन है। यह जो कण्ठा, मेखला सहित कटक है वह शील विभूषणवालोंके लिए केवल मल है। जो सैकड़ों रथवर, तुरग, गजेन्द्रादि हैं इनमें-से मेरे लिए कोई गण्य नहीं है। उस स्वर्गसे भी क्या जहाँ चारित्र्यका खण्डन है। यदि मेरे पास शीलका मण्डन है तो कुछ भी प्राप्त करनेसे क्या? ॥१–९॥

[८] जैसे-जैसे रावणकी अभिलषित आशा पूरी नहीं होती, वैसे-वैसे वह हृदयमें दुःखी होने लगता है—विधाता उतना ही देता है कि जो विहित है। हे मूर्ख, क्या ललाटमें लिखा हुआ कहीं जाता है। मैं किस कर्मके द्वारा क्षुब्ध हूँ, यह जानते हुए भी, जो मैं मोहित हूँ। मुझे धिक्कार है कि मैंने कुमारीकी अभिलाषा की, जो मुखसे दीन-दुखी हरिणीके समान है।

आयहँ पासिउ आउ सु-वेसउ । महु घरें अत्थि अणेयउ वेसउ' ॥५॥
एव विचिन्तेंवि चित्तु साहारेंवि । दुक्खु दुक्खु मण-पसरु णिवारेंवि ॥६॥
सीयएँ समउ लेवि आमेल्लेंवि । तं णिव्वाणरमणु वणु मेल्लेंवि ॥७॥
णरवर-विन्देंहिँ परियरिउ दहमुहु । संचल्लिउ णिय-णयरिहें अहिमुहु ॥८॥

घत्ता

गिरि दिट्ठु तिकूडु जण-मण-णयण-सुहावउ ।
रवि-बिम्बहों दिण्णु णं महि-कुलवहुअएँ थणउ ॥१॥

[९]

णं धरु धरहुँ गब्भु णीसरियउ । सत्तहिँ उववणेहिँ परियरियउ ॥१॥
पहिलउ वणु णामेण पइण्णउ । सज्जण-हियउ जेम विच्छिण्णउ ॥२॥
बीयउ जण-मण-णयणाणन्दणु । णावइ जिणवर-बिम्बु स-चन्दणु ॥३॥
तइयउ वणु सुहसेउ सुहावउ । जिणवर-सासणु णाइँ स-सावउ ॥४॥
चउथउ वणु णामेण समुच्चउ । बग-बलाय-कारण्ड-सकोञ्चउ ॥५॥
चारण-वणु पञ्चमउ रवण्णउ । चम्पय-तिलय-बउल-संछण्णउ ॥६॥
छट्ठउ वणु णामेण णिबोहउ । महुअर-रुणुरुण्टन्तु सुसोहउ ॥७॥
सत्तमु वणु सीयलु सच्छायउ । पमउज्जाणु णाम-विक्खायउ ॥८॥

घत्ता

तहिँ गिरिवर-पट्टें सोहइ लङ्काणयरि किह ।
थिय गयवर-खन्धें गहिय-पसाहण वहुअ जिह ॥९॥

[१०]

घत्ता

ताव तेत्थु णिज्झाइय वावि असोय-मालिणी ।
हेमवण्ण स-पओहर मणहर णाइँ कामिणी ॥१॥
चउ-दुवार-चउ-गोउर-चउ-तोरण-रवण्णिया ।
चम्पय-तिलय-बउल-णारङ्ग-लवङ्ग-छण्णिया ॥२॥

इसकी तुलनामें सुन्दर वेशवाली अनेक रूपवाली स्त्रियाँ मेरे घरमें हैं। इस समय विचित्र चित्तको सहारा देकर बड़ी कठिनाईसे मनके प्रसारका निवारण कर सीताके साथ क्रीड़ाका परित्याग कर, उस देवरमण वनको छोड़कर नरवर राजाओंसे घिरा हुआ रावण, अपनी नगरीके सम्मुख चला। जनके मनों और नेत्रोंके लिए सुहावना वह नगर ऐसा लगता था मानो धरतीरूपी कुलवधूने अपना स्तन रविरूपी बालकके लिए दे दिया हो ॥१-९॥

[९] वह पर्वत मानो धरतीका निकला हुआ मध्यभाग था। वह लंका नगर सात उपवनोंसे घिरा हुआ था। पहला वन पइण्ण नामका था, जो सज्जनके हृदयके समान विशाल था। जनके मन और नेत्रोंको आनन्द देनेवाला दूसरा जिनवरके बिम्बकी तरह सचन्दन (चन्दन वृक्ष और चन्दनसे सहित) था। तीसरा शुभसेतु वन शोभित था जो जिनवर शासनके समान ससावद (श्वापदों और श्रावकोंसे सहित) था। चौथा समुच्चय नामका वन था, जो बकबलाका कारण्ड और क्रौंच पक्षियोंसे युक्त था। पाँचवाँ सुन्दर चारण वन था, चम्पक, तिलक और बकुल वृक्षोंसे संलग्न। छठा निबोहउ वन था जो मधुकरोंसे गूँजता हुआ शोभित था। सातवाँ सुन्दर छाया वाला शीतल प्रख्यात नाम प्रमद-उद्यान था। उस गिरिवरकी पीठपर लंका नगरी इस प्रकार शोभित है जैसे प्रसाधन कर वधू गजवरके कन्धेपर बैठी हो ॥१-९॥

[१०] तब उसने अशोकमालिनी नामकी बावड़ी देखी, सुनहले रंग वह जैसे सपयोधर (जल, स्तन धारण करनेवाली) सुन्दर कामिनी हो। वह चार द्वारों और गोपुरोंसे सुन्दर थी, चम्पक, तिलक, बकुल, नारंग और लवंग वृक्षोंसे आच्छादित

तहिँ पएसेँ वइदेहि ठवेप्पिणु गउ दसाणणो ।
झिज्जमाणु विरहेण णिसंथुल्लु विमणु दुम्मणो ॥३॥
मयण-बाण-जज्जरियउ जरिउ दुवार-वारओ ।
दूइआउ आवन्ति जन्ति सयवार-वारओ ॥४॥
वयणएहिँ खर-महुरेँहिँ मुहु सूसइ विसूरए ।
छोहेँ छोहेँ णिवडन्तएँ जूआरो व्व जूरए ॥५॥
सिरु धुणेइ कर मोडइ अङ्गु वलेइ कम्पए ।
अहरु लेवि णिज्झायइ कामसरेण जम्पए ॥६॥
गाइ वाइ उव्वेल्लइ हरिस-विसाय दावए ।
वारवार मुच्छिज्जइ मरणावत्थ पावए ॥७॥
चन्दणेण सिञ्चिज्जइ चन्दण-छेउ दिज्जए ।
चामरेहिँ विज्जिज्जइ तो वि मणेण झिज्जए ॥८॥

घत्ता

किं रावणु एक्कु जो जो गरुअइँ गज्जियउ ।
जिण-धवलु मुएवि कामेँ को ण परज्जियउ ॥९॥

[११]

थिएँ दसाणणेँ विरह-भिम्भले । जाय चिन्त वर-मन्ति-मण्डले ॥१॥
'एत्थु मल्लु को कुइएँ लक्खणे । सिद्धु जासु असि-रयणु तक्खणे ॥२॥
णिहउ सम्बु जेँ दूसणो खरो । होइ कु-इ ण रावणु सो णरो' ॥३॥
भणइ मन्ति सहसमइ-णामेँणं । 'कवणु गहणु एक्केण रामेँणं ॥४॥
लक्खणेण सहु साहणेण वा । रह-तुरङ्ग-गय-वाहणेण वा ॥५॥
दुत्तरे दुसञ्चार-सायरे । कहिँ पएसु विज्जा-भयङ्करे ॥६॥
रावणस्स पवले बले महा । अत्थि वीर एक्केक्क दूसहा ॥७॥
किं मुएण दूसणेँण सम्बुणा । सायरो किमाहु विन्दुणा' ॥८॥

घत्ता

तं वयणु सुणेवि विहसेँ वि पञ्चमुहु भणइ ।
'किं बुज्झइ एक्कु जो एक्कुजेँ सहसइँ हणइ ॥९॥

थी। उस प्रदेशमें सीतादेवीको प्रतिष्ठित कर दशानन चला गया—विरहसे क्षीण, विसंस्थुल विमन और अत्यन्त दुर्मन। कामदेवके बाणोंसे जर्जर और ज्वरयुक्त जिसे निवारण करना कठिन है। सैकड़ों बार दूतियाँ आती हैं और जाती हैं। कठोर और मधुर शब्दोंसे उसका मुख सूखता है, वह खिन्न होता है, क्षोभ-क्षोभमें वह गिरता है, जुआड़ीकी तरह पीड़ित होता है। वह सिर धुनता है, हाथ मोड़ता है, शरीर मोड़ता है, काँपता है। अधर पकड़कर ध्यानमग्न हो जाता है। कामके स्वरमें बोलता है। गाता है, बजाता है, हर्ष-विषाद दिखाता है, बार-बार मूर्च्छित होता है, मरण-अवस्थाको दिखाता है। चन्दनसे सींचा जाता है, चन्दन लेप दिया जाता है। चामरोंसे हवा की जाती है फिर भी मनसे झूरता रहता है। एक रावण क्या, जो-जो गर्वसे गरजा है, जिनवरश्रेष्ठको छोड़कर कामदेवके द्वारा कौन पराजित नहीं हुआ? ॥१-९॥

[११] रावणके विरह-विह्वल होनेपर श्रेष्ठ मन्त्रिमण्डलमें चिन्ता व्याप्त हो गयी कि उस लक्ष्मणके कुपित होनेपर, यहाँ प्रतिमल्ल कौन है कि जिसे एक क्षणमें असिरत्न सिद्ध हो गया, जिसने शम्बु, दूषण और खरको मार डाला, पृथ्वीपर वह कोई सामान्य मनुष्य नहीं है। सहस्रमति नामका मन्त्री कहता है—"रामके द्वारा, अथवा साधन-सहित लक्ष्मणके द्वारा, अथवा रथ, तुरग, गजवाहनोंके द्वारा, दुस्तर और लहरोंसे भयंकर कठिनाईसे संचरण योग्य सागर और जलोंमें कैसा ग्रहण (प्रवेश)? रावणकी सेना महा प्रबल है। उसमें एक-एक वीर दुःसह है। दूषण या शम्बुके मर जानेसे क्या? बूँदसे समुद्रका क्या होता है?" यह वचन सुनकर और हँसकर पंचानन (मन्त्री) कहता है—"क्या कहते हो, एक है? जो एक है वह हजारोंको मारता है।" ॥१-९॥

[१२]

अण्णुएँ णिसुअ वत्त मइँ पुच्छिय । रावण-मन्दिरें णीसन्देहिय ॥१॥
जे जे णरवइ के-इ कइद्धय । जम्बव-णल-सुग्गीवङ्गङ्गय ॥२॥
समउ विराहिएण वण-सेवहुँ । मिलिया वासुएव-बलएवहुँ' ॥३॥
तं णिसुणेवि दसाणण-भिच्चें । कुद्धइ पच्छामुहु मारिच्चें ॥४॥
'एहु अजुत्त वत्त पइँ अक्खिय । रावणु सुएँ वि ण अण्णहों पक्खिय ॥५॥
का वि अणङ्गकुसुम वलवन्तहों । दिण्णी खरेण धीय हणुवन्तहों ॥६॥
तं किं माम-वइरु वीसरियउ । जं पडिवक्खें मिलइ मय-हरियउ' ॥७॥
तो एत्थन्तरे भणइ विहीसणु । 'केत्तिउ चवहु वयणु सुण्णासणु ॥८॥
एवहिँ सो उवाउ चिन्तिज्जइ । लङ्का-णाहु जेण रक्खिज्जइ' ॥९॥
एम भणेवि चउद्दिसु ताडिय । पुरें आसालिय विज्ज भमाडिय ॥१०॥

घत्ता

तियसहु मि दुलक्खु दिट्ठु माया-पायारु किउ ।
णीसङ्कु णिसिन्दु रज्जु स यं भुञ्जन्तु थिउ ॥११॥

अउज्झा कण्डं समत्तं !

आइच्चुएवि-पडिमोवमाएँ आइच्चम्बिमाए (?) ।
बीअमउज्झा-कण्डं सयम्भु-घरिणीएँ लेहवियं ॥

[१२] "किसी दूसरेसे मैंने यह बात सुनी है कि रावणके भवनमें निःसन्देह जो-जो राजा हैं और कितने ही कपिध्वजी हैं, जाम्बवन्त, नल, सुग्रीव, अंग, अंगद आदि; वे विराधितके साथ वनवास करनेवाले बलदेव और वासुदेवसे जा मिले हैं।" यह सुनकर दशाननके अनुचर मारीचने मन्त्रीसे कहा—"यह तुमने अयुक्त बात कही। रावणको छोड़कर तुम किसी दूसरेका पक्ष मत लो। खरके द्वारा कोई अनंगकुसुम नामकी कन्या बलवान् हनुमान्के लिए दी गयी है यह क्या ससुरका वैर भूल गया जो डरकर शत्रुपक्षसे मिल जायेगा ?" तब इसी बीच विभीषण कहता है—"तुम खाली वचन कितना कहते हो ? इस समय वह कार्य करना चाहिए कि जिससे लंकाके राजाको बचाया जा सके।" इस प्रकार कहकर उसने चारों दिशाओं और नगरमें आशाली विद्या घुमवा दी। देवोंके लिए भी दुर्लंघ्य दृढ़ माया प्राकार बनवा दिया और स्वयं निशाचरराज निःशंक राज्य भोगने लगा ॥१-११॥

आदित्यदेवीकी प्रतिमासे उपमित स्वयम्भूकी पत्नी
आदित्याम्बाके द्वारा लिखाया गया दूसरा
अयोध्या काण्ड समाप्त हुआ ॥